नयी तालीम

शिक्षा का अर्थ क्या ?

भोजन माता के हाथ से, शिक्षण माता के मुंह से

समत्वं योग उच्चते

राजस्थान में शिक्षा सुधार

अखिल भारत नयी तालीम समिति

– सेवाग्राम

वर्ष : २४] — अगस्त–सितम्बर, [illegible] [अंक : १

सम्पादक-मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री बंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष २४
अंक १
प्रति अंकका मूल्य · २ रु प्रति

अनुक्रम

अगस्त–सितम्बर, '७५

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य २ रु. है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

हमारा दृष्टिकोण

ऋषि विनोबा के अस्सी वर्ष

वर्ष : २४
अंक : १

हम सभी के लिये यह आनन्द का विषय है कि इस वर्ष ११ सितम्बर को ऋषि विनोबा अपने जीवन के अस्सी वर्ष पूरे कर रहे हैं। इस शुभ-अवसर पर हम उन्हें अपने सादर प्रणाम व अभिनन्दन अर्पित करते हैं।

पूज्य विनोबाजी ने अपने जीवन में बहुत-से कार्य किये हैं। खादी, बुनियादी, तालीम, ग्राम-सेवा आदि के कार्यों में उनकी अनोखी सूझबूझ और अथक परिश्रम सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं के लिये अनुकरणीय रहे हैं। भूदान और ग्रामदान आन्दोलनों द्वारा केवल भारत में ही नहीं किन्तु संसार के अन्य देशों में भी उनकी मौलिक प्रतिभा का दर्शन मिला। उन्होंने यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया कि भूमि वितरण जैसी जटिल आर्थिक समस्याओं को भी अहिंसक प्रक्रिया द्वारा किस प्रकार हल किया जा सकता है। इस वर्ष सारे देश में भूदान की रजत-जयंती मनाई जा रही है। जो कार्य सभी राज्य सरकारें ने मिलकर भी कानून द्वारा नहीं कर पायीं वह ऋषि विनोबा ने अकेले ही अपनी पद-यात्राओं द्वारा किया और उसका प्रभाव भूमि संबंधी कानूनों पर पड़े बिना न रहा। हम आशा करते हैं कि इस रजत-जयन्ती वर्ष में जो भूदान में दी गई जमीनें अभी तक नहीं बँट पाई हैं वे तेजी से भूमिहीनों में बाँट दी जायेंगी और कुछ नयी जमीनें भी प्राप्त करने की कोशिश की जायगी।

गत २५ दिसम्बर से आचार्य विनोबा ने मौन धारण किया है। फिर भी वे बीच-बीच में अपनी सूक्ष्म-साधना सम्बन्धी कुछ विचार लिखकर हमें देते रहे हैं। कुछ समय पहले उन्होंने एक संसद सदस्य को लिखकर दिया था कि आपात्कालीन स्थिति 'अनुशासन-पर्व' है। इसका अर्थ सभी अपने-अपने ढंग से कर रहे हैं।

हमारी दृष्टि से 'अनुशासन-पर्व' का यही अर्थ हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अनुशासन-सहित अपने-अपने कर्तव्य को पूरा करने का प्रयत्न करे। राष्ट्रपति, प्रधान-मंत्री, सरकारी अधिकारी, व्यापारी, किसान, शिक्षक, विद्यार्थी, वकील, डाक्टर आदि सभी को इस ओर ध्यान देना है। जब तक हम अपने अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों का भी पालन नहीं करेंगे तब तक समाज और देश में अनुशासन स्थापित करना असम्भव है। गांधीजी ने भी एक बार स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "अनुशासन और विवेक युक्त प्रजातन्त्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है।"

इन दिनों जब कोई पूज्य विनोबा से देश की वर्तमान स्थिति के बारे में उनके विचार जानना चाहता है तो वे अपने हाथ से लिख देते हैं। "शांत शिवमद्वैत।" परब्रह्म के ये तीन गुण माडूक्य उपनिषद् में पाये जाते हैं। हम इसका यही अर्थ समझते हैं कि देश की चालू स्थिति में हमें शान्त रहना चाहिये, सभी के लिये कल्याण-कार्य करना चाहिये और आपसी एकता व प्रेम कायम रखना चाहिये। इस सूत्र की पूरी व्याख्या तो ऋषि विनोबा ही समय पर कर सकेंगे।

पिछले महीने जब देश के कुछ रचनात्मक कार्यकर्ता पूज्य बाबा से पवनार आश्रम में मिले थे तब उन्होंने तीन बुनियादी विचार जाहिर किये थे:—१ विज्ञान और अध्यात्म चलेगा, २ पोलिटिक्स आऊट-डेटेड है, ३ फिलहाल भूदान पूर्ति और मद्य-मांस मुक्ति के कार्यों में शक्ति लगाई जाय।"

२५ अगस्त को जब हम मद्य-निषेध के सम्बन्ध में ऋषि विनोबा से मिले तब उन्होंने अपने हाथ से लिख दिया: "अनुशासन-पर्व में शराब-बन्दी अत्यन्त आवश्यक है— अनुशासन के लिये।" इससे साफ जाहिर होता है कि इन दिनों वे शराब-बन्दी के बारे में बड़ी तीव्रता से चिन्तन कर रहे हैं। कुछ समय पहले हम इस सिलसिले में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी व केन्द्रीय वित्त-मंत्री श्री सुब्रमण्यम से दिल्ली में मिले थे। हमने उनसे आग्रह किया है कि आगामी गांधी-जयंती के शुभ-दिन पर उन्हें देशभर में मद्य-निषेध संबंधी कार्यक्रम घोषित कर देना चाहिए। हम आशा करते हैं कि 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के अन्तर्गत शराब-बन्दी को शीघ्र ही प्रमुख स्थान दिया जायगा।

आज कल कई सर्वोदय कार्यकर्ता ऋषि विनोबा के विचारों से कुछ खिन्न दिखलाई देते हैं। हमें उम्मीद है कि आगामी २५ दिसम्बर को पूज्य बाबा का मौन समाप्त हो जायेगा और वे फिर अपने सभी विचारों को हमारे सामने विस्तार से रखेंगे ताकि कई भ्रमों की सफाई हो सके। फिर भी हम इतना तो कहना चाहेंगे कि विनोबा केवल भारत की ही नहीं किन्तु दुनिया की महान् विभूति हैं। वे युग-द्रष्टा हैं और उनका मौलिक व गहन चिन्तन सदियों तक मनुष्य-मात्र को प्रकाश प्रदान

करता रहेगा। प्राचीन भारत में हम बहुत-से ऋषियों का नाम सुनते आये हैं। किन्तु मेरा विश्वास है कि इस ऋषि परम्पराकी श्रृंखला में विनोबा का एक विशिष्टस्थान बना रहेगा।

विश्व हिन्दी विद्यापीठ का प्रारम्भ :

पिछली जनवरी में नागपुर में जो विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित किया गया था उसकी एक ठोस फलश्रुति के रूप में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के प्रांगण में 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना है। हमें संतोष है कि इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिये राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने एक उच्च-स्तरीय समिति का भी गठन कर दिया है। इस समिति की दो बैठकें हो चुकी हैं और विद्यापीठ की योजना को एक निश्चित रूप दिया जा चुका है। यह घोषित किया गया है कि एक जुलाई, १९७६ से इस विद्यापीठ का कार्य प्रारम्भ हो जायेगा। शुरू में लगभग ४० विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जायेगा। इन में से एक चौथाई भारत से और विशेषकर पूर्वीय क्षेत्र से चुने जायेंगे। एक चौथाई छात्र एशिया के देशोंसे विशेष कर नेपाल, बर्मा, थाईलैण्ड, मलेशिया, इंडोनेशिया और जापान से। तीसरा भाग मारिशस, फिजी, ट्रीनीडाड आदि प्रवासी भारतीयों के क्षेत्रों से चुना जायगा और एक चौथाई विद्यार्थी अमरिका, यूरोप, रूस आदि देशों से चुने जायेंगे। इस विद्यापीठ की विशेषता होगी कि हिन्दी भाषा के ज्ञान के अलावा विद्यार्थियों में भारतीय समन्वित संस्कृति और गांधी विचारधारा के संस्कार भी दिये जाने का पूरा प्रयत्न होगा।

विश्व हिन्दी विद्यापीठ का कार्य सुसंगठित बनाने के लिये दो उपसमितियाँ बनाई गई हैं। विद्या-समिति के अध्यक्ष डा. वेणीशंकर झा नियुक्त किये गये हैं जो हमारे देश में एक प्रमुख शिक्षा-शास्त्री हैं और बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के कुलपति भी रह चुके हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष और महाराष्ट्र के वित्त-मंत्री श्री मधुकरराव चौधरी की अध्यक्षता में एक अर्थ-उपसमिति भी गठित की गई है। हम आशा करते हैं कि विश्व हिन्दी विद्यापीठ की महत्वपूर्ण योजना सुचारू रूप से कार्यान्वित होती रहेगी। उसकी प्रगति के लिये हमारी हार्दिक शुभकामनायें सदा रहेंगी।

'नागरी लिपि परिषद्' का उद्घाटन :

यह बड़े संतोष का विषय है कि भारत व एशिया की विभिन्न भाषाओं के लिए एक अतिरिक्त लिपि के रूप में नागरी का प्रचार करने के लिये 'नगारी लिपि परिषद्' नामक एक स्वतंत्र संस्था स्थापित की गई है। इस परिषद् का विधिवत उद्घाटन नयी दिल्ली में १७ अगस्त को उपराष्ट्रपति श्री जत्ती ने किया। उस अवसर पर महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री अलीयावर जंग और केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के उपमंत्री

भी यादव भी उपस्थित थे। उद्घाटन समारम्भ की सफलता के लिये राष्ट्रपति फख़रुद्दीन अली अहमद, प्रधान-मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, रक्षा-मंत्री सरदार स्वर्णसिंह और शिक्षा मंत्री प्रो. नूरुल हसन के शुभ-संदेश भी प्राप्त हुए थे।

'नागरी लिपि परिषद्' के मूल उद्देश्यों को स्पष्ट करने की दृष्टि से मैंने एक प्रासंगिक अध्यक्षीय भाषण दिया जो नीचे लिखे अनुसार था —

"जैसा कि अभी आपको सूचित किया गया, 'नागरी लिपि परिषद' के संगठन का मुख्य उद्देश्य भारतीय भाषाओं तथा एशिया व अन्य देशों की भाषाओं और साहित्य के बीच नागरी लिपि द्वारा सांस्कृतिक एकता व सद्भावना स्थापित करना है। विभिन्न भारतीय भाषाओं की जोड़ लिपि के रूप में नागरी का उपयोग हो यह विचार काफी पुराना है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी इस विचार की पुष्टि की थी। सन् १९६१ में लगभग सभी राज्यों के मुख्य-मंत्रियों ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया था कि नागरी लिपि सभी भाषाओं में मेलजोल बढ़ाने के लिये कड़ी बनाई जाय। किन्तु कई कारणों से यह काम अभी तक विशेष प्रगति नहीं कर सका।

"कुछ वर्षों से आचार्य विनोबाजी ने इस विचार को फिर देश के सामने तीव्रता से पेश किया और इस बात पर जोर दिया कि नागरी लिपि सभी भारतीय तथा एशिया आदि की भाषाओं के लिये एक अतिरिक्त लिपि के रूप में इस्तेमाल की जाय। विभिन्न भाषाओं की अपनी-अपनी विशिष्ट लिपियाँ कायम रहें, लेकिन उनकी भाषा व साहित्य के व्यापक प्रसार के लिए नागरी को एक सह लिपि के रूप में स्वीकार किया जाय। जैसा विनोबाजी ने कई बार समझाया है, सभी भारतीय भाषाओं के लिये नागरी लिपि ही इस्तेमाल की जाय ऐसा आग्रह करना उचित नहीं होगा किन्तु यदि भाषाओं की अपनी लिपियों के साथ साथ नागरी लिपि का भी प्रयोग किया जाय तो यह सब दृष्टि से उपयोगी और वांछनीय होगा। ऐसा करने से प्रान्तीय भाषाओं का प्राचीन और अर्वाचीन उत्कृष्ट साहित्य नागरी में प्रकाशित हो सकता है और उसका प्रचार उस प्रान्त के बाहर भी आसानी से किया जा सकेगा। इस तरह देवनागरी के सहारे राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रदेशों में आपस में निकटता स्थापित हो सकेगी और भारतीय एकता मजबूत होगी।

"दक्षिण पूर्व एशिया के भी कई राष्ट्र हैं जिनकी वर्णमाला भारतीय वर्णमाला जैसी ही है। उनकी भाषाओं में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता है। यदि उनका चुना हुआ साहित्य नागरी लिपि में प्रकाशित किया जाय तो उन भाषाओं को भी सीखने हम सब के लिये आसान बन जायगा।

' आपको जानकर खुशी होगी कि इसी समारोह के अन्त में दो पुस्तकों का विमोचन किया जायगा—एक ' हिन्दी चीनी प्राइमर " और दूसरी " मराठी-जापानी बोल भाषा।" ये दोनों पुस्तकें पूज्य विनोबाजी के मार्गदर्शन में तैयार कराई गई

है। इन पुस्तकों में नागरी लिपि द्वारा चीनी तथा जापानी भाषाओं को सीखना सुविधाजनक होगा। इसी प्रकार हम एशिया की अन्य भाषाओं को सीखने के लिये भी नागरी लिपि के प्रयोग की योजना बना रहे हैं।

"हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि नागरी लिपि का आन्दोलन हिन्दी प्रचार का आन्दोलन नहीं है। राष्ट्रभाषा के रूप में काफी वर्षों से हिन्दी का प्रचार किया जा रहा है और हमारे संविधान में हिन्दी को केन्द्रीय शासन की भाषा के रूप में मान्य किया जा चुका है। भारत के विभिन्न भागों में कई संस्थायें इस दिशा में काफी समय से कार्य कर रही हैं। लेकिन 'नागरी लिपि परिषद्' हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये स्थापित नहीं की गई है। जैसा शुरू में ही बताया गया है, इस परिषद् का मुख्य उद्देश्य भारत व एशिया की भाषाओं को नागरी लिपि द्वारा एक दूसरे के अधिक नजदीक लाना है ताकि हमारी सांस्कृतिक एकता अधिक पुष्ट व प्रभावशाली बन सके।

"हम इस कार्य में सभी का सहयोग चाहते हैं। इस काम को आगे बढ़ाने के लिये हम रोमन, अरबी आदि लिपियों का विरोध नहीं करते। हमारी बुनियादी भूमिका सहयोग की है, विरोध की नहीं। जो भी व्यक्ति और संस्थायें हमारे कार्य को सही समझें, हम उनकी सक्रिय सहायता की अपेक्षा रखते हैं।

"ऋषि विनोबा ने कई बार कहा है कि इन दिनों वे दो ही विषयों का चिन्तन करते हैं। एक, ब्रह्म विद्या और दूसरे नागरी लिपि। उनकी गहरी श्रद्धा है कि नागरी लिपि द्वारा भारत, एशिया और विश्व में घनिष्ठ सांस्कृतिक एकता स्थापित की जा सकती है। हम आशा रखते हैं कि इस कार्य में भी सभी साहित्यिकों, शिक्षकों और विद्वत-जनों का सहयोग मिलेगा।"

राजस्थान में शिक्षा-सुधार :

इसी अंक में अन्यत्र राजस्थान में शिक्षा-सुधार संबंधी एक लेख प्रकाशित किया जा रहा है। यह आनन्द का विषय है कि सन् १९७२ के सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों पर गम्भीरता से विचार करके राजस्थान सरकार ने कुछ ठोस कदम उठाने का निश्चय किया है। इस कार्य के लिये जो उच्च-स्तरीय समिति बनाई गई थी उसने कुछ महीनों में ही एक मूल्यवान रिपोर्ट पेश की, जिसकी लगभग सभी सिफारिशें शासन ने स्वीकार कर ली हैं और उन्हें जुलाई से लागू भी कर दिया है। इन सिफारिशों की जानकारी तत्संबंधी लेख में दी गई है।

हम इस शुभ-कार्य के लिये राजस्थान शासन को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि अन्य राज्यों में भी शिक्षा-सुधार की ओर इसी प्रकार विशेष ध्यान दिया जायगा।

गांधीजी

शिक्षा का अर्थ क्या?

शिक्षा का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ केवल अक्षर ज्ञान ही हो, तो वह एक हथियार रूप बन जाती है। उसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। जिस हथियार से आपरेशन करके रोगी का अच्छा किया जाता है, उसी हथियार से दूसरा की जान भी ली जा सकती है। अक्षर ज्ञान के बारे में भी यही बात है। बहुत से लोग उसका दुरुपयोग करते हैं। यह बात ठीक हो तो यह साबित होता है कि अक्षर ज्ञान से दुनिया को लाभ के बजाय हानि होती है।

शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर ज्ञान ही होता है। लोगो को लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना मूल या प्रारंभिक शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारी से खेती करके रोटी कमाता है। उसे दुनिया की साधारण जानकारी है। माता-पिताके साथ कैसा बरताव करना चाहिए अपनी पत्नी के साथ कैसा बरताव करना चाहिए, लडके-बच्चो के साथ किस तरह रहना चाहिए, जिस गाँव में वह रहता है वहाँ कैसा बरताव रखना चाहिए—ये सब बातें वह अच्छी तरह जानता है। वह नीति यानी सदाचार के नियम समझता है और पालता है। उसे अपना सही करना नहीं आता। ऐसे आदमी को आप अक्षर ज्ञान किस लिए देना चाहते हैं? अक्षर ज्ञान देकर उसके सुख में और क्या बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोपडी या उसकी हालत के प्रति उसमे आपका असन्तोष पैदा करना है? ऐसा करना हो तो भी आपको उसे पढ़ाने लिखानेकी जरूरत नहीं। पश्चिम के तेज से दबकर हम यह सोचने लगते हैं कि लोगो को शिक्षा देनी चाहिए, पर इसमें हम आगे पीछे का विचार नहीं करते।

अब उच्च शिक्षा को लें, मैंने भूगोल विद्या सीखी। बीजगणित भी मुझे आ गया। भूमिति का ज्ञान मैंने हासिल किया। भूगर्भशास्त्र का भी रट डाला।

पर उससे हुआ क्या ? मेरा क्या भला हुआ और मेरे आसपासवालो का मैंने क्या भला किया ? इससे मुझे क्या लाभ हुआ ? अंग्रेजो में ही एक विद्वान हक्सले ने शिक्षा के बारे मे यह कहा है—

"उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसका शरीर इतना सधा हुआ है कि उसके काबू मे रह सके और आराम व आसानी के साथ उसका बताया हुआ काम करें। उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त है और न्यायदर्शी है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरत के कानूनो से भरा है और जिसकी इन्द्रियॉ उसके वश में हैं, जिसकी अन्तरवृत्ति विशुद्ध है और जो नीच आचरण को धिक्कारता है तथा दूसरो को अपने जैसा समझता है। ऐसा आदमी सचमुच शिक्षा पाया हुआ माना जाता है, क्योंकि वह कुदरत के नियमो पर चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।"

अगर यही सच्ची शिक्षा हो, तो मैं सौगन्ध खाकर कह सकता हूँ कि ऊपर मैंने जो शास्त्र गिनाए हैं उनका उपयोग मुझे अपने शरीर या इन्द्रियो पर काबू पाने में नही करना पडा। इस तरह प्रारम्भिक शिक्षा लीजिए या उच्च शिक्षा लीजिए, किसी का भी उपयोग मुख्य बात में नहीं होता, उससे हम मनुष्य नही बनते।

इससे यह नही मान लेना चाहिए कि मैं अक्षर ज्ञान का हर हालत में विरोध करता हू। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि उस ज्ञान की हमे मूर्तिपूजा नही करनी चाहिए वह हमारे लिए कोई कामधेनु नही है। वह अपनी जगह शोभा पा सकता है। और वह जगह यह है कि जब मैंने और आपने इन्द्रियो को वश में कर लिया हो और जब हमने नैतिकता की नीव मजबूत बना ली हो, तब यदि हमें लिखना-पढना सीखने की इच्छा हो, तो उसे सीखकर हम उसका सदुपयोग जरूर कर सकते हैं। वह गहने के तौर पर अच्छा लग सकता है। लेकिन यदि अक्षर ज्ञान का यह उपयोग हो, तो हमें इस तरह की शिक्षा लाजिमी तौर पर देनेकी जरूरत नही रह जाती। उसके लिए हमारी पुरानी पाठशालाएं काफी है। उनमे सदाचार की शिक्षा को पहला स्थान दिया गया है। वह प्रारम्भिक शिक्षा है। उस पर जो इमारत खड़ी की जायगी, वह टिक सकेगी।

शिक्षा से बड़े-बड़े लोग भी मुट्ठी में :

लेकिन मुझे पढ़ने का सब से बड़ा लाभ यह दीखता है कि उससे आप 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ सकेंगे। तुकाराम की गाथा पढ़ सकेंगे। सर्वोदय की पुस्तकें पढ़ सकेंगे। घर-घर सर्वोदय की पुस्तकें रहेंगी। नहीं तो कल हम यहाँ से चले जायेंगे, सिर्फ एक घण्टे में कितना बता सकेंगे? पीछे कुछ भी न रहेगा। इसकी अपेक्षा अगर पढ़ना-लिखना आ जाय, तो पुस्तकें खरीद कर पढ़ सकेंगे। बड़ों-बड़ों का ज्ञान पुस्तकों में भरा रहता है। इसलिए पढ़ना आने पर घर बैठ ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, बुद्ध भगवान् को पढ़ और समझ सकते हैं। छोटी-सी आलमारी में ये बड़े-बड़े समा सकते हैं। इसलिए पढ़ने लिखने का शौक अच्छी ही बात है।

लड़कों से लड़कियों की शिक्षा बहुत जरूरी :

लड़कियों को भी पढ़ना चाहिए। सच पूछें तो उन्हें लड़कों से भी अधिक ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि लड़के होने पर मेहनत मशक्कत करेंगे अनाज की उपज पैदावार बढ़ायेंगे। लेकिन लड़कियां को तो बच्चों को पढ़ाना है आदमी की पैदावार बढ़ानी पड़ती है। फिर बतलाइए कि देश की पैदावार बढ़ानेवालों का शिक्षा की अधिक आवश्यकता है या बच्चों को उपज बढ़ानेवालों को? स्त्रियाँ बच्चों को पढ़ायेंगी यानी राष्ट्र को पढ़ायेंगी। इसलिए उनके पास ज्ञान की चाभी अवश्य होनी चाहिए।

हर घर में बिलकुल बचपन से मां से ज्ञान पाने की सुविधा हो जाए, तो फिर पूछना ही क्या है? मजा ही मजा है। छोटे बच्चों को जो सिखाना चाहिए, वह स्कूल में नहीं मिल सकता, वह मां ही दे सकती है। इसलिए उस ज्ञान की आवश्यकता है। स्त्रियों की शिक्षा के लिए गाँव में शाम को ३-४ बजे कक्षा चलनी चाहिए। उस समय पुराण और 'ज्ञानेश्वरी' का पाठ भी हो। 'ज्ञानेश्वरी' आदि सदैव कण्ठस्थ होनी चाहिए।

कम से कम १० हजार कविताएँ कण्ठस्थ हों :

आज कल बच्चे स्कूल जाते हैं, पर उन्हें कण्ठस्थ कुछ भी नहीं रहता। सिर्फ पुस्तकें पढ़ते हैं। लेकिन जब हमें खेतों पर जाना होगा, तो क्या रोटी की जगह पुस्तकों की गठरी बांध ले जायगे? इसके लिये कुछ ज्ञान कठस्थ भी होना ही चाहिए। किन्तु आज कल वैसा सिखलाया ही नहीं जाता। बचपन में कम से कम १० हजार कविताएँ तो कठस्थ रहनी ही चाहिए। यह बात बड़ी सरल भी है। मान लीजिये, छठे वर्ष से यह तय कर दें कि रोज एक "अभंग याद करना प्रारम्भ करेंगे", तो साल के १०–२० दिन छोड़ देने पर भी प्रतिवर्ष ३५० कविताएँ याद हो ही जायेंगी। इस तरह ३० वर्षों में यानी छत्तीसवें वर्ष १० हजार श्लोक याद हो जायेंगे। 'ज्ञानेश्वरी' की दो-तीन

हजार ओवियाँ, तुकाराम के पाँच सात सौ अभंग, एकनाथी भागवत से कुछ आदियाँ और आज कल की कुछ कविताएँ कम स कम एसी दस हजार कविताएँ तो याद होनी ही चाहिए फिर घर में खूब गीत गाये जायेंगे और बच्चे भी उन्हें सुनते सुनते याद कर लेंगे।

पहले पाँच साल की शिक्षा स्त्रियों के ही जिम्मे हो :

इस तरह स्त्रियों का बहुत सा ज्ञान चाहिए। फिर स्कूलों की जरूरत न होगी मास्टरों को वेतन भी न देना पडेगा लडके लडकियों की शिक्षा स्त्रियों के हाथों म रहेगी। दोनो का एक ह जगह अच्छी शिक्षा मिलेगी। फिर पुरुष लोग भी दूसरे बहुत से काम कर पायेंगे। पहले पाँच साल म शिक्षण के लिए एक ही पुरुष शिक्षक काम का नहीं। उसके लिए स्त्री शिक्षकाएँ ही चाहिए। इससे बच्चों को बुरी लत नही लगती।

शिक्षण कैसा मिल रहा है इसकी परीक्षा मैं बालिकाओं की शिक्षा से ही करूँगा, देखूँगा कि वे भक्ति ज्ञान आदि बातों म कितनी प्रवीण है? इसीसे उनकी शिक्षा का पता चल जायगा। जितने भी ज्ञानी और सन्त हुए व सब (ज्ञानदेव, तुकाराम शकराचार्य आदि) पुरुष ही थ और स्त्री तो एक आध ही कहीं हुई। जैसे मीराबाई मुक्ताबाई जनाबाई। फिर भी आत्मज्ञान के क्षेत्र म स्त्रियाँ पुरुषों से आगे बढ सकती है। मैं कई बार कह चुका हूँ कि जब यहाँ शकराचार्य जैसी स्त्रियाँ पैदा होंगी तभी हिन्दुस्तान आगे बढेगा।

स्त्रियाँ समाज का नियत्रण करें

स्त्रियो के हाथ में ही समाज का नियत्रण होना चाहिए। अगर उनकी शिक्षा चल पडेगी तो क्या फिर बीडी, सिगरेट और शराब चलेगी? य सारे पुरुषों के चलाये ढग है। स्त्रियाँ उन्हें सदैव क्षमा करती है। कहती है कि भई पुरुष ही ठहरा। वह कुछ भी करें तब भी चल सकता है। यानी व पुरुषको पशुकी तरह मानती है। जैसे किसी बैल को हम कहते है कि वह कुछ भी करें बेचारा बैल ही है वैसे पुरुष कुछ भी करें व उन्हें क्षमा कर देती है। किन्तु अगर किसी स्त्री का आचरण ठीक न हो तो उसे वह सहन नहीं होता। इसमे पुरुष का कोई गौरव नहीं न्यूनता ही है।

पुरुषो पर स्त्रियों का अकुश हो

स्त्रियो को पुरुषो पर नियत्रण करना चाहिए। उन्हें अपने हाथ में अकुश रखना चाहिए। तभी समाज सुधर सकता है। पुरुषो ने बडे-बडे राज्य स्थापित किये, चुनाव लडे, सजाएँ दी, सेना खडी की, लडाइयाँ लडी। यह सब किया, फिर भी समाज को अभी तक कोई आकार नहीं मिल पाया। अभी वह अपनी ही जगह पर

है। उसमें परिवर्तन लाना होगा। लेकिन वह कौन करेगा ? मैं समझता हूँ कि इस काम में स्त्रियों से बहुत मदद मिलेगी। इसलिए उन्हें शिक्षा की जरूरत है और शिक्षा उनके हाथ में होनी चाहिए। तभी पुरुषों के हाथों अच्छे-अच्छे काम हो सकेंगे। वे मोटे-ताजे, तन्दुरुस्त होते हैं, अच्छे काम कर सकते हैं। फिर भी उन पर अंकुश रखने की आवश्यकता है।

सभी गुण स्त्रीलिंगी :

देखिये, जितने गुण हैं, सभी स्त्रीलिंगी हैं। भक्ति स्त्री है, मुक्ति स्त्री है शक्ति स्त्री है और युक्ति भी स्त्री है। मैंने ही इन्हें स्त्रीलिंगी नहीं बनाया और न इन्हें मैंने ही खोज कर निकाला है। स्वयं भगवान् ही गीता में कहते हैं —

कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।

सारांश, पुरुष पराक्रम करते हैं लेकिन उनपर भक्तिरूपी अंकुश चाहिए। स्त्रियाँ भक्ति की दिशा दिखलायेंगी, अतः शिक्षा उन्हीं को सौंपनी चाहिए।

स्त्रियाँ ही धर्म सिखला सकती हैं

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि स्कूलों में धर्म-शिक्षा दी जाय या नहीं ? मैं कहता हूँ "आज के स्कूलों में धर्म-शिक्षा कौन देगा ? अगर स्त्रियाँ ही शिक्षक हों तो वे धर्म सिखला सकती हैं। तभी स्कूलोंमें भक्ति का वातावरण होगा। बच्चे अच्छे निकलेंगे। मुझे सत्संगति तो प्राप्त हुई ही, पर मेरी माता का मुझ पर अत्यन्त परिणाम हुआ। याद आता है कि माँ कैसी पूजा करती थीं। सुबह कितनी जल्दी उठती थी। जरा सा भी समय मिला, तो वे भगवान् का नाम लेती थीं। अन्य व्यर्थकी बातों का उस पर कुछ भी प्रभाव न होता था। यह सब मुझे भलीभाँति याद है। इसीलिए मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि बचपन की शिक्षा स्त्रियों के ही हाथ में रहे और पुरुष ऊपरकी पाठशालाओं में पढ़ायें। इससे बालक-बालिकाएँ एक साथ रहेंगी और उन्हें प्रेमकी शिक्षा मिलेगी।

विचार प्रेम से, दण्ड से नहीं

पहले माना जाता था कि मारने से विद्या आती है छड़ी लगे छमछम, विद्या आवे घम घम। हमारे एक नारायण भास्कर नाम के शिक्षक थे, काफी लम्बे-चौड़े। उनके हाथ में सदैव छड़ी रहती। उनका नाम हम लोगों ने "यमाजी भास्कर" रखा था, इतना उनसे डर लगता था, विद्या याद आना तो दूर रहा, छड़ी निकालते ही वह भाग जाती थी। बुद्धि होने पर भी नष्ट हो जाती थी। क्या कभी विद्या इस तरह मारने से आती है ? वह तो प्रेम से, समझाने से ही आती है।

इसके लिए माता के मुँह से ही ज्ञान मिलना चाहिए। यानी माँ घर में उसे मेवा-मिठाई भी देगी और रसोई भी सिखायेगी। एक बार वे स्कूल में खायेंगे और दूसरी बार घर पर। भगवान् कृष्ण की एक कहानी सुनिये।

माँ के हाथ का भोजन :

श्रीकृष्ण संदीपनी के आश्रम में गये तो १६ वर्ष के थे। तब तक वे गोकुल में गौएँ ही चराते थे बच्चों के साथ खेलते और कंस आदि का भी काम तमाम कर चुके थे। तब नन्दबाबा को लगा कि इतना बड़ा हो गया फिर भी अनपढ़ ही रहा इसे पढ़ना लिखना आना ही चाहिए। इसलिए उन्होंने उसे संदीपनी के आश्रम में भेजा।

वहाँ श्रीकृष्ण छह महीना में इतनी विद्याएँ सीख गये कि संदीपनी पहचान गये—यह आत्मविज्ञानी है इसे मैं और क्या सिखा सकूंगा ? इसलिए उन्होंने कृष्ण से कहा—तू जंगल में जाकर रसोई के लिए लकड़ियाँ तोड़ लाया करें। कृष्ण यह काम अच्छे ढंग से करते रहे। गुरु को भी सदा उनसे सन्तोष रहता कि इतना बड़ा ज्ञानी होकर भी कितनी नम्रता से रहता है।

जब कृष्ण की विद्या समाप्त हुई और वे घर लौटने लगे तो गुरु ने कहा — वर माँगो। कृष्ण ने कहा — आप ही दे दीजिए। संदीपनी ने कहा — नहीं मेरी प्रतिष्ठा रखने के लिए ही कुछ माँगो। कृष्ण ने कहा — ठीक है और उन्होंने वर माँगा — मातृहस्तेन भोजनम—यानी मरते तक मुझे माता के हाथ से भोजन मिले। उन्होंने और कुछ भी वर नहीं माँगा। संदीपनी ने उन्हें वह वर दे दिया। भगवान कृष्ण ११६९ वर्ष तक जिये और उनके मरने के बाद ही उनकी माँ मरी।

माँ के भोजन में बहुत बड़ी विद्या

इसके विपरीत अब उन बच्चों की क्या दशा होती होगी जिन्हें कभी भी माँ के हाथ का भोजन नसीब नहीं होता। वह होटल में खाते हैं या कहीं भोजनालय में। माँ के भोजन में बहुत बड़ी विद्या है। उस भोजन में सिर्फ घी और रोटी नहीं रहती उसमें प्रेम भी होता है। इसीलिए भगवान ने मातृहस्तेन भोजनम् यह वर माँगा। फिर भी उन्होंने यह नहीं माँगा कि मातृमुखेन शिक्षणम्— यानी माता के मुंह से शिक्षा मिले। उतना माँगना उन्होंने मेरे लिए बाकी रखा। यह बड़ा ही सुन्दर बात है मातृमुखेन शिक्षणम् और मातृहस्तेन भोजनम्।

दोनों एक साथ हों .

आज कल के शिक्षक सिर्फ बच्चों को पढ़ाते हैं स्वयं उनके साथ कुछ काम नहीं करते। ऐसे शिक्षक किसी काम के नहीं। अगर मातृहस्तेन भोजनम और मातृमुखेन शिक्षणम् ये दोनों बातें एक साथ जुड़ जायें तो हिन्दुस्थान की कली एकदम खिल उठे। हम दुनिया को सिखा सकेंगे चारों ओर ज्ञान फैला पायेंगे। आप बहनों को भी मैं यह सुझाव दे रहा हूँ।

श्रीमन्नारायण

'समत्वं योग उच्यते'

इस वर्ष जून के प्रथम सप्ताह में केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि की ओर से कौसानी, जिला अल्मोड़ा, में उत्तर भारत के प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। उसमें उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश व जम्मू-काश्मीर के चुने हुए कार्यकर्ताओं ने पाँच दिन बड़ी आत्मीयता व लगन से भाग लिया। कौसानी के ही सरकारी डाक-बंगले में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जून सन् १९२९ में दस दिन रहकर गीता के अनुवाद को अन्तिम रूप दिया और "अनासक्ति-योग" की मूल्यवान भूमिका भी लिखी थी। गांधी शताब्दी के अवसर पर उत्तर प्रदेश शासन ने इस बंगले को गांधी निधि के सिपुर्द कर दिया था। इसी बंगले को अब "अनासक्ति आश्रम" के रूप में उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि द्वारा संचालित किया जा रहा है और यहीं कार्यकर्ताओं का सम्मेलन भी हुआ। सुबह और शाम प्रार्थना के बाद हम "अनासक्ति-योग" का सामूहिक वाचन करते थे। काफी वर्षों के पश्चात् पूज्य बापू के इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के अध्ययन का फिर मौका मिला। इस पुस्तक का अब अधिक व्यापक प्रचार होना आवश्यक प्रतीत होता है। आश्चर्य है कि गांधीजी देश की राजनीति में इतने सक्रिय रहते हुए भी गीता के गहन चिन्तन व अध्ययन के लिये इतना समय किस प्रकार निकाल सके! लोकमान्य तिलक को जब छः वर्ष की कड़ी सजा दी गई और बर्मा के मांडले जेल में भेजा गया तब उन्होंने भी समय का पूरा सदुपयोग कर 'गीता-रहस्य' जैसा अमर ग्रन्थ लिख डाला था। हमारे पुराने नेताओं की यही खूबी थी। देश की आजादी के संघर्ष में अति व्यस्त रहते हुए भी उनकी बुनियादी आस्था व व्यक्तित्व आध्यात्मिकता पर आधारित था।

* * * *

गीता भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उसमें केवल सात सौ श्लोकों में भगवान् वेद व्यासने वेदों व उपनिषदों का सार भर दिया है। 'निष्काम कर्म' का मौलिक विचार गीता की विशेषता मानी जाती है। बापू ने इसीको 'अनासक्ति-योग' की संज्ञा दी थी। हम पुरुषार्थ करते जावें, किन्तु कर्म के फल की आसक्ति न रखें। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी बुद्धि समत्व में ओतप्रोत हो। हमारे

लिये स्तुति-निन्दा, सुख-दुख, सिद्धि-असिद्धि समान हो। दूसरे अध्याय के ४८ वें श्लोक में कृष्ण भगवान् ने इस बुनियादी विचार को बहुत अच्छी तरह समझाया है:—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगंत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

दूसरे अध्याय में ही भगवान् ने 'स्थितप्रज्ञ' या स्थिरबुद्धि के लक्षण भी बतलाये हैं —

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

यह स्थिति तभी प्राप्त हो सकती है जब हम अपनी सभी इन्द्रियों को वश में रख सकें और आत्म-संयम द्वारा अपने मन पर नियंत्रण करने में सफल हों। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही स्थित-प्रज्ञ पुरुष इन्द्रियों के विषयों से अपने मन को खींच लेता है और समत्व बुद्धि प्राप्त करता है।

इसी आदर्श को गुरु नानक ने बड़े सरल शब्दों में व्यक्त किया है:—

सुख-दुख दोनों सम करि जाने,
और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता,
तिन जग तत्व पिछाना।

जब भगवान् राम चौदह वर्ष के बनवास के समय वाल्मीकि ऋषि के आश्रम पहुँच जाते हैं और नम्रता से पूछते हैं कि हम कहाँ निवास करें तब ऋषि बड़ी चतुराई से मर्मभरा उत्तर देते हैं —

सबके प्रिय, सबके हितकारी।
सुख-दुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाँडि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

इन पंक्तियों में भक्त कवि तुलसीदास ने भारत के गहनतम तत्व-ज्ञान का नवनीत हमें कितनी सादी-सीधी भाषा में दान कर दिया है।

* * * *

संस्कृत साहित्य में स्थितप्रज्ञ पुरुष को कमलवत् बतलाया गया है। जैसे कमल का पत्ता पानी में रहते हुए उससे सदा अलिप्त रहता है, वैसे ही समत्वबुद्धि वाला व्यक्ति संसार के विभिन्न कार्यों में रत होते हुए भी सुख-दुःख, राग-द्वेष, सफलता-

विफलता से विचलित नहीं होता। "विष्णुसहस्रनाम" में तो भगवान् के हजार नाम-गुणों में कई स्थानों पर कमल का विशेषण दिया गया है —

'पद्मी पद्मनिभेक्षण' और 'पद्मनाभ अरविंदाक्ष पद्मगर्भ शरीरभृत्।'

यद्यपि विनोबा का हाल ही में जो हस्तलिखित 'विष्णुसहस्रनाम' प्रकाशित हुआ है उसमें 'अरविंदाक्ष' और 'पद्मगर्भ' के अर्थ को इस प्रकार समझाया है — 'जब हृदय कमलवत् निर्मल होता है तभी साधक कमल-नयन बन सकता है। हमारे लिए यही आदर्श है। हमारी आँख भी कमल के समान निर्मल होनी चाहिये। निर्मल, यानि सबका गुण देखनेवाली आँख।

योगेश्वर कृष्ण ने भी धनुर्धर अर्जुन से कहा था —

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

(अध्याय ५ श्लोक १०)

अर्थात् जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग करके कार्य करता है वह जल में कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

इसीलिए कमल को भारतीय सभ्यता का प्रतीक माना जाता है। चाहे कितनी वर्षा होती रहे, किन्तु कमल के पत्ते और फूल सदा जल के ऊपर ही तैरते रहेंगे, कभी पानी में डूबेंगे नहीं। मनुष्य को भी दुनिया की आँधी बौछारों में से गुजरते हुए शान्त, प्रसन्नचित्त व समदर्शी क्या रहना चाहिये? इसके बिना हमें समत्व-दर्शन प्राप्त न हो सकेगा।

*　　　*　　　*　　　*

अकसर यह समझा जाता है कि अनासक्ति का आदर्श निभाना केवल ऋषि, मुनियों व महात्माओं के लिए सम्भव है, साधारण नागरिकों के लिए तो वह अप्राप्य ही माना जायगा। किन्तु यह धारणा सही नहीं है। मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि जब तक साधारण मनुष्य भी निस्पृह भावना से अपना दिन प्रतिदिन का काम करना नहीं सीखेगा तब तक वह अपने उद्देश्यों को हासिल करने में कामयाब न हो सकेगा। चाहे वह वकील हो या डाक्टर, सरकारी कर्मचारी हो या व्यापारी, शिक्षक हो या विद्यार्थी, राजनीतिज्ञ हो या समाज-सेवक, उसे अपना कार्य अलिप्त-वृत्ति से करना ही होगा। अन्यथा उसका शरीर, दिल और दिमाग अस्त-व्यस्त व छिन्न भिन्न हुए बिना न रहेगा। मेरे पूज्य पिता श्री धमनारायणजी मुझसे अकसर कहा करते थे कि योगियों व साधकों के दर्शन करने के लिए वनों व आश्रमों में जाने की जरूरत नहीं है। ऐसे बहुत से गृहस्थ, स्त्री व पुरुष हैं जिनका जीवन कमल-पत्र

जैसा अलिप्त और अनासक्त हूं और जो 'योग कर्मसु कौशलम्' का आदर्श अपनी जिन्दगी में उतार रहे हैं। वर्तमान राजनीति में तो कोई शख्स आगे बढ़ ही नहीं सकता, जब तक उसकी प्रज्ञा काफी मात्रा में स्थिर न हो और वह साधन-शुद्धि का मार्ग स्वीकार न कर ले। जब मैं कांग्रेस का महामंत्री था तब युवक-कांग्रेस के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए उन्हें अक्सर सलाह देता था —"आप जल्दबाजी न करें। पहले अपने शरीर हृदय और बुद्धि को परिपक्व व मजबूत बनाने के लिये कड़ी मेहनत कीजिए। धीरज, हिम्मत व निष्काम-भावना का विकास कीजिए। तभी आपका भावी राजनीतिक जीवन सही ढग से खिलेगा।" कई नवयुवकों ने ऐसा ही किया और वे आज अपने-अपने क्षेत्र में सफल कार्यकर्ता माने जाते हैं। कइयों ने धीरज और सब्र न रखा और इसलिये वे कहीं के न रहे।

*　　*　　*　　*

यहाँ सन् १९७१ के भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय की एक विशेष घटना का जिक्र करना अप्रासंगिक न होगा। जब पूर्व बंगाल से लगभग एक करोड़ शरणार्थी भारत में आ गये तब हमारी परेशानी की कोई सीमा न थी। हम सब यही समझते थे कि उनका पाकिस्तान वापिस चला जाना नामुमकिन है और वे हमेशा के लिये भारत पर बोझ बनकर रहेंगे। लेकिन उस कठिन परिस्थिति में श्रीमती इंदिरा गांधी ने बड़ी हिम्मत, साहस व धीरज से काम लिया। अन्त में 'स्वतंत्र बंगला' के रूप में एक नये पड़ोसी मित्र राष्ट्र का जन्म हुआ और कुछ ही महीनों में सभी शरणार्थी अपने देश वापिस चले गये।

सबसे कमाल का कदम तो इंदिराजी ने तब उठाया जब बंगला देश में लड़ती हुई पाकिस्तानी फौजों ने आत्म समर्पण कर दिया। उस खुशी व विजय की घड़ी में उन्होंने अपना संतुलन नहीं खोया और बड़ी उदारता व समझदारी से पश्चिम मोर्चे पर इकतर्फा ही 'सीज-फायर' का ऐलान कर दिया। उनका यह कदम राजनीति के इतिहास में एक अपूर्व घटना मानी जायगी। उस समय यदि वे समत्व-बुद्धि व दरियादिली से काम न लेती तो जीती हुई बाजी भी हार में परिणत हो सकती थी। इस दूरदृष्टि से अन्तर-राष्ट्रीय जगत् में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी और दोनों देशों की जनता विनाश की प्रचंड ज्वाला की लपटों से बच गई।

सरदार पटेल ने भी स्वराज्य प्राप्ति के समय जिस शान्ति, धीरज व कार्य-कुशलता से करीब छः सौ देशी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित करा लिया वह भी संसार का एक राजनीतिक चमत्कार ही गिना जायगा। उस समय अगर सरदार पटेल क्रोध, द्वेष व हिंसा के वातावरण में लिप्त हो जाते तो यह अद्वितीय सफलता कभी हाथ न आती और स्वतंत्र भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते।

पंडित जवाहरलाल नेहरू तो राजनीति-क्षेत्र में भी एक सम-पुरुष थे। उनकी ईमानदारी व हृदय की शुद्धता सर्वविदित थी। सत्तरह वर्षों तक उन्होंने भारत के प्रधान मंत्री का पद सुशोभित किया। इस बीच देश में कई प्रकार के उतार-चढ़ाव आये, किन्तु जवाहरलालजी ने हमेशा सम-बुद्धि व धैर्य से शासन का कार्य संचालित किया। उन्होंने कई बार कहा कि मेरे तीन प्रेरणा-स्रोत हैं— गीता, गौतम और गांधी। स्वर्गवास के समय उनके पलंग के नजदीक रखी मेज पर सिर्फ एक ही किताब मिली और वह थी गीता का पाकिट-संस्करण।

बापू तो अवतार-पुरुष ही थे। जब उन्होंने भारत की राजनीति में प्रवेश किया तब तो हिंसा में विश्वास रखनेवाले क्रान्तिकारियों का ही जमाना था। किन्तु गांधीजी ने गीता और चरखा को अपना औजार माना और सत्य व अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता के संग्राम का नेतृत्व किया। 'भारत छोड़ो' उत्क्रान्ति के समय भी उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति क्रोध या कटु-शब्दों का उपयोग नहीं किया। उनकी समत्व-बुद्धि सचमुच अतुलनीय थी। गीता का अनासक्ति-योग तो उनकी नस-नस में समा गया था। इसीलिए वे परिनिर्वाण के समय भी 'हे राम' का उच्चारण शान्तिपूर्वक कर सके, 'हाय राम' की कराह नहीं।

प्राचीन भारत के महाराजा जनक का उदाहरण तो दुनियाभर में मशहूर है। उन्होंने कमल-सदृश निस्पृह रहकर अपना राज-काज चलाया। उनके उद्‌गार यह थे —

> मिथिलायां समृद्धायां नमे ऋध्यति किंचन।
> मिथिलायां प्रदीप्तायां नमे ह्यति किंचन।

अर्थात् मिथिला की समृद्धि पर मुझे हर्ष नहीं होता और मिथिला के जल जाने पर मुझे शोक नहीं है।

* * *

हमें यह भी भलीभाँति समझ लेना होगा कि साधन-शुद्धि के आग्रह के बिना समत्व-बुद्धि सम्भव नहीं हो सकेगी। यदि हम अपने साध्य की प्राप्ति के लिये अशुद्ध साधन इस्तेमाल करने में हिचकिचाते नहीं और उद्देश्यों को किसी भी तरह हासिल करना ही हमारी मुख्य चिन्ता रहती है, तब हमारी बुद्धि सतुलित व निस्पृह किस प्रकार रह सकती है ? फिर तो हम असत्य, धोखा व हिंसा के चक्र में पड़ जायेंगे और 'स्थितप्रज्ञ' आदर्श हवा में उड़ जायेगा।

राष्ट्रपति निक्सन ने एक झूठ छिपाने के लिये कितनी असत्य बयान दिये, आखिर उन्हें जलील होकर त्याग-पत्र देना पड़ा। इस सिलसिले में अमरीका के

उच्चतम न्यायालय व वहाँ के कुछ नौजवान पत्रकारो की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोडी होगी।

इसी तरह पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्याखाँ ने पूर्व बंगाल के नेता शेख मुजीबुर्रहमान व वहाँ की जनता को कुचलने का पूरा षडयंत्र रचा और जोरो-जुल्म की हद कर दी। फलत पाकिस्तान ने पूर्व बंगाल को खो दिया और याह्याखाँ के जनरलो को परास्त होकर आत्म-समर्पण करना पडा। शेख मुजीब की तो जेल में कब्र भी खुद गई थी लेकिन खुदा के दरबार में देर भले हो, अन्धेर नही है। "जाको राखे साइयाँ मार सके नहि कोय।" कहावत चरितार्थ हुई। उलटे याह्याखाँ को जेल के सीकचो के पीछे जाना पडा। ऐयाशी व जुल्म की सजा उन्हें इसी जिन्दगी में अच्छी तरह मिल गई।

अकसर यह समझा जाता था कि गांधीजी की साधन-शुद्धि की उक्ति एक 'उँची फिलोसफी' थी। किन्तु अनुभवों से अब यह सिद्ध हो गया है कि साधन और साध्य का वेदान्त एक हवाई फिलासफी नही, पर कठोर सत्य व व्यावहारिक ज्ञान है। यदि अच्छे उद्देश्यो के लिये भी गलत साधन प्रयोग में लाये जावेंगे तो उनका बुरा नतीजा परलोक में नही, इसी लोक में अवश्य मिल जायगा। पुराने जमाने में सजा मिलने में कुछ वर्ष लग जाते थे। अब तो, एक-दो साल में ही कडा दंड मिल जाता है। मेरा पक्का विश्वास है कि साधन-शुद्धि का नियम उतना ही अकाट्य व अटल है जितने प्रकृति या विज्ञानके नियम हैं। जिस तरह अग्नि में डालने से हाथ जल जाता है, उसी तरह अपवित्र तरीके के इस्तेमाल से हमारा पवित्र उद्देश्य नष्ट हो जाता है। इसमें जरा भी शक करने की गुंजाइश नही है।

मैंने कई वर्ष पहले अपने एक काव्य-संग्रह "अमर आशा" में यह दोहा अंकित किया था —

पाप, पुण्य सीखें मृदुल, जैसे कंटक, फूल।
अनासक्ति ही पुण्य है, मोह पाप का मूल॥

साधनों की शुद्धि व पवित्रता बिना अनासक्ति नही हो सकती और निस्पृहता के अभाव में समत्व-बुद्धि प्राप्त नही हो सकती। जो कोई इस सनातन सत्य को दरगुजर करेगा वह धक्के खायेगा और असफलता के खड्डे में गिरेगा, चाहे वह किसी देश का राष्ट्रपति हो, या प्रधान-मंत्री, या सर्वोदय नेता। यह अटल सत्य है कि किसीको निस्पृहता के अभाव में समत्व-बुद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। यह अटल सत्य किसीको भी नही बख्शेगा। हाँ, गलत तरीको के प्रयोग से कुछ क्षणिक सफलता का आभास हो सकता है। किन्तु अन्त में सर्वनाश सुनिश्चित है।

* * *

अन्तत समत्व-बुद्धि या विनोबाजी की शब्दावलि में 'साम्य-योग' तभी सध सकेगा जब हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचान लें। यह भौतिक शरीर हमारा वाहन है, औजार है, और हमारी आत्मा उसका सच्चा स्वामी है, यह अनुभूति हुए बिना 'निष्काम' कर्म की साधना मुमकिन नही है। अत हमारे ऋषियो ने गाया है :—

'तद् ब्रह्म निष्कलम् अह न च भूत-सघ'

सन्त-शिरोमणि नानक ने इसी विचार को बडे सरल किन्तु मार्मिक शब्दो में स्पष्ट किया है :—

बाहर भीतर एकै जानो,
यह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक बिन आपा चीन्हे,
मिटे न भ्रम की काई।

—∘∘—

"हम अहिंसक विरोध (नान-वायलेंट रेजिस्टेंस) के बदले अहिंसक सहयोग (नान-वायलेंट असिस्टेंस) की बात कहते हैं। गाधीजी ने अहिंसक विरोध की बात कही थी, पर आज हम उसीको चलायें, तो लाभदायी नही होगा। तब स्वराज्य ही नहीं आया था, तो लोकतन्त्र की बात ही कहाँ? आणविक अस्त्र भी तब आये नही थे। उनकी तैयारी दूसरे महायुद्ध के समय होने लगी। किन्तु आज लोकतंत्र है और आणविक शस्त्र भी आ गये है। विज्ञान जोरों से बढ रहा है। ऐसे जमाने में हम अहिंसक विरोध की बात नहीं चला सकते। इसलिये हमने अहिंसक सहयोग की बात कही। यह जमाने के अनुकूल तत्वों का विनियोग है।"

—विनोबा

(विनोबा चिंतन से)

वंशीधर श्रीवास्तव

बेकारी बढ़ाने वाले ये कारखाने

इन विश्वविद्यालयों और इनसे सबंधित डिग्री कालेजों की अनुत्पादक शिक्षा देश में केवल बेकार और निकम्मे तरुणों की वृद्धि कर रही है। १९७१ में इन विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों से निकले हुए ३ लाख ९४ हजार ग्रेजुएट बेरोजगार थे। १९७२ में यह सख्या लगभग दूनी यानी ६ लाख ३ हजार हो गई थी। इसका अर्थ हुआ कि प्रति वर्ष निकलने वाले ग्रेजुएटो का बड़ा प्रतिशत बेरोजगार है, अत बेरोजगार और बेकारी बढ़ाने वाले इन कारखानो को बद कर देने से राष्ट्र का किसी प्रकार का अनहित नही होगा।

विश्वविद्यालय किन के लिए

हमारे विश्वविद्यालय और डिग्री कालेज केवल कुछ अल्पसख्यक सुविधा-सम्पन्न विशिष्ट जनो की सफलता के लिए है और केवल थोडे़से आदमियों को सुविधाओं पर एकाधिकार दिलाने में मदद करते है, और इस तरह हमारी उच्च शिक्षा एक सुविधा सम्पन्न सामाजिक और आर्थिक प्रणाली को बनाये रखने मे सहायता करती है। यह शोषक और शोषितो के टुकड़ों में बटे हुए समाज के प्रच्छन्न हिंसक कृत्यो को स्वीकृति प्रदान करती है। सच पूछिये तो शोषण का एकाधिकार प्रदान करने वाली यह शिक्षा असमानता और बौद्धिक सकीर्णता को बढ़ाने का सब से बड़ा साधन हो रही है। हमारे विश्वविद्यालय यथा स्थितिवाद के सबसे बड़े गढ है और इन से वे अपेक्षाये कभी भी पूरी नही होगी, जो हमारा लोकतत्रीय समाजवाद शिक्षा से करता है।

स्वतन्त्रता के बाद विश्वविद्यालयो की सख्या में एक तरह का विस्फोट हुआ है। यह सख्या २ ५ लाख से बढ़कर २५ लाख हो गयी है। परन्तु अगर हम ऐसे लड़के-लड़कियों की, उम्र १७ से २४ वर्ष की रखें, जिन्हे विश्वविद्यालयो और डिग्री कालेजो में पढ़ने का मौका मिलना चाहिए तो इस उम्र के लड़के-लड़कियों का केवल २ २ प्रतिशत हमारे विश्वविद्यालयों और कालेजो में शिक्षा पा रहा है। अर्थात् इन उच्च शिक्षा संस्थाओं मे पढ़ सकने वाले हमारे लड़के-लड़कियो का ९६ ८ प्रतिशत ऐच्छिक या अनैच्छिक रूप से विश्वविद्यालय शिक्षा से वंचित रह रहा है। पूरी शिक्षा अब भी सुविधा सपन्न कुछ थोड़े लोगो तक ही सीमित है।

विश्वविद्यालयों से निकले हुए स्नातक और दूसरे लोगों का ८० प्रतिशत हमारे समाज के ऊपर के तबके से आता है और इस प्रकार इस उच्च शिक्षा के कारण समाज में अलगाव की प्रवृत्ति का पोषण हो रहा है, और वर्गभेद की खाई दिन प्रति दिन गहरी होती जा रही है। जो २० प्रतिशत छात्रवृत्ति आदि के बल पर नीचे के तबकों से आते हैं, वे भी मानों विशिष्ट वर्ग में प्रवेश करते हैं और वे जिस समाज से आते हैं उसे ही नीची निगाह से देखने लगते हैं। लोकतन्त्र के लिए यह प्रवृत्ति घातक है।

हिंसा और विनाश के विद्यालय

ये विश्वविद्यालय और कालेज हिंसात्मक और विनाशात्मक क्रियाकलापों के गढ़ हो रहे हैं। १६ दिसम्बर १९७२ को केन्द्रीय सरकार द्वारा लोकसभा में यह घोषणा की गई कि विश्व विद्यालय स्तर की ३२९७ संस्थाओं में से १० प्रतिशत के आसपास नित्य हड़ताल पर रहती हैं और सार्वजनिक सम्पत्ति के विनाश में लगी रहती हैं। यह चिंता की बात है। लेकिन इससे अधिक चिन्ता की बात यह है कि १९७२ के जून और नवम्बर के बीच देश की शिक्षा संस्थाओं में अशांति पैदा करने वाले ४३१६ मामले हुए। इसका अर्थ यह हुआ कि ६ महीने के बीच या तो देश के सभी विश्वविद्यालय और कालेज कम-से-कम एक बार अशांत ग्रस्त हुए और एक तिहाई तो दो बार अशांति के शिकार हुए।

हमने अपने कृषि विश्वविद्यालयों और इंडियन इन्स्टीट्यूट्स आफ टेक्नॉलाजी की स्थापना करके इन विश्वविद्यालयों और कालेजों को अलग और एकान्तिक कर दिया है। आज के युग में इन टेकनिकल सस्थानों की आवश्यकता है। परन्तु उनका सामान्य विश्वविद्यालय के साथ न रहना इन सामान्य विश्वविद्यालयों को व्यर्थता स्वतः सिद्ध कर देता है।

विश्वविद्यालय बंद हों

विश्वविद्यालय को बन्द करने से जो धन बचे उसका उपयोग माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण में किया जाये। परन्तु माध्यमिक स्तर की शिक्षा के व्यवसायीकरण का अर्थ उत्तर माध्यमिक व्यवसायिक कालेज (पोस्ट सेकेण्डरी वोकेशनल कालेज) खोलना नहीं है। (जैसा मध्य प्रदेश में किया जा रहा है) बल्कि सामान्य शिक्षा की संकल्पना को ही इतना व्यापक बनाना है कि आज माध्यमिक स्तर के विभिन्न प्रकार के शिक्षणों में जो भेद है वह मिट जाये जैसे सामान्य, वैज्ञानिक, टेकनिकल और व्यावसायिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा एक साथ सैद्धान्तिक, टेकनिकल, और व्यावसायिक हो। विश्वविद्यालयों के बंद होने के फलस्वरूप जो अध्यापक खाली हों वे इन संस्थाओं में अध्यापक का कार्य करें। नये पाठ्यक्रम के अनुसार ढलने को उनकी तैयारी होनी चाहिए।

इस प्रकार के विद्यालयों के लिए जनता अथवा सरकार पर्याप्त पूंजी, भूमि, भवन और साज-सज्जा दे। परन्तु जब हम सर्वसाधारण की शिक्षा (मास एजुकेशन) की बात सोचते हैं जो लोकतन्त्रीय समाजवाद में आवश्यक है कितनी भी सहायता विद्यालयी शिक्षण को सफल बनाने में अपर्याप्त सिद्ध होगी और हमें समुदाय में स्थित औद्योगिक कारखानों और कृषि फार्मों का व्यापक शैक्षिक उपयोग करना होगा। व्यावसायिक और टेक्नीकल ट्रेनिंग का उत्तरदायित्व केवल विद्यालयी प्रणाली का होने से काम नहीं चलेगा। विद्यालय के बाहर के सभी प्रकार के उद्यम इस ट्रेनिंग में भाग लें। क्योंकि बिना शिक्षकों, उद्योगों और व्यवसाय के नेता और श्रमिक एवं सरकार के सहयोग से यह काम पूरा नहीं होगा। घर-खेत-खलिहान, दूकान, सरकारी दफ्तर-खाने और कारखाने यदि सभी शिक्षा लेने-देने के साधन नहीं बने तो शिक्षा को सार्व-भौमिक नहीं बनाया जा सकता।

और फिर अगर इन व्यावसायिक विद्यालयों में जो ट्रेनिंग मिलती है, उसे अगर उन स्थानों पर पूरा नहीं किया गया जहाँ सचमुच काम होता है तो विद्यार्थीका सामाजिक व्यक्तित्व विकसित नहीं होगा जो लोकतंत्र की सफलता की सबसे बड़ी शर्त है।

इन माध्यमिक संस्थाओं में सर्वत्र शिक्षण का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषायें हों।

माध्यमिक स्तर की शिक्षा का व्यवसायीकरण तब अधिक सहज और प्राकृतिक होगा जब प्राथमिक स्तर की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से उत्पादन और विकास कार्यों से सम्बन्धित कर दी जाये और समाजोपयोगी उत्पादक काम शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन जाये। अतः इस स्तर की शिक्षा भी एक साथ सैद्धांतिक, प्रायोगिक, मैनुअल और टेक्निकल हो। सामान्य विषयों के शिक्षण का पूरा मूल्य प्राप्त करने के लिए बौद्धिक शिक्षा और हाथ के काम की शिक्षा का समन्वय किया जाये।

प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा का ढाँचा ऐसा बनाया जाये कि वह बच्चों के लिए ही नहीं, वयस्कों के लिए भी सुलभ हो। यह शिक्षा व्यक्ति में ज्ञान और निर्णय-शक्ति के विकास के साथ इस भावना का भी सृजन करे कि वह समुदाय का अंग है और उसका अपने और दूसरों के प्रति रचनात्मक उत्तरदायित्व है।

जाहिर है कि ऐसा ढाँचा तभी बनेगा जब इस स्तर की शिक्षा भी स्कूल की चहारदीवारियों के बाहर खेत-खलिहानों, दूकानों-कारखानों में दी जाय। नियमित रूप से विद्यार्थी समुदाय के इन क्षेत्रों में जहाँ सचमुच काम हो रहा है शिक्षा ग्रहण करें, और इस प्रकार स्कूल के बाहर निकल कर समुदाय के उत्पादन केन्द्रों में काम करना विद्यालय के टाइमटेबल का अंग हो।

आज आवश्यकता इस बात की है कि अधिकाधिक विद्यार्थी अधिक स्वतंत्रता-पूर्वक एक ही संस्था में एक स्तर से दूसरे स्तर तक अधिक आसानी से आ जा सकें। अतः विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं, व्यवस्थापकों, पाठ्यक्रमों और स्तरों के बीच कृत्रिम अवरोध और औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के बीच का व्यवधान समाप्त किया जाये और विद्यार्थी प्रारम्भिक स्तर की परम्परित अनिवार्य शिक्षाकाल को समाप्त किये बिना ही उच्च शिक्षा ग्रहण के लिए स्वतंत्र हों। उन्हें शिक्षा की एक शाखा से दूसरी शाखा में जाने की पूरी स्वतंत्रता हो। इस प्रकार की पुनरावर्तक शिक्षा (रिकरेन्ट एजुकेशन) विद्यालयों और अविद्यालयी शिक्षा के विरोध को समाप्त कर देगी। इसका यह भी अर्थ हुआ कि संस्थाओं में प्रवेश पाने की कसौटी अनौपचारिक और उदार हो और यह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं और उनके व्यावसायिक भविष्य को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाय उनके स्कूल के प्रमाण-पत्रों और डिप्लोमाओं के आधार पर नहीं।

"कॉलेज की शिक्षा में भी मैं जबरदस्त क्रांति कर देना चाहता हूँ। उसे मैं राष्ट्र की जरूरतों से जोड़ दूंगा। यंत्रों तथा ऐसी ही अन्य कलाकौशल संबंधी निपुणता की कुछ उपाधियाँ होंगी। वे भिन्न-भिन्न उद्योगों से संबंध रखेंगी और यही उद्योग अपने लिये आवश्यक विशारदों को तैयार करने का खर्च बरदास्त करेंगे। मसलन्, टाटा कंपनी से यह अपेक्षा की जायगी कि वह यंत्र विशारदों के लिये एक महाविद्यालय राज्य की देखभाल में चलावे। इसी प्रकार मिलों के लिये आवश्यक विशारद पैदा करनेके लिए एक कॉलेज मिल-मालिकों का संघ चलावे। यही अन्य उद्योग भी करें। व्यापारियों का भी अपना कॉलेज रहे। अब रह जाते हैं साधारण ज्ञान, (आर्ट्स) आयुर्वेद और खेती। साधारण ज्ञान के कितने ही खानगी कॉलेज आज भी स्वाश्रयी हैं ही। आयुर्वेद संबंधी महाविद्यालय प्रमाणित औषधालयों के साथ जोड़ दिये जायेंगे। रहे खेतीके विद्यालय। सो अगर अब इन्हें अपने नामकी लाज रखनी हो, तो इन्हें भी स्वावलंबी बनना ही पड़ेगा। इसलिये राज्य को कॉलेज शिक्षा पर कोई विशेष खर्च करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी।"

—मो. क. गांधी

"शिक्षाके प्रश्न का हल" लेख से उद्धृत

विनोबा जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि "जिस प्रकार भारत आजाद हो जाने के क्षण में पुराने युनियन जॅक की जगह आजाद भारत के तिरंगी झंडे ने ले ली, एक क्षण के लिये भी पुराना झंडा भारत बर्दाश्त नही कर सका उसी तरह भारत के आजाद होते हीं, तुरन्त आजाद भारत को शिक्षा-प्रणालि लागू करके पुरानी शिक्षा समाप्त हो जानी चाहिये थी।" शिक्षा पद्धति के परिवर्तन के लिये विनोबाजी का मानस कितना तीव्र था यह झंडे की जो मिसाल उन्होंने दी उससे जाहिर हो जाता है।

शिक्षा-सुधार के शाखा-ग्राही प्रयोग

नयी तालीम का विचार १९३८ में शुरू हुआ और १९४७ में भारत को आजादी मिली। नौ-दस साल के राष्ट्रीय शिक्षा के प्रयोगों के बावजूद शिक्षा-पद्धति में क्या परिवर्तन चाहिये इसका निर्णय भारतीय सरकार कर नही पाई। एक के बाद एक कमिटियों और कमिशनों की नियुक्ति होती गई और ढेर सारे रिपोर्ट प्रकाशित होते थे। फिर भी सक्षम और स्वावलम्बन की ओर अग्रसर होने वाली शिक्षाप्रणाली अब २७ वर्षों के बाद भी वही क्षितिजपर नही दिख रही है।

इस सारी उधडनुनकी और दुष्टचक्र की अगर कहीं जड है तो शिक्षा और डिग्रियों का नाता नोकरी से जोडा गया यही है। जब तक यह नाता तोड नही दिया जाता तब तक सही दिशा में शिक्षा का विचार शुरू ही नही होगा।

आखिर यह नई तालीम है क्या चीज ?

नयी तालीम का इतना बड़ा हौआ हमारे शिक्षा शास्त्रियों ने बना रखा है कि अब इस नाम के उच्चारण से भी चिढ और नफरत समाज में हम अनुभव करते हैं। आखिर यह नई तालीम है क्या बला ? मैं जब मेरे खुद के शिक्षण की ओर नजर डालता हूँ तो मेरे ध्यान में आता है कि मुझे विनोबा जी के आश्रम में और विनोबा जी के सान्निध्य में जो शिक्षा मिली वही दरअसल नयी तालीम थी, हालाँकि उस समय नयी तालीम शब्द का जन्म भी नही हुआ था।

मेरी शिक्षा-दीक्षा

मैं १४ साल की उम्र में विनोबाजी के आश्रम में दाखिल हुआ। असहयोग के आंदोलन के कारण मेरे पिताजी ने १९२० में वकालत छोड दी और मैंने प्राथमिक चौथी कक्षा में से ही सरकारी स्कूल छोड दिया। १९२० से १९२६ तक मेरी शिक्षा के लिये पिताजी ने तरह-तरह की व्यवस्था करके देखी लेकिन पता नही क्यों मैं कहीं भी जम नहीं पाया। विनोबा जी का आश्रम कोई पाठशाला तो थी नहीं। आधा घंटे कताई और सम्प्रार्थना, दो घंटे गृहकृत्य (रसोई, चक्की पीसना आदि) और बचे समय में अध्ययन, ऐसी दिनचर्या थी। लेकिन मुझे उसी में रस आ गया और

१९२७ से १९३० तक मैं स्वयं जो कुछ घंटा डेढ़ घंटा स्वाध्याय करता था उसके अलावा किताबी पढ़ाई की कोई व्यवस्था आश्रम की ओर से नहीं की गई थी। लेकिन विनोबाजी का ध्यान मुझपर बराबर रहता था और शायद वे देखना चाहते थे कि यह लड़का थोड़े दिनों में शरीरश्रम से ऊबकर चला जाता है या जमकर स्थिरता से आश्रम जीवन अपनाता है। लगता है कि मैं उनकी परीक्षा में शायद उत्तीर्ण हो गया। इसलिये अचानक एक दिन मुझे बुलाकर कहा कि अब उद्योग का तेरा समय आठ घंटे के बदले चार घंटे रहेगा और चार घंटे अध्ययन के लिये अवकाश दिया जायेगा। यह भी कहा कि वे स्वयं मुझे घंटा डेढ़ घंटा रोज पढ़ायेंगे और शेष समय में मुझे अगले दिनकी पढ़ाई की तैयारी पूरी करनी होगी।

पढ़ाई की अनोखी पद्धति

विनोबाजी के पास की मेरी पढ़ाई का प्रारम्भ उनके निजी पत्र-व्यवहार से हुआ। पत्र एक निमित्त मात्र था। लेकिन उसके माध्यम से सुन्दर अक्षर, ह्रस्व-दीर्घ आदि व्याकरण और भाषाशास्त्र का अभ्यास हो रहा है इसका आभास भी मुझे नहीं हुआ। मुझे लगा वे अपने निजी सचिव की तरह मुझसे काम ले रहे हैं। जब कभी उन्हें प्रवास में जाना होता था वे मुझे साथ ले जाने लगे और उनके भाषणों की रिपोर्ट तैयार करने को मुझसे कहते। मेरी तैयार की रिपोर्ट खुद दुरुस्त करते उसकी फिर से सुन्दर प्रतिलिपि बनाने को कहते। यह भाषण किसी अखबार में या पत्रिकामें देनेके लिए नहीं था। ऐसे ही रख दिया जाता था। मेरी रिपोर्ट दुरुस्त करने में उनका खुदका घंटा डेढ़ घंटा जाता था। कहते थे "नई मूर्ति बनाना आसान है लेकिन बनाई हुई मूर्ति को कम से कम छेड़ते हुए सुन्दर बनाना बहुत ही कुशलता का और परिश्रम का काम है। लेकिन यह सब मैं तेरे अध्ययन की दृष्टि से करता हूँ।" फिर मुझ से मूल रिपोर्ट और संशोधित रिपोर्ट की तुलना करने के लिये कहते और पूछते कि कौन-सा संशोधन क्यों किया गया और उससे क्या परिवर्तन हुआ यह समझाओ।

संस्कृत और अंग्रेजी की पढ़ाई

इसके अलावा उन्होंने मेरे लिये दो भाषाएँ चुनीं एक संस्कृत और दूसरी अंग्रेजी। संस्कृत के लिये शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य चुना। छोटे छोटे वाक्य क्रियापदों का कम-से-कम उपयोग; पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष प्रस्तुत करने की अद्भुत शैली। इत्यादि का परिचय कराते और कहते, देखो संस्कृत कितनी आसान है और कम-से-कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ प्रकट करने की क्षमता उसमें है।" अंग्रेजी के लिये वर्ड्सवर्थ की कविताओं की किताब चुनी। वर्ड्सवर्थ प्रकृति का रसग्रहण करनेवाला कवि माना गया है। विनोबाजी को शेक्सपीअर आदि से भी वर्ड्सवर्थ

आश्रम में मेरे पास तुम लोग जिस ढग से पढे हो उसी ढग से गोपुरी के बच्चों को पढाना है। इसके लिये अलग ट्रेनिंग की तुझे जरूरत नहीं है" मैंने सकोच त्यागकर अपनी सारी शक्ति, बुद्धि, और युक्ति इस गोपुरी विद्यालय के विकास में लगा दी। पढाते-पढाते ही अभ्यासक्रम भी बनाता गया, क्रमिक पुस्तकों में से तथा स्वतत्र ग्रथो में से चुनाव करके गद्य-पद्य की योजना बनाई, गणित के लिये पारम्परिक सवाला के साथ-साथ खेती और कताई बुनाई के आधार पर स्वतत्र गणित के सवाल भी तैयार किये। मेरी इच्छा थी कि बाल-मदिर की पढाई से लेकर मैट्रिक तक की पढाई की उम्र तक यानी पूरे १२ साल का एक अभ्यासक्रम इस पाठशालाको चलाते चलाते मैं तैयार कर सकूँ। लेकिन मुझे सिर्फ छ साल का समय ही पाठशाला के लिये मिल पाया,क्योंकि ग्रामसेवा मडलने नई तालीमको पढाई का अनिवार्य न रखकर ऐच्छिक कर दिया इस कारण पालको ने अपने बच्चो को बाहर के स्कूलो में भर्ती करा दिया और हमारी पाठशाला बद हो गई। फिर भी इस पाठशाला ने मुझे और मेरे विद्यार्थियो को जो अनुभव मिला वह दोनो का आत्मविश्वास बढानेवाला साबित हुआ। नई तालीम के क्षेत्र में मेरा यह प्रत्यक्ष योगदान भले अल्पकालीन रहा हो लेकिन नई तालीम सही ढग से चलाई जाय तो वह प्रचलित शिक्षा पद्धति से नि सशय बेहतर है इसका पर्याप्त दर्शन और अनुभव मुझे हुआ, यह लाभ सामान्य नहीं कहा जायगा।

अंग्रेजो की शिक्षा प्रणाली की हम नुक्ताचीनी करते हैं लेकिन उस प्रणाली मे विद्यार्थी का जो शैक्षणिक स्तर था वह आज की अपेक्षा कहीं अधिक था। आज की शिक्षण पद्धति विद्यार्थिको न स्वावलम्बी या सक्षम बनाती है, न उसका शैक्षणिक स्तर ही ऊँचा करती है। शिक्षा का सम्बन्ध नौकरीसे न हो और शासन के अकुश से वह मुक्त हो यह माँग शिक्षाशास्त्री बार बार करते आ रहे हैं। लेकिन उस दिशामें कदम बढानेको न शासन हिम्मत करता है न शायद आज का उच्च और मध्यम वर्ग ही उसके लिये तैयार है।

दे. ज. हातेकर :

राजस्थान में शिक्षा-सुधार :

शिक्षा-शास्त्र के सर्व-सामान्य सिद्धान्त ध्यान में रखकर शिक्षा सम्बन्धी नीति निर्धारित कराने हेतु खासकर सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा, उच्च माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण, परीक्षा पद्धति में सुधार तथा शारीरिक और आरोग्य विषयक शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिये राजस्थान शासन ने शिक्षा मंत्री श्री खेतसिंह की अध्यक्षता में अठारह मान्यवर शिक्षाशास्त्रियों की "शिक्षा की उच्चाधिकार समिति" दिनांक २८ जनवरी १९७५ में स्थापित की। इस समितिकी विस्तृत रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुआ है।

समितिने राजस्थान की प्रचलित शिक्षा प्रणाली का गहरा अध्ययन किया। राजस्थान के पंचवार्षिक योजनान्तर्गत शिक्षा सम्बन्धी नये सुझाव यदि कार्यान्वित किये जाय तो अर्थ प्रबंध किस तरह और कितना करना होगा इसका भी समितिने बारीकी से लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। समिति ने अपनी सिफारिशें कार्यान्वित कराने हेतु सुझावों को क्रमशः लागू कराने की योजना प्रस्तुत कर व्यावहारिकता का परिचय दिया है।

समिति का अध्ययन और शिक्षा विषयक उनकी सिफारिशें छह विभागों में विभाजित है।

१, सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा का सवाल

समिति ने राजस्थान में सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा लागू कराने पर सर्व-प्रथम ध्यान आकर्षित किया है। राजस्थान में १९७३-७४ में ६ से ११ वर्ष उम्र के कुल ३८६ लाख बालक १९३८१ प्रायमरी स्कूलों में और ११ से १४ उम्र के कुल २०५ लाख बालक ४८३७ अपर प्रायमरी स्कूलों में पढ़ते थे। दूसरे शब्दों में इन्हीं उम्र के कुल संख्या के ५३.४ फीसदी बालक प्रायमरी स्कूलों में और २४.४ फी सदी बालक अपर प्रायमरी स्कूलों में पढ़ते थे। भारत शासन की पंचवार्षिक योजना के प्रारम्भ में राजस्थान के लिये ६ से ११ उम्र के बालकों की शिक्षा का लक्ष्य ८६फीसदी और ११ से १४ उम्र के बालकों की शिक्षा का लक्ष्य ५० फीसदी आंका गया है। इस हिसाब से देखा जाय तो राजस्थान को यह लक्ष्य प्राप्त कराने के लिये ६१ करोड़ लागतपर ४१००० नये अध्यापक नियुक्त करने होंगे। इसके अलावा स्कूल इमारतें, नया सामान, प्रयोगशालायें, ग्रंथालय और खेलकूद के मैदान पर अन्य खर्च करना

पड़ेगा। समिति ने राजस्थान शासन के आर्थिक स्रोत और केन्द्रीय शासन से मिलने-वाली आर्थिक सहायता ध्यान में रखकर अगले पाँच वर्ष में ६ से ११ उम्र के ६२.४ फीसदी और ११ से १४ उम्र के ४४ ३ फीसदी बालकों के शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया है। यह लक्ष्य मर्यादित रखने का कारण समिति ने कहा है कि केन्द्रीय शासन से ८५ ८९ लाख रुपयों की सहायता के बदले ३२ ७९ लाख रुपया की सहायता मिलने-वाली है। उसी प्रकार राज्य शासन के आर्थिक स्रोत से भी पर्याप्त मात्रा में धन राशि उपलब्ध नहीं हो सकती। लक्ष्य कम रखने के और भी कई कारण बताये गये हैं। जिसमें पर्याप्त मात्रा में सुयोग्य अध्यापक मिलने की कठिनाई का जिक्र किया है। इसलिये जितनी मात्रा में अध्यापक एवं अन्य साधन उपलब्ध हो सकेंगे उतनी ही मात्रा में प्राथमिक शिक्षा का पंचवार्षिक लक्ष्य निर्धारित करना व्यवहार्य माना गया।

राजस्थान के प्राथमिक शिक्षा के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण बात की ओर समिति ने ध्यान आकर्षित किया है। १९६८–६९ वर्ष में राजस्थान के सभी प्रायमरी स्कूलों के प्रथम कक्षाओं में कुल ६,०२ १७५ बालक दर्ज हुये। लेकिन यही मदद आगे चलकर १९७२–७३ वर्ष में ५ वी कक्षा तक २, १४, ८२२ रह गया। यानि २८ ३ फीसदी बालक ५ वीं कक्षा तक पहुँच सके। अर्थात् ७१ ७ फीसदी बालक बीच में ही स्कूल छोड़कर गये हैं। इतना बड़ा मात्रा में स्कूल छोड़कर जाने का कारण समिति ने बताया है कि जब कि बालक छह वर्ष का होता है उसे पहली कक्षा में दर्ज किया जाता है, लेकिन जब कि बालक ९-१० साल का हो जाता है, बच्चों के माँ-बाप उन्हें स्कूल से निकालकर कुछ रोजी कमाने के लिये लगाते हैं। भारत की सर्व सामान्य गरीबी के कारण अक्सर देहातों में इस प्रकार की प्रवृत्ति अधिक कार्यरत दिखाई देती है। उसी प्रकार सिर्फ बौद्धिक पढ़ाई के कारण भी बालकों को स्कूल का आकर्षण नहीं रहता। पढ़ाई के साथ औद्योगिक क्रिया-कलापों का समन्वय स्कूल में रहता, तो सम्भवतः बालकों का स्कूल सम्बन्धी आकर्षण कायम रह सकता। इन सभी बातों पर विचार करके समिति ने स्कूल छोड़कर जानेवाले बालकों के लिये अंशकालीन एवं अनौपचारिक शिक्षा (इनफॉरमल एज्युकेशन) के चलाये जाने का सुझाव दिया है। सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम एवं गतिमान बनाने हेतु समिति का उपर्युक्त सुझाव महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इस तरह के स्कूल उन बालकों के अनुकूल समयानुसार सम्भवतः शाम को ३–४ घंटे चलाये जा सकते हैं। समिति का सुझाव रहा कि इस प्रकार के स्कूल प्रचलित प्रायमरी स्कूल के साथ जोड़ देने चाहिये, ताकि वे ही अध्यापक दोनों प्रकार के स्कूलों में अध्यापन करेंगे। सिर्फ समय पत्रक और पाठ्यक्रम के कालावधि का बटवारा इस तरह करना होगा कि दोनों कार्यक्रम सुचारु रूप से आगे चल सकें। इस सम्बन्ध में समिति की महत्वपूर्ण सिफारिश रही कि नये स्कूलों से आनेवाले

९, ११ एव १४ वर्ष के बालक किसी भी कक्षा में अपनी योग्यतानुसार प्रवेश ले सकेंगे। इस तरह ६ से १४ वर्ष के बालक या तो प्रचलित प्राथमिक स्कूलों में अथवा अंश-कालीन एवं अनौपचारिक स्कूलों में प्रवेश लेकर प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर लेंगे।

प्राथमिक शिक्षा में कार्यानुभव योजना

समिति ने महसूस किया कि आधुनिक समाज की आवश्यकतायें प्रचलित किताबी शिक्षा पद्धति से परिपूर्ण नहीं हो सकेंगी। इसलिये शिक्षा पद्धति में आमूलाग्र परिवर्तन करना आवश्यक है। शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में भाषा तथा प्रारम्भिक गणित पर विशेष ध्यान देना होगा। क्योंकि इन दो विषयों के आधार पर आगे की शिक्षा में बालक प्रगति कर सकेगा। पहली तथा दूसरी कक्षा में स्कूल तथा अपने स्थान के आसपास के वातावरण का अध्ययन तीसरी और चौथी कक्षा में सोशल स्टडीज और सामान्य विज्ञान कहा जा सकता है, विशेष रूप से किया जाना चाहिये। इसके अलावा सभी कक्षाओं में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार क्रियाशील हस्तोद्योग जिसके द्वारा बालकों के व्यक्तित्व विशेष प्रकट हो सकें शुरू करने चाहिये। राजस्थान शासन पाठ्यपुस्तक बोर्ड ने प्राथमिक स्कूलों के लिये कार्यानुभव का पाठ्यक्रम निर्धारित किया है, जिससे कि बालकों में उद्यमशीलता, क्रियाशीलवृत्ति तथा व्यावहारिक उपयोगिता की साधन संपत्ति निर्माण हो सके।

समिति ने प्राथमिक स्कूलों के लिये निम्न कार्यानुभव कार्यक्रम अनिवार्य करा दिया है —

१ व्यक्तिगत आरोग्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी क्रियायें।

२ स्कूल की कक्षा, स्कूल का मैदान और पड़ोस की जगह साफ सुथरी रखकर उसे सुशोभित एवं आकर्षित करना।

३ स्कूल के बगीचे में सागसब्जी, फूलपत्ती एवं फल के पेड़ लगाकर उत्पादक तथा उपयोगी क्रियाकलापों को प्रोत्साहित करना।

४ हस्तोद्योग द्वारा जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण करना।

इस तरह कार्यानुभव के लिये स्कूल समय का २५ फीसदी समय देने की सिफारिश समितिने कराकर इस विषय का महत्त्व बढ़ाया है।

२. अनौपचारिक शिक्षा का सवाल

समिति को ज्ञात हुआ कि ८ से १४ उम्र के बालक तथा १५ से २५ उम्र के युवक जो कभी स्कूल में गये नहीं या गये हों तो बीच में ही स्कूल छोड़कर प्राथमिक शिक्षा से वंचित हुये, उनकी संख्या इतनी बड़ी है कि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र से टाल नहीं सकते। वे युवक आगे चलकर हमारे जनजीवन का आधार बनानेवाले तथा जनतन्त्र के नागरिक बनने वाले हैं। उनकी शिक्षा पर जितना ध्यान दिया जाय उतना ही कम

हैं। इसलिये समिति ने इस बाबत शुरू में ८ से ११ उम्र के १ लाख और ११ से १४ उम्र के ३ लाख बालकों के प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य तथा १५ से २५ उम्र के १.५६ लाख युवकों के शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया और शिक्षा के क्षेत्र में नया अध्याय शुरू किया। इस तरह कुल ४.५६ लाख युवकों को शिक्षा का प्रबंध प्रमुखतः प्रचलित प्रायमरी स्कूलों के अध्यापकों के मार्फत कराकर शिक्षापर पडनेवाला आर्थिक बोझ कम करने की कोशिश की है। चूंकि इन अध्यापकों को प्रचलित प्रायमरी स्कूल ही की जिम्मेदारी सम्हालते हुये शामका समय नये अनौपचारिक स्कूलों के लिये देना होगा, उन्हें ५० रु. प्रतिमाह अतिरिक्त मानधन दिये जानेकी सिफारिश समितिने की है। इन स्कूलोंके लिये व्यावहारिक पाठ्यक्रम की योजना समितिने तीन विभागों में प्रस्तुत की। साक्षर ज्ञान एवं प्रारंभिक गणित के अलावा (१) उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन क्रियाशील पाठ्यक्रम, (२) कृषि तथा घरेलू औजारों की दुरुस्ती बाबत पाठ्यक्रम और (३) व्यापार व्यवसाय बाबत पाठ्यक्रम की सिफारिशें कराकर शिक्षा की उपयोगिता और आर्थिक विकासक्रम की गतिमानता को बढ़ावा दिया है।

२. उच्च माध्यमिक विद्यालयों में व्यवसायीकरण का सवाल

शिक्षा का उत्पादन क्षेत्र के साथ समन्वय कराने की सिफारिश केन्द्रिय शिक्षा आयोग ने की है और यह सिफारिशें उच्च माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में लागू करना इसलिये अत्यधिक आवश्यक है कि बारह साल की शिक्षा पाकर युवक को आत्मविश्वास के साथ अपने पैरोंपर खडा होना चाहिये। उच्च माध्यमिक विद्यालयों से निकलकर युवकों के सामने दो पर्याय रहने चाहिये। पहले पर्यायमें उत्पादक क्रियाद्वारा जो हस्तकौशल्य एवं व्यावसायिक रोजगार धंधेका ज्ञान उसने प्राप्त किया उसके आधार पर अपनी आजीविका चलाने में लग जाय। इससे काफी बडे प्रमाण में युवकों की संख्या रोजगार धंधे में लग जायगी। बेकारी की समस्या हल कराने में इससे सहायता मिलेगी। उसी प्रकार आर्थिक विकासक्रम में गतिमानता आयगी। इसलिये उच्च माध्यमिक शिक्षा में भिन्न व्यवसायोंका व्यावहारिक ज्ञान देना आवश्यक तथा हितकारक होगा। दूसरे पर्याय में युवक अपनी रुचि एवं बौद्धिक क्षमता के आधार पर विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर सकेगा। यदि उच्च माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र का योग्य दिशा में व्यवसायीकरण किया जाय, तो आज के युवकों का मनोवैफल्य एवं शिक्षा सम्बन्धी उनकी घोर उदासीनता काफी मात्रा में दूर की जा सकती है। इसी उद्देश से समितिने माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण कराने पर जोर दिया है। और कई प्रकार के नये उद्योगधंधों का नामनिर्देश किया है।

चूंकि भारत कृषि प्रधान देश है और कृषि विकास के लिये कृषि औद्योगिक व्यवसायोंकी नितांत आवश्यकता महसूस की जा रही है, इसलिये उच्च माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण महत्वपूर्ण है। समितिने उच्च माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में

सवसामान्य शिक्षा व साथ उत्पादक उद्य गधधो को जोड दिया है। जिन उद्योगधधों का जिक्र समिति न किया है वे इस प्रकार है--लकडी चमडा प्लस्टीक कनव्हॉस इत्यादि कच्च माल से पूण वस्तु का उत्पादन करना। कपडा सिलाई कपडा को रगाना, उनपर भिन्न प्रकार के डिजाइन निकालना दरी नवार हाथ रुमाल बनाई स्याही तयार करना चाक स्टक बनाना मधुमक्खी पालन मुर्गीपालन गोपालन इत्यादि व्यवसायोको क्रियात्मक शिक्षा बालकोको मिलेगी।

उसी प्रकार सायकिल पट्रोमेक्स सिलाई मोइन मशीन इत्यादि उपयुक्त साधनाको दुरुस्ती करना मामूली बिजली दुरुस्ती मामूली रेडियो की दुरुस्ती रडिओ, ट्रान्झीस्टर अॅम्प्लीफायर इत्यादि आधुनिक साधनोका व्यावहारिक ज्ञान कराया जायगा।

इस तरह उच्च माध्यमिक विद्यालय अपने क्षेत्र की आवश्यकतायें तथा कच्च मालकी सभावनाये ध्यान में रखकर अपना सुविधा के अनुसार भिन्न व्यवसायो का प्रत्यक्ष ज्ञान बालको को करायग जिन स कि बालका में शरीर परिश्रम के साथ औद्योगिक क्रियाशीलता विकसित हो सके।

४ परीक्षा सबधी सुधार

समितीन प्रचलित परीक्षा पद्धतमें काफी सुधार करन की आवश्यकता महसूस की। इस बाबत राजस्थान शासन के सकडरी एज्युकेशन बोडन कई प्रयोगो के बाद तथा भिन्न सामतियो की इस बाबत की शिफारिश ध्यान मे रखकर परीक्षा पद्धति में सुधार करान की कोशिश की है। समिति न इन अनुभवा के आधार पर निम्न महत्वपूण सिफारिश की ह।

विद्यार्थियो की क्रियाशीलता का तथा बुद्धिकौशल्य का मूल्यमापन करान के लिय विद्यार्थियो क दनन्दिन कौशलका मूल्याकन विद्यालय के अतगत कराना चाहिय। इससे विद्यार्थियोका विकासक्रम किस दिशा में हो रहा है इसका लेखाजोखा विद्यालयमें ही तयार होगा। इस तरहका अन्तगत मूल्याकन वार्षिक परीक्षाफल के साथ देन से विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास का मानचित्र प्राप्त हो सकेगा।

वार्षिक परीक्षा लेखी प्रक्टीकल और मुखाग्र पद्धति से ली जा सकती है। लेकिन परीक्षा के प्रश्नों का स्वरूप वस्तुनिष्ठ (आबजक्टीव) रखना आवश्यक होगा। इसी प्रकार पाठ्यक्रमपर आधारित कई प्रकार के सभाव्य प्रश्नो का कोष (क्वेश्चन बँक) विद्यार्थियोका उपलब्ध कराना आवश्यक ह।

इस तरह परीक्षा दो प्रकार की रहेगी। अतगत मूल्यांकन और बाह्य लेखी परीक्षा जिसम प्रक्टीकल एव मुखाग्र परीक्षा अन्तर्भूक्त है। दोना परीक्षाओ का

श्री कुन्दरजी दिवाण :

मूलगामी विद्या :

बुनियादी शिक्षा का बुनियादी विचार होना चाहिए। वृक्ष की जड़ें भूमि के अन्दर गहरी जाती हैं और वही से पोषण प्राप्त कर भूमि के ऊपर शाखा-प्रशाखा तथा पल्लव, पुष्प और फल के रूप में प्रकट होती है। वृक्ष के सर्वांगीण विकास के लिए उसकी जड़ो की हिफाजत जिस तरह से सर्वाधिक महत्व रखती है, उसी तरह मनुष्य जीवन के सर्वांगीण विकास मे उसकी शिक्षा।

जिस देश की शिक्षा जितने अश मे स्वतत्र, मूलगामी, सर्वांगीण और सतुलित होगी उतने ही अश में वह देश सुखी होगा। सभी भौतिक समृद्धि का और आन्तरिक सुख-शान्तिका आधार सच्ची शिक्षा ही है। आज व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और समस्त राष्ट्र समूह जो भी और जितना कुछ कष्ट भोग रहा है उसके मूल में सच्ची शिक्षा का अभाव ही है। इसलिए हमारा सर्वाधिक प्रयास शिक्षा के लिए होना चाहिए और पर्याप्त धन उसी पर खर्च होना चाहिए।

"सा विद्या या विमुक्तये" इस औपनिषदिक वचन में शिक्षा का मूल उद्देश्य घोषित किया गया है। सच्ची शिक्षा से मनुष्य की आत्मा सब प्रकार के बधनो से, भयो से, अभावो से, प्रभावों से मुक्त हो जाना चाहिए। जब तक ऐसा नही हो जाता तब तक शिक्षा पूरी नही होती। यह जीवन-शिक्षा है जिसकी अशरूप सभी छोटी मोटी शिक्षाएँ हैं— पूर्व बुनियादी, बुनियादी और उत्तर बुनियादी आदि।

आयु की अवस्था के अनुसार पाठ्यक्रम की रचना होनी चाहिए। पूर्व बुनियादी में सामान्यतया २ ५० से ५ वर्ष की आयु वाले बालको को शिक्षा दी जाती है। इस मे बालको का अपने शरीर का, उसके अगो का, उनकी शक्तियो का ज्ञान-भान और उपयोग करना खेल-खेल में सिखाया जाता है। वाङ्विलास के लिए बडे बडे गीत सिखाए जाते है। सफाई सदाचार की नीव इसी अवस्था में डालनी होती है। इस अवस्था में शुद्ध आचार, शुद्ध विचार और शुद्ध उच्चार बहुत प्रेमपूर्वक और प्रयत्न पूर्वक न सिखाया जाने के कारण आज की आयु में बहुत सारे लोग द्विपाद पशु की अवस्था में मिलते है। वे स्वय गदगी में जीते हैं और औरो की गदगी से परेशान करते रहते है। आज क्या गाँव और क्या शहर सभी बढती गदगी के विशाल नरक बने हुए हैं। इसका उपाय केवल शिक्षा और शिक्षा ही है। अभद्र वाणी का भी इसी तरह बचपन से प्रसार होता है। बालकों को अच्छे वचन, सभी धर्मों का उत्तमोत्तम वचन मातृभाषा में रटाने चाहिये। बचपन में जो कठस्थ होता है वही बुढापे मे याद रहता है और बहुत सारे लोग उसे गुनगुनाते पाए जाते हैं। हमारे बहनोई अपने आखरी दिनों मे "आई थोर तुझे उपकार" यह पहली दूसरी कक्षा में कठस्थ किया हुआ पद्य गुनगुनाते थे। तो पडित धर्मानन्द कोसबी स्वय बौद्ध होकर भी तुकाराम

के भजन बोला करते थे। दूसरे हमारे एक बूढे रिश्तेदार पागल होकर भी बोला करते थे। इसका कारण बचपन का रटन ही है। अत बच्चा को उत्तमोतम वचन ही कठस्थ कराना चाहिये न कि कोई आलतू फालतू पद्य। देह और इन्द्रियाँ अर्थात् वाह्यकरण, अन्तकरण और अन्तरतर कुल मिलाकर आत्मतत्व है। यह मनुष्य जीवन की त्रिवेणी है। इन तीनो का और सतुलित समग्र विकास जिस से होता है वही सच्ची शिक्षा है। उसके पूर्व बुनियादी, बुनियादी और उत्तर बुनियादी ऐसे तीन विभाग किए गए है। पूर्व बुनियादी में २-५० से ५ वर्ष के शिशु, बुनियादी में ६ से १० वर्ष के बालक और उत्तर बुनियादी में ११ से १५ वर्ष के कुमार शिक्षा पाएगें। इस एक तप माने १२ वर्ष के अध्ययन से जैसे कि उपनिषदा में कहा है युवा छात्र (या छात्रा) "आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ट" होगा। पूर्ण आशावान दृढतायुक्त और समर्थ होगा। जो भी कार्य वह चुनगा उसे पूरा करने में वह समर्थ होगा।' "तस्य इय पृथिवी वितस्य पूर्णास्यात्"। उसे यह सारा ससार ज्ञान से भरा दिखाई देगा। अर्थात् सब ठोस। वह ज्ञान समेटता चला जाएगा।

जीवन की यात्रा म आवश्यक न्यूनतम पाथेय सामग्री स सम्पन्न करा देना होता है। उसे भाषा, गणित, नागरिकशास्त्र, सामाजिक इतिहास और भूगोल तथा खेलकूद और कसरत आदि का आवश्यक अभ्यास कराया जाएगा, जिस से वह जीवन का कोई भी काम ज्ञानपूर्वक और कुशलता से कर सकेगा। दुनिया भर की जानकारी का बोझ उस पर लादना नहीं है, उसे तो कवल अपने का ज्ञान लेना है। उसे आत्म-शक्ति का ज्ञान हो जाय तो वह उसके द्वारा अपना जो भी अभिलषित है उसे प्राप्त करने मे समर्थ होगा। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी पुरुषार्थ हासिल कर सकेगा।

उत्तर बुनियादी में उसे अपनी रुचि का या काम का कोई एक धन्दा या उद्योग या सेवा कहिए चुन लेना है। उसकी औपपत्तिक (थिअॉरेटिकल) और प्रायोगिक (प्रेक्टिकल) पूरी शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर लेनी है—जितनी उन अवधि में और अवस्था में प्राप्त की जा सकती है। उसके बाद तो वह उसमें सारा जीवन ही लगा द सकता है और पूर्णता से अधिकपूर्णता को प्राप्त हो सकता है।

गीता का वचन है— "सर्वं कर्माखिल पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।" अर्थात् हमारे सभी क्रिया कलापो की अन्तिम परिणति ज्ञान में होती है। समस्त क्रिया-कलाप अक्रिय आत्म स्वरूप में समाप्त हो जाते हैं। यह दार्शनिक तथ्य है। परन्तु शिक्षा-दर्शन में सभी ज्ञान की परिणति कर्म मे होनी है। ज्ञान हुआ कि अग्नि उष्ण होता है, तो उस ज्ञान का फल होगा जब उष्णता की आवश्यकता होगी तब उसका सेवन करना और जब उसकी आवश्यकता न हो तब उससे दूर रहना। ज्ञान हुआ कि यह सारा ससार मिथ्या है तो उसी क्षण से उस से विरक्ति हो जाएगी। ज्ञान का यही फल है। अर्थात् प्रवृत्ति या निवृत्ति दोनो ही कर्म है और वे ज्ञान से ही होते हैं। सच्चा ज्ञान सम्यक् क्रिया का कारक है और शिक्षा का यही कार्य है, यही बुनियाद है।

भी बढ़ता जायगा। यही स्थिति बालक के मन की भी होती है। और आप लोग उसके चित्तपर जो संस्कार करेंगे, वे संस्कार दीर्घ काल तक कायम रहेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि अधिक प्रबल रूप से कायम रहेंगे। आपके वाक्बाणों का घाव क्षणिक नहीं रहेगा, वरन उसका जहर बालक के मनमें पैठेगा, जहाँ पेड़ की पीड़ पर किया हुआ घाव तो उसकी छाल पर ही रह जाता है। जिन बालकों को भविष्य के नागरिक बनना है, उनके निर्माणमें इतना बड़ा हिस्सा लेने का भाग्य कोई साधारण नहीं है। लेकिन यह भाग्य भी है और साथ में जिम्मेवारी भी। यह जिम्मेवारी अगर आप सुचारु रूप से पूरी कर सकते तो आपका धंधा दूसरे किसी भी धंधे की अपेक्षा अधिक पवित्र बननेवाला है।

शिक्षकों में भी प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों की जिम्मेवारी सबसे भारी है। माध्यमिक शालाओं के छात्र कुछ बड़ी उम्र में पाठशाला में पहुँचते हैं। कॉलेज के विद्यार्थी और विद्यार्थिनियाँ तो प्रोफेसरों के शिक्षण और संस्कारों से अछूते रहने का ही प्रयत्न करते हैं अथवा अछूते रह जाते हैं। किन्तु प्राथमिक शाला का शिक्षक ही अपने बालकों पर अधिक से अधिक संस्कार करता है।

साम्प्रदायिक न बनिए

मैं चाहता हूँ कि ये संस्कार सुसंस्कार हों। ये कुसंस्कार कदापि न हों। दरअसल बात कहने की नहीं है और आपसे खास कहने की जरूरत भी नहीं है। परन्तु आज देश में जो वातावरण फैल रहा है उसके लिहाज से खास न कहने की बात भी खास कहने की हो सकती है। आज जहाँ-तहाँ कौमी जहर फैल रहा है दंगों की होली धधक रही है। ऐसी हालत में सम्भव है कि आपका चित्त भी उस चक्कर में पड़ जाय और आपके मन में भी जहर फैल जाय। परन्तु श्रद्धा की कसौटी ऐसे अवसरोंपर ही होती है। अगर ऐसे विकट प्रसंग आवें ही नहीं, तो श्रद्धा की कसौटी नहीं होगी। आप अगर साम्प्रदायिक बनेंगे तो अपने व्यवसायकी पवित्रता को कलुषित करेंगे, यही मैं आपसे कहने आया हूँ। दूसरे व्यवसायों के लिए साम्प्रदायिक बनना सम्भवनीय है, लेकिन आपकी तो गाड़ी ही नहीं चलेगी। क्या शिक्षण देते समय आप यह विचार करेंगे कि अमुक विद्यार्थी हिन्दू है या फलाना मुसलमान है, अमुक को ज्यादा शिक्षण देना चाहिए फलानेको कम देना चाहिए? कुछ शिक्षक मन्द विद्यार्थियोंकी तरफ अधिक ध्यान देते पाये गये हैं। परन्तु विद्यार्थी की कौम का विचार करनेवाला तो उसका शिक्षक नहीं वरन दुश्मन होगा। और साम्प्रदायिकता का अन्त कहाँ होगा, इसका भी आपको ख्याल है। साम्प्रदायिक बनने के बाद ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, हरिजन वगैरा भेदों को भी आपका मन स्वीकार करने लगेगा और आपका सारा शिक्षक-जीवन कौमी जहर से दूषित हो जायगा।

सब एक ही पिता की सन्तान

हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के विरोधी या दुश्मन हैं, इस भावना को आपने अपने दिलमें भूल कर भी स्थान दिया हो, तो उसे तिलांजली देना शिक्षक

"अपने इस आदर्श का व्यापक प्रचार करने के लिये आपको तो मानव-समाज के उस हिस्से का विचार करना पड़ेगा, जिसका आज आम तौर पर ज्यादा विचार नहीं होता, जिस तरह की वीरता आप लोग चाहते हैं, वह स्वभावतः विरले ही मनुष्यों में पायी जाती है। और जिनके अन्दर पहले से न हो, उनके अन्दर लायी नहीं जा सकती। इस आदर्श की पूर्ति के लिए दीर्घकाल तक नैतिक तालीम की जरूरत रहती है, शान्ति के लिये शिक्षण की आवश्यकता है, ताकि व्यक्ति में नैतिक आध्यात्मिक, सामाजिक तत्वों का सिंचन हो, जिससे मानवता के मिशन—अहिंसक समाज—के निर्माण की सामग्री प्रस्तुत हो।"

"इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर आप लोग शुरू से ही बालकों को अपने हाथों में लेंगे और उनके अन्दर भावी नागरिक बनने का जो सामान मौजूद है, उसे गढ़ना शुरू कर दें, तो शायद आप ऐसी मनुष्यता का निर्माण कर सकेंगे जिसे कि अस्त्र-शस्त्र के बहिष्कार का, युद्ध विरोध का उपदेश देने का, उन बातों का मनवाने की जरूरत ही नहीं रहेगी। कारण उनका स्वभाव ही ऐसा बन जायगा कि युद्ध में भाग लेने के लिये जिस अधमता और दुष्टता की आवश्यकता होती है, उसके खिलाफ उनका रोम रोम विद्रोह करेगा।"

सत्यपूर्ण और अहिंसा-संस्कृत शिक्षण

यह सच है कि आज इससे उलटी गंगा बह रही है। आज पाठशालाओं में जो इतिहास पढ़ाया जाता है वह दूषित राजनीति से रंगा हुआ होता है। और तो और, विज्ञान और गणित भी इसी रंग में रंगे हुए होते हैं। पर इसमें आश्चर्य नहीं है। उन लोगों को हिंसक समाज का ही निर्माण करना है, न कि अहिंसक। और हिंसा और सत्य के बीच सौ योजनों का अन्तर है। इसलिये उनके शिक्षण में भी असत्य है। हमें तो आज से ही अहिंसक समाज के लिये तालीम देनी है। इसलिये हमारा शिक्षण भी सत्यपूर्ण और अहिंसा संस्कृत होगा।

मानव बनाओ

आपको बालकों को यह सिखाना होगा कि उन्हें मनुष्य से देवता बनना है, पशु नहीं। मुझ से कुछ शिक्षक पूछते थे कि "इतिहास किस तरह सिखाया जाय? उसमें तो औरंगजेब का वर्णन से भी टण्टा खड़ा हो जाता है।" मैं तो विनय-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि अगर आप पक्षपात-रहित होकर इतिहास सिखायेंगे टण्टा होने की सम्भावना नहीं रहेगी। अगर औरंगजेब था तो अकबर भी था और अगर हैदर था तो टीपू भी तो था ही। लड़ाइयाँ केवल हिन्दू-मुसलमानों के ही बीच नहीं होतीं। प्रोटेस्टण्ट और कैथालिकों में तथा मुसलमान और ईसाइयों में भी खूंखार लड़ाइयाँ हुई हैं। परन्तु इतिहास में से पाठ यही सीखना है कि उस जंगलीपन में से हमें मनुष्य बनना है। आपके दिल में अहिंसा हो, करुणा हो, तो विद्यार्थियों के दिलों में सारी घटना के विषय में आप उद्वेग और घृणा उत्पन्न कर सकेंगे। इस प्रकार मनुष्य मनुष्यता से गिर कर पशु बन जाता है, इसका अच्छा पाठ आप लड़कों को सिखा सकते हैं।

अब एक आखिरी बात पर आता हूँ। शिक्षक ने साम्प्रदायिकता को अगर सम्पूर्ण रूप से तिलाजलि दे दी हो, तो 'सर्व धर्म समानत्व' के विकास का उसे प्रयत्न करना चाहिये। हमारे में से कितने परधर्मों के तत्वों का अध्ययन करते हैं? दक्षिण भारत की एक हिन्दू शाला में विद्यार्थियों के सामने भाषण देते हुये गांधीजी ने उनसे पूछा था, "तुम लोगों में से कितनों ने गीता पढ़ी है? चार पाँच सौ विद्यार्थियों में से सिर्फ एक ने हाथ उठाया। शिक्षकों से यह सवाल पूछने की अविनय गांधीजी ने नहीं की। यहाँ भी मैं आपसे यह पूछने की गुस्ताखी नहीं करूँगा कि आप लोगों में से कितना ने कुरान-शरीफ पढ़ा है? इस्लाम के बारे में हमारी कैसी कैसी विचित्र कल्पनायें होती हैं, उनका उल्लेख यहाँ नहीं करूँगा। लेकिन ये सभी कल्पनायें अज्ञान मूलक हैं। कुरान शरीफ पढ़ने के लिये समय न हो, तो एक छोटी सी पुस्तक पढ़ने को कहूँ? एडविन ॲर्नाल्ड की कुरान शरीफ की आयतों के आधार पर पुस्तक का नाम "पर्ल्स आफ फेथ" है। कोई हिन्दू शंकराचार्य की सूक्तियों की माला बनाये तो एक सौ आठ मनका की माला गूँथी है। इसी एडविन अर्नाल्ड ने भगवत गीता "साग सेलेस्चियल' के नाम से अंग्रेजी में दाखिल की है। बुद्ध भगवान की कथा "लाइट आफ एशिया" में वर्णन की है और ईसू की जीवन कथा का वर्णन "लाइट आफ द वर्ल्ड" में किया है। क्या ही अच्छा हो, अगर हम सभी उसके जैसा सब धर्म सम भाव विकसित कर सकें।

कुछ सूचनाएँ

मैंने मूलतत्वों की बात कह ली। मेरा आपसे निवेदन है कि आपके विचार भिन्न दिशामें प्रवाहित होते हों, तो भी आप जो कुछ मैंने कहा है, उस पर विचार करें। अब थोड़ी सी सूचनाएँ करता हूँ। हिन्दुओं का उद्देश्य कर के कहता हूँ। "आप हिन्दू शिक्षकों को अपने घर न्योता देते हैं, चाय पीने बुलाते हैं, भोजन का निमंत्रण देते हैं, कभी कभी मुसलमान शिक्षक का भी बुलाते हैं? उससे संपर्क कीजिए, उसके धर्म की बात सीखिए, अपने धर्म की बातें उसे सुनाइए। विद्यार्थियों के साथ कितना सम्पर्क रखते हैं? हमारे ज़माने में शिक्षक विद्यार्थियों को अपने घर बुलाकर मुफ्त में पढ़ाते थे। दीवान मास्टर साहब मेरे शिक्षक थे। इसलिये मैं जानता हूँ कि उनके यहाँ इस तरह के कई विद्यार्थी आया करते थे। मैं आपसे पूछता हूँ, आप मुसलमान विद्यार्थियों को इस तरह कभी बुलाते हैं। मुसलमान विद्यार्थियों को मुफ्त पढ़ाने के लिए घर पर क्यों नहीं बुलाते? उनमें आप जितना भी प्रेम बोयेंगे उसका फल मीठा ही होगा।

शिक्षकों का धंधा पवित्र धन्धा है और आज की विकट परिस्थिति में उनके सामने बड़ा भारी कर्तव्य है। उस कर्तव्य को भुला कर वे भी अगर मौजूदा बहाव के साथ बहते जायेंगे, तो अपने धंधे की प्रतिष्ठा खो बैठेंगे। दरिया में लगी आग, बुझा कौन सकेगे? नमक ही बेमजा हो जाय, तो उसे नमकीन कौन बनायेगा?

संविधान की २५ वीं जयन्ती के अवसर पर

आइए, हम चौकस रहें

अपने संविधान द्वारा हमने अपने लिये एक विशेष रास्ता····जीवन पद्धति····चुना है। यह विशेष रास्ता है संसदीय लोकतंत्र, जिसके द्वारा हम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे कुछ लोग, जो इसे पसन्द नहीं करते, इसे नुकसान पहुँचाने में जुटे हैं। वे नहीं चाहते कि इस रास्ते पर चलकर हम अपने लक्ष्य प्राप्त करें। उनकी जिन्दगी का रास्ता दूसरा है। वे विघटन, तोड़-फोड़, बेबुनियाद बदनामी और अस्थिरता पर विश्वास करते हैं।

हमें ऐसे लोगों से चौकस रहना चाहिये। तभी हम लोकतंत्र और स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेंगे।

संविधान की रक्षा कीजिये।

डीएवीपी–७४/४९०

शिक्षा मंडप वर्धा द्वारा संचालित

गो. से. अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय, नागपुर

हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी---इन तीनो भाषाओमें पदवी एवं पदव्युत्तर पढ़ाई करनेवाला नागपुर विश्वविद्यापीठ में एकमेव कॉलिज, जिसका

त्रय दशाब्दि महोत्सव

भारत के राष्ट्रपति

श्री फखरुद्दीन अली अहमद

की अध्यक्षता में

दि. १४ सितम्बर, १९७५ को नागपुर में

सम्पन्न हो रहा है।

❁

इस कॉलिज के सभी आजी एवं माजी विद्यार्थी सानन्द आमन्त्रित हैं।

मिलखीराम तोखी
प्राचार्य,
गो से अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय,
नागपुर

शिक्षा मंडल वर्धा द्वारा संचालित

गो. से. अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय

जबलपुर (म. प्र.)

हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम द्वारा पदवी एवं पदव्युत्तर पढ़ाई करनेवाला जबलपुर विश्वविद्यापीठ में मान्यता प्राप्त कॉलिज, जिसका

रौप्य महोत्सव

भारत के उपराष्ट्रपति

श्री बी. डी. जत्ती

की अध्यक्षता में

दि. ९ नवम्बर, १९७५ को जबलपुर में

सम्पन्न होने जा रहा है।

इस कॉलिज के सभी आजी एवं माजी विद्यार्थी सानन्द आमन्त्रित हैं।

डॉ. सोहनलाल गुप्ता

प्राचार्य,

गो से अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय,

जबलपुर

सम्पादक–मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष
अंक

अनुक्रम

अक्टूबर–नवम्बर, '७५

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य २ रु है
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

मद्य निषेध का बारह सूत्री कार्यक्रम

वर्ष : २४
अंक : २

गांधी-जयंती की पूर्व-संध्या के अवसर पर भारत सरकार ने देश भर में मद्य निषेध नीति को लागू करने की दृष्टि से बारह-सूत्री कार्यक्रम घोषित किया, उसका सर्वत्र स्वागत होना स्वाभाविक है। भारत में मद्य-निषेध आन्दोलन के इतिहास में पहली बार ही केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की अपेक्षाओंको पूरा करनेका संकल्प जाहिर किया। विज्ञप्ति में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह बारह सूत्री कार्यक्रम भारत में सम्पूर्ण मद्य-निषेध लागू करनेकी दिशा में पहला कदम है। संघीय मंत्रिमंडल ने एक उपसमिति भी गठित की है, जो सभी राज्यों में शराब-बन्दी के क्रमिक कार्यक्रम की योजना शीघ्र तैयार करेगी।

ऋषि विनोबा ने कुछ समय पहले हमें मौन की अवधि में ही अपने हाथ से लिखकर दिया था "अनुशासन पर्व में शराब-बन्दी अत्यन्त आवश्यक है--अनुशासन के लिए।" हमने पूज्य विनोबाजी का यह संदेश प्रधान-मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को लिख भेजा और आग्रह किया कि गांधी जयंती के शुभ दिन पर मद्य निषेध के एक न्यूनतम प्रोग्राम की घोषणा अवश्य हो जानी चाहिए। इस दृष्टिसे तारीख

रजि० सं० WDA/1 लाइसेंस नं० ५

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

'नई तालीम' : जन्म से मृत्यु तक

बुनियादी शिक्षा की तीन बुनियादें

शिक्षा और राष्ट्र-निर्माण

हरिजनों की समस्याएँ

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २४] अक्टूबर–नवम्बर, १९७५ [अंक : २
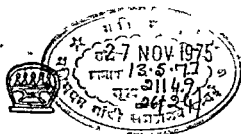
३० सितम्बर को केन्द्रीय मन्त्रिमडल की एक खास बैठक रखी गई, जिसमें बारह-सूत्री कार्यक्रम स्वीकार किया गया। हमने तो दस-सूत्री कार्यक्रम ही सुझाया था। किन्तु उसमें दो और मुद्दे जोड़े गए—एक तो यह कि देश में मदय निषेध का योग्य वातावरण निर्माण करने के लिए नेतागण उदाहरण पेश करें, और दूसरा कि अब राज्यो में नए शराब के कारखाने न खोले जाएँ। ये दोनो ही मुद्दे महत्व के हैं और हमें खुशी है कि केन्द्रीय सरकार ने इस ओर इतनी गहराई से विचार किया। प्रधान-मन्त्रीजी ने शराब बन्दी के काम में पूरी दिलचस्पी ली है इसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। हमने उन्हें यह भी सुझाया है कि बारह-सूत्री कार्यक्रम द्वारा देश में जो अनुकूल वातावरण बना है, उसका लाभ उठाकर भारत भरमें सम्पूर्ण नशाबन्दी का कार्यक्रम पाँचवी पचवर्षीय योजना के अन्त तक अवश्य पूरा हो जाना चाहिए।

किन्तु हमें यह देखकर दुख होता है कि विभिन्न राज्य सरकारें अपने क्षेत्र में मध्य निषेध लागू करने के बारे में गम्भीरता से विचार नही कर रही है। वे बार बार यही इशारा करती हैं कि शराब बन्दी के कारण जो आर्थिक घाटा होगा, उसकी पूर्ति काफी मात्रा में केन्द्रीय सरकार द्वारा कर दी जानी चाहिए। यह कहा जा रहा है कि मदय-निषेध की वजह से सभी राज्यो की लगभग ३५० करोड रुपये का वार्षिक नुकसान होगा। किन्तु राज्य सरकारें यह भूल जाती हैं कि शराब पिलाने की आमदनी का जब शासन को एक रुपया प्राप्त होता है तब गरीब जनता के तीन या चार रुपये बर्बाद हो जाते हैं। हम यह भी भूल जाते हैं कि शराब पीने से नुकसान ही नुकसान है और धन के साथ जनता का शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य भी मिट्टी में मिल जाता है।

यह अक्सर कहा जाता है कि मदय निषेध की वजह से गैर कानूनी शराब बडे पैमाने पर बनने लगती है। लेकिन यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिन राज्यो में मदय-निषेध नही है, वहाँ भी गैर-कानूनी भट्टियाँ बडी सख्यामें पाई जाती हैं। गैर-कानूनी शराब बनने

व पीने के आंकडे भी बहुत बढा-चढाकर दिए जाते हैं। विभिन्न जाँच-रिपोर्टों ने यही राय दी है कि शराब-बन्दी के क्षेत्रों में लगभग १५ से २० फीसदी लोग अवैध शराब पीते रहते हैं। इस तरह कम-से कम ८० फीसदी लोग तो इस हानिकारक बुराई से बच ही जाते हैं। शेष २० फीसदी लोगो को शिक्षण और प्रचार द्वारा इस बुराई से दूर रहने के लिए समझाया जा सकता है।

हाल ही में हम ने कुछ शिक्षण सस्थाओ द्वारा जो सर्वेक्षण कराया, उससे ज्ञात हुआ कि लगभग ५० फीसदी लोग तो शौकिया ढग से ही मद्यपान करते हैं। कानून द्वारा निषेध हो जाने पर वे इस आदत को आसानी से छोड देते हैं। करीब २५ फीसदी लोग पीनके आदी हो जाते हैं, लेकिन शराब के बिलकुल वशमें नही हो जाते। ऐसे लोगों को भी इस रोग मे बचाया जा सकता है। किन्तु २५ फीसदी लोग शराब के नशे में इतने चूर हो जाते हैं कि एक प्रकार से शराब उन्हें पीने लगती है। इस तरह के व्यक्तियोंको मद्य निषेध होने पर भी सरकार की ओर स सीधे परमिट मिल जाने चाहिए, ताकि वे इधर-उधर से गैर-कानूनी शराब प्राप्त करने की कोशिश न करें। यदि इन पियक्कड लोगो को निश्चित मात्रा में शराब देने की योग्य व्यवस्था कर दी जाय तो फिर गैर-कानूनी शराब बनना बहुत कम हो जाएगा। हाँ, फिर भी यदि कोई अवैध शराब बनाने की कोशिश करता है, तो उस शासन की ओर से बहुत कडी सजा दी जानी चाहिए।

हमने यह कई बार दोहराया है कि देश में सम्पूर्ण मद्य-निषेध का कार्यक्रम तभी सफल हो सकता है, जब एक ओर सरकारी नियमो का कडाई से पालन कराया जाय, और दूसरी ओर रचनात्मक और शिक्षण सस्थाओ द्वारा व्यापक जन शिक्षण का आयोजन हो। केवल सरकारी कानूनोंसे या सिर्फ समझान बुझान से यह योजना सफल न हो सकेगी। कडा शासन और व्यापक शिक्षण—दोनों ही साथ-साथ चलने चाहिये।

हम आशा करते हैं कि मद्य-निषेध सम्बन्धी बारह-सूत्री कार्यक्रम को उचित ढगसे कार्यान्वित कराने के लिये और बादमें देशव्यापी सम्पूर्ण मद्य-निषेध योजना को लागू कराने की दिशा में सभी रचनात्मक कार्यकर्ता और शिक्षण-संस्थायें शासनको अपना पूरा सहयोग देंगी।

अस्पृश्यताका उन्मूलन .

केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि की ओर से ११, १२, और १३ अक्टूबर को नयी दिल्ली में 'हरिजनों की समस्याओ' पर एक राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उसमें देश की रचनात्मक संस्थाओ के चुने हुए लगभग ३० वरिष्ठ प्रतिनिधियोंने भाग लिया। इनके अलावा कई संसद-सदस्यो, सरकारी अफसरो और शिक्षा-शास्त्रियोंने भी इस संगोष्ठी में हिस्सा लिया। उसका उद्घाटन केन्द्रीय कृषि-मन्त्री श्री जगजीवनरामजी ने किया और समापन-भाषण केन्द्रीय गृह-मन्त्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी ने दिया। तीन दिन के विचार-विमर्श के पश्चात् इस सेमिनार ने जो कार्यक्रम तैयार किया, उसकी जानकारी इसी अंक में अन्यत्र दी गई है।

यह सचमुच बहुत दुख का विषय है कि स्वराज्य मिलने के बाद भी पिछले २८ वर्षों में हम देश के विभिन्न भागो में अस्पृश्यता को समाप्त नही कर सके हैं। इन दिनो भी समाचारपत्रो में हरिजनों के प्रति अन्यायो व अत्याचारो की खबरें प्रकाशित होती रहती हैं। इन कमजोर वर्गों को लाखों एकड जमीन तो अवश्य बाँटी गई है, लेकिन उस पर उन्हें सुख और शाति से खेती नही करने दी जाती। मकान बनाने के लिये उन्हें बहुत-सी जमीन दे दी गई है, लेकिन उस पर उनके मकान अभी तक नही बन पाये हैं। सार्वजनिक ढग से जो पीने के पानी की योजनायें बनाई गई हैं, उनका लाभ भी हरिजन भाइयो को नहीं मिल पा रहा है। बहुत-से मंदिरोमें इस वक्त भी हरिजनो को अन्दर जाने की सुविधा नहीं है। छुआछूत को हटाने के लिये बापू ने कई बार अपनी जान की बाजी भी लगा दी थी। फिर भी यह भूत हमारे सिरो पर अभी तक सवार है और भारतीय सभ्यता के ऊपर गहरा कलक लगाता रहता है।

विचार गोष्ठी ने इस बात पर विशेष ध्यान दिलाया कि देश के धर्मगुरुओ ने छुटपन से ही हमारे दिमागो में ऐसे गलत धारणा बैठा दी है कि हरिजनो को छूने से हमारा परलोक बिगड जायगा और हम नरक में ढकेल दिये जायेंगे। अत यह आवश्यक है कि हमारे जननेता उन धार्मिक संस्थाओ के समारोहो में भाग लेने न जावें, जिन्होंने स्पष्ट शब्दो में छुआछूत के खिलाफ अपनी निष्ठा व नीति जाहिर न की हो। संसद और राज्य विधान सभाओ के चुनाव के अवसर पर भी सभी राजनीतिक दलो के प्रतिनिधियो को यह घोषित करना चाहिये कि वे अस्पृश्यता में विश्वास नही रखते और उसके उन्मूलन के लिये सक्रिय सहयोग दे रहे हैं।

हरिजनो की समस्याओ को सुलझाते समय हमे यह भी ध्यान में रखना होगा कि उनके प्रति अन्यायो को दूर करने के प्रयासो द्वारा समाज में संघर्ष का वातावरण उपस्थित न हो। अस्पृश्यता-उन्मूलन के आन्दोलन को हमें गांधीजी के सिद्धान्तो द्वारा ही शांतिमय और अहिंसक ढग से संचालित करना होगा। इस कार्य में हमें सवर्णो, हरिजनो, महिलाओ व नवयुवको का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना होगा, ताकि देश में एकता व सदभावना का वातावरण बने, संघर्ष और विघटन का नही। हमें यह भी सावधानी रखनी होगी कि इस जन-आन्दोलन में किसी प्रकार की दलगत राजनीति प्रवेश न करने पाये।

अन्तत हमें यही प्रयास करना है कि देश के करोडो हरिजन भाई और बहनें भारत के समान और प्रतिष्ठित नागरिक बनकर अपना जीवन-निर्वाह करें और राष्ट्र के निर्माण मे भी आत्मसम्मान के साथ अपना हाथ बटावें। आखिर, 'हरिजन' शब्द को भी समाप्त हो जाना है। जातिपाँति का यह रोग जल्द-से जल्द खत्म होना चाहिये, ताकि हम भारत में एक वर्ग और जाति-विहीन समाज स्थापित कर सकें।

नई तालीम का नया पाठ्यक्रम

पिछला अखिल भारतीय नयी तालीम सम्मेलन नवम्बर १९७४ में सेवाग्राम में हुआ था। उसने सिफारिश की थी कि वर्तमान परिस्थितियो को ध्यान में रखकर डा. जाकिर हुसैन द्वारा सन् १९३७ में तैयार किये गय बुनियादी पाठ्यक्रम में

आवश्यक परिवर्तन किया जाय और आठ वर्ष के स्थान पर अब उसे दस वर्ष का एक नया रूप दिया जाय। इस दृष्टि से अखिल भारत नयी तालीम समिति ने श्री द्वारकाप्रसाद सिंह की अध्यक्षता में एक उपसमिति गठित की थी, जिसके संयोजक समिति के नये मन्त्री श्री वजुभाई पटेल थे। इस उपसमिति द्वारा सेवाग्राम में गत २६ से २९ जुलाई तक एक विचार-गोष्ठी (वर्कशॉप) आयोजित की गई थी, जिसमें देशके प्रमुख बुनियादी शिक्षा कार्यकर्ता शामिल हुए थे। इस गोष्ठी ने कार्योन्मुख पाठ्यक्रम (functional curriculum) की रूपरेखा तैयार की थी। उस रूपरेखा पर विचार करने के लिये गत् २२-२३ अक्टूबर को सेवाग्राम में प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कुछ प्रमुख आचार्यो का एक सम्मेलन बुलाया गया था। इस सम्मेलन ने बुनियादी तालीम के नये पाठ्क्रम पर गहराई से विचार किया और कुछ सुझाव पेश किए।

अब इन सभी सुझाओं को ध्यान में रखकर अखिल भारत नई तालीम समिति की सम्बंधित उपसमिति दस वर्षका एक नया पाठ्यक्रम तैयार करेगी, जिसे देश के प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों के पास विचारार्थ भेजा जाएगा। इसका लाभ यह होगा कि जो शिक्षण-संस्थाएँ बुनियादी तालीम के शुद्ध रूप को सन्चालित करना चाहती हैं, उन्हे एक निश्चित मार्गदर्शन प्राप्त हो सकेगा। नई तालीम समिति ने सभी राज्य सरकारों से यह सिफारिश की है कि वे अपने क्षेत्र में कुछ स्वायत्त विद्यालय (autonomous schools) स्थापित करने की सुविधाएँ दें, ताकि ये विशिष्ट विद्यालय बुनियादी तालीम के नए पाठ्यक्रम को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें और शिक्षा सुधार की दिशा में कुछ ठोस कदम उठा सकें। हम आशा करते हैं कि हमारी राज्य सरकारें इस सुझाव पर गम्भीरता से विचार करेंगी।

सेवाग्राम की संगोष्ठी में कार्योन्मुख पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जो सुझाव दिए गए, उनकी जानकारी इसी अंक में दी गई है। बुनियादी तालीम के कार्यकर्ताओं से हम इस दिशा में कुछ उपयोगी सुझाव प्राप्त हो सकेंगे, ऐसी आशा है।

महात्मा गांधी :

'नई तालीम' : जन्म से मृत्यु तक

[सेवाग्राम के 'नयी तालीम भवन' में शिक्षकों के एक शिविर का उद्घाटन करते हुए सन् १९४४ में गांधीजी ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया था, जिसका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। इसमें बापू ने पहली बार बुनियादी शिक्षा के लिये 'नयी तालीम' शब्द का प्रयोग किया था।
— सम्पादक]

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ में जो काम चलता है, उसका सही नाम है–'नई तालीम।' और नई तालीम किस तरह से है वह मैं थोड़े शब्दों में बता देता हूँ। मैं अपने को एक अनपढ़ आदमी समझता हूँ और यह जान-बूझकर कहता हूँ कि मैं एक अनपढ़ आदमी हूँ। यह अतिशयोक्ति भी नहीं है, अल्पोक्ति भी नहीं।

आप पूछेंगे कि मैं अनपढ़ कैसे हूँ? मैं तो अंग्रेजी ठीक-ठीक बोल लेता हूँ, मेरी जो मातृभाषा गुजराती है, उसे भी मैं ठीक-ठीक बोल लेता हूँ, लिख लेता हूँ। मैं अखबार चलाता था। जिस राष्ट्रभाषा में मैं अभी बोल रहा हूँ, उसमें मैं बोलता भी हूँ, लिखता भी हूँ। यह बात सच है कि उसमें व्याकरण का कोई ढंग नहीं है, लेकिन जिनके सामने बोलता हूँ, उन्हें मैं अपना भाव समझा सकता हूँ। फिर मैं कैसे कहता हूँ कि मैं एक अनपढ़ आदमी हूँ। मेरा मतलब है कि 'नई तालीम' के बारे में मैं अनपढ़ हूँ। मैंने नई तालीम के रूप में पढ़ा नहीं है।

जब कांग्रेस के हाथों में चन्द दिनों के लिए सत्ता आई, ताकत आई, उस समय मालूम नहीं था कि यह चन्द दिनों के लिए है। मैंने सोचा कि तालीम के बारे में कुछ होना चाहिये। जो तालीम दी जाती थी उससे मेरी नफरत थी। मैं तो वह धंधा करता ही था। कताई बुनाई का काफी काम मैंने किया है। सही तालीम वह है, जो धन्धेके मार्फत दी जाती है—वह भी देहातों में देहाती लोग जो धंधे करते हैं, उनके मार्फत। खेती मैं नहीं जानता था, आज भी नहीं जानता। कताई का यह धंधा मैं जानता था। वर्षों से यह धन्धा मैंने अपनाया था। यह बात कैसे फैली, वह इतिहास अभी मैं छोड़ देता हूँ।

नई तालीम की संस्था खुली। इसको छ साल पूरे हो गए। सातवाँ वर्ष अभी चल रहा है।

लेकिन सात से चौदह तक—सात साल में—नई तालीम का काम पूरा नहीं होता है। जब से बच्चा माँ के पेट में जन्म लेता है, तब से मरने के समय तक जो सिखा सकता है, वही नई तालीम का शिक्षक है। जो सत्य का आग्रह रखता है, वह कहता है, तो आपको कबूल कर लेना चाहिये कि इसमें मैं एक अनपढ़ आदमी हूँ।

खुशी की बात है कि आप इतने सूबों से इकट्ठे हो गए हैं। एक सरहद को छोड, सब सूबों से आप यहाँ आए हैं। खैर, मुझे उसका अफसोस नहीं है। एक मुसलमान भाई भी आ गए हैं, जिन्होंने मीठी आवाज में फतहा पढा। उसमें आता है कि हम सत्य ही बोलेंगे। आगे जाकर आता है कि असत्य से हमें सत्य की ओर ले जाओ। 'अउज बिल्ला' इस नाम की एक बुलन्द प्रार्थना है। अगर उसमें कोई मतलब है, तो वह भी यही है। जितने भाई-बहन यहाँ आए हैं, वे अगर इसी दृष्टि से, बडे भाव से, उद्यम से, सीखेंगे, तो वे अपने सूबों में जाकर काम कर सकेंगे।

अब यह सात साल की बात नहीं रही। अब तो सारे जीवन भर में इसका काम है। ऐसी तालीम देना कोई छोटी बात नहीं है। इसका तजुर्बा किसी को नहीं है। जो कालेज की पढाई है, वह तो दूसरी चीज है। उसमें तो सरकारी डिग्री मिलती है, पैसे मिलते हैं। अभी तो इसमें पैसे नहीं मिलने वाले हैं। मुल्क का सारा काम हाथमें आने पर देखा जायगा। तब भी अगर मेरा ख्वाब (सपना) सही हुआ, तो आज के जैसा पैसा नहीं मिलने वाला है। यह मुल्क उसको बर्दाश्त नहीं कर सकता। आज तो एक विदेशी सरकार आकर अपने काम के लिए तालीम दे रही है। उस काम के लिये तो स्कूल, कालेज हैं।

इस तालीम को लेकर देहातों के काम में पडना है, तो ही यह तालीम काम की हो सकती है। इससे भी सादे मकान में बैठकर, पेडों के नीचे बैठकर, मैं आपके साथ बहस कर सकूँ, तो मुझे अच्छा लगेगा। सादगी में भी एक कला है, एक ताकत है, वह महलों में नहीं है।

ये जो चटाइयाँ हैं, जिन पर आप बैठे हैं, ये तो सेवाग्राम में जो गोंड कुटुम्ब हैं, उनकी बुनाई हुई हैं। इनसे उनको पैसे भी मिल जाते हैं और हमारा ताल्लुक भी उन लोगों से शुरू होता है। मुझे यह अच्छा लगता है। यह जो मिट्टी का बर्तन है, जिसमें फूल रखे हैं, यह भी एक गाँव का बर्तन है।

आप सब, मैं मानता हूँ, शहरों से आए हैं, बहुत-सी डिग्रियाँ भी हैं। लेकिन यह चीज अनोखी है। यहाँ से यह चीज अपनाकर अपने सूबों में ले जाओगे, तो बडा काम होगा, नहीं तो, मेरा ख्याल है कि यह चीज यहीं रह जायगी।

यहाँ जो पढ़ाई है, वह सफाई से शुरू होती है। दिलो की सफाई प्रार्थना से होती है। हृदय को झाड़ू से साफ करना है। वह प्रार्थना चाहे फतहा हो, चाहे मंत्र हो, या पारसी-मंत्र हो, कोई भी प्रार्थना हो—वही इबादत है। खुदा के अनेक नाम हैं। जितने आदमी हैं, उतने खुदा के नाम हैं। सबसे बुलन्द नाम है—'सत्य', 'हक'। उस नाम से अगर अपने दिल का झाड़ू निकाला, तो भंगी का काम आपने अच्छा किया'—ऐसा मैं मानूंगा।

खाना और उसे निकालना—दोनो पाक चीज हैं। जो खुदा का नाम लेकर खाते हैं, शौक से नही खाते, सत्य का नाम लेकर हरेक ग्रास खाते हैं, (डाक्टर जो चाहे कहे) उनका सबका सब हजम हो जायगा। उसके पाखाने में सफाई ही सफाई होगी। यह मुझे मदरसे में किसी ने नहीं सिखाया किताब में मैंने नहीं पढ़ा— यह मैंने अनुभवों से सीखा है।

जितना काम शरीर में चलता है, उतना ही काम देहात म चलता है। हिन्दुस्तान एक बुलन्द देहात है। सारी दुनिया एक शरीर— एक देहात—है। यह कुदरत की रचना है। उसमें हम एक छोटा मा जन्तु हैं, उसमे घमड क्या है? अगर सब जन्तु अकल से काम करते हैं, तो उनकी सच्ची सेवा होती है।

आज लाखो का खून बहता है, उससे मुक्त रहना भी इस तालीम का एक काम है। लड़ाई, झूठ-फरेब से बरी रहना भी सीखना है। यह भी हमारी जंग है। सत्य की सेना है और असत्य की भी सेना है। उसके लिये गोला-बारुद नही। सबसे बडी दौलत उनके पास ईश्वर का नाम है। सारे जगत् में वे किसी से डरते नहीं। यदि इतना कमा लें, तो बहुत हासिल कर सकते हैं।

सच्ची शिक्षा

शिक्षा के फलस्वरुप विवेक प्राप्ति के साथ बालको को ससार की विभिन्न वस्तुओ एव आत्माओं में एक सामञ्जस्य का अनुभव होना चाहिए। यही सामञ्जस्य सच्चा गुण है। बालक को दी गयी शिक्षा सच्ची तभी कही जा सकती है, जब कि वह घृणा करनेवाली वस्तुओ से घृणा करे और प्यार करनेवाली वस्तुओ से प्यार।

—प्लेटो

विनोबा :

बुनियादी शिक्षा की तीन बुनियादें :

योग, उद्योग और सहयोग

[ता १४–१५–१६ अक्टूबर १९७२ को सेवाग्राम में एक 'अखिल भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' आयोजित किया गया था। ता १५–१०–७५ की पहली बैठक श्री विनोबाजी के सानिध्य में परमधाम आश्रम पवनार में हुई। इस अवसर पर श्री विनोबाजी का जो प्रवचन हुआ था, वह अपना विशेष महत्व रखता है। आज के सन्दर्भ में भी पाठक उसे पढ़ें और उससे प्रेरणा लें, इसी उद्देश्य से यहाँ उसे उद्धृत किया जा रहा है —

— सम्पादक]

मुझे अभी याद आ रहा है उदाहरण मुहम्मद पैगम्बर का। पैगम्बर, भगवान का ध्यान कर रहे थे। भगवान ने अव्यक्त रूप में एक पर्चा उनके सामने रखा और कहा, 'पढ़ो'। पैगम्बर ने अल्लाह से कहा 'हे भगवान, मैं पढ़ना लिखना नहीं जानता।' इस वास्ते भगवान को सामने आना पड़ा और बातचीत करनी पड़ी, अपना सदेश सुनाना पड़ा। बहुत प्रसिद्ध है यह कहानी। कुरआन में उसका जिक्र है। 'नवीनयुन उम्मीयुन्'। (अनपढ़ प्रोफेट) । तो पैगम्बर हमेशा कहते थे लोगों से, कि अगर मैं पढ़ा लिखा होता, तो भगवान का शब्द सुनने को मिलता नहीं और पर्चे पर समाधान मानना पड़ता। शिक्षित लोगों की यह हालत है कि उनके और परमात्मा के बीच पर्चा खड़ा होता है। पुस्तक दीवार बन जाती है और सृष्टि और आत्मा के बीच पुस्तक खड़ी होती है। मेरे सामने अनेक लेखक अनेक विद्वान बैठे हैं, उनसे मैं इतना ही कहूँगा कि आगे 'अन-लनिंग' का 'प्रोसस' करिएगा। जितना आपका 'लर्निंग' हुआ होगा, उतना भूलनेकी प्रक्रिया शुरू करिए, तो अच्छा ज्ञान होगा।

एक बात मेरे मन में आती है, जो 'मूल कुठार' है। वह यह कि शिक्षा सरकारी तंत्र से मुक्त होनी चाहिए। शिक्षा पर सरकार का कोई वरदहस्त नहीं होना चाहिए। शिक्षकों को तनख्वाह सरकार जरूर दे। वह सरकार का कर्तव्य है। परन्तु जैसे न्याय विभाग— ज्युडिशियरी— स्वतंत्र है और सुप्रीम कोर्ट में सरकार के खिलाफ भी फैसले दिये जा सकते हैं, और दिये गये हैं, अगरचे उस न्यायाधिपति

को तनख्वाह सरकार से मिलती है, वैसे ही शिक्षा विभाग स्वतंत्र होना चाहिए। यह अगर नहीं होगा, तो बहुत बड़ा खतरा अपने देशके लिए है।

डिमोक्रेसी में, यानी लोकशाही में हर एक को आजादी है, विचार की स्वतंत्रता है। एक बाजू से डिमोक्रेसी का दावा करना और दूसरी बाजू से विद्यार्थियों का दिमाग एक ढांचे में ढालना, यह डिमोक्रेसी के मूलभूत विचार के खिलाफ है। ऐसी कोशिश रशिया में हुई। ऐसी कोशिश चायना में हुई। उसका परिणाम क्या आया, आप लोग देखते हैं। रशिया में दो-दो, तीन-तीन दफा इतिहास लिखे गये। नये-नये इतिहास। इतिहास यानी क्या है? 'इति ह आस'—वास्तव में ऐसा हुआ। परन्तु इन दिनों इतिहास का अर्थ है— इति हास —एस हँसना, हास्यास्पद। इतिहास यानी हास्य का विषय। जिस प्रकार का विद्यार्थियों का दिमाग बनाना चाहते हैं, उसके अनुकूल इतिहास बनाते जायंगे। परिणाम क्या आता है? शिक्षा-अधिकारी के हाथ में ऐसी सत्ता आती है, जैसी सत्ता आपने न शंकर को दी, न रामानुज को दी, न तुलसीदास को दी, न कबीर को दी।

आज शायद उत्तर भारत में तुलसीदास की रामायण जितनी पढ़ी जाती है लोगों में, आम जनता में, भाइयों और बहनों में उतनी दूसरी कोई किताब पढी नहीं जाती। मैंने देखा बिहार में। बिहार की बहनें श्री अरविन्द से बढकर योगी हैं। श्री अरविन्द बीस-पचीस साल एक कोठरी में रहे। बिहार की बहनें जिंदगी भर एक कोठरी में रहती हैं। बाहर के आँगन में भी नहीं आतीं। शादी के बाद घर में प्रवेश किया, उसके बाद, मृत्यु के बाद ही बाहर आयगी। अगर दफनाने का रिवाज होता, तो उन्हें घर में ही दफनाते, लेकिन जलाने का रिवाज है, इसलिए उन्हें बाहर निकाल कर जलाना पडता है। लाचारी है। हमने उन बहनों से पूछा कि कुछ पढ़ती हो क्या? तो बोलीं, "पढना-लिखना तो जानती नहीं, थोडा पढना सीखा है, इसलिए तुलसीदास की रामायण पढती हूं।' आज भी जो धर्म भावना उत्तर प्रदेश, बिहार वगैरह में है, वह तुलसीदास की कृति है। लेकिन तुलसीदास को आपने वह अधिकार नहीं दिया, जो आज शिक्षा-अधिकारी को दिया है। शिक्षा-अधिकारी आज जो किताब तय करेगा, वह हर एक बच्चे को पढनी ही पडेगी। उसकी परीक्षा देनी पडेगी, और परीक्षा में फेल होगा, तो आगे उसकी प्रगति होगी नहीं। तुलसीदास की किताब लोग खूब पढते हैं, इच्छा से पढते हैं, लेकिन जबरदस्ती अपनी पुस्तक बच्चे पढ़ें, यह शक्ति तुलसीदास की नहीं। वह अधिकार आपने दे रखा है शिक्षा-अधिकारी को। शिक्षा-अधिकारी के दिमाग में आपने ऐसी कौन-सी बुद्धिमत्ता पायी, जो तुलसीदास, कबीर, शंकर और रामानुज से बढकर है? इस वास्ते यह जो अधिकार दिया जाता है, वह नहीं होना चाहिए। उससे बहुत नुकसान होता है देश का। तो ये मेरे शिक्षा के बारे में विचार 'मूले कुठार' हैं। लेकिन, फिर भी शिक्षा के बारे में, वह जब तक

आपके हाथ में हैं तब तक अच्छी से अच्छी योजना आप सब मिनवर करें यह ठीक ही है। उसमे तीन चीज सिखानी चाहिए। एक है--योग दूसरा--उद्योग और तीसरा--सहयोग। ये शिक्षा के मुख्य तीन विषय हैं।

योग

योग का अर्थ आसन लगाना व्यायाम करना यह नही है। योग यानी चित्त पर कम अंकुश रखना इंद्रियों पर कैसे सत्ता रखना मन पर कैसे काबू पाना जुबान पर कैसे अपनी सत्ता पाना--यह योग का सच्चा अर्थ है। इन दिनो चित्त पर सत्ता रखना चित्त अंकुश में रखना स्थिर रखना जिसको गीता स्थितप्रज्ञा कहती है ऐसी स्थितप्रज्ञा की बहुत आवश्यकता है। पहले कभी जितनी नही थी उतनी आज है। क्या है? क्योंकि आज रोजमर्रा की सैकडो घटनाएँ कान पर पडती हैं आँख पर पडती है। चारो ओर से विचारोंका आक्रमण होता है। जितना आक्रमण मनुष्य के दिमाग पर आज होता है उतना पहले कभी नहीं होता था, क्योंकि साइंस का जमाना आया है। ऐसी हालत में चित्त को शांत रखना स्थिर रखना काबू में रखना अत्यन्त महत्व का विषय है। इस वास्ते स्थितप्रज्ञ-दर्शन की आज जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी नही थी। तो प्रज्ञा स्थिर करना योग का मुख्य विषय है।

उसके लिए कुछ आध्यात्मिक ग्रंथो की मदद हो सकती है। लेकिन हम लोगो में सेक्युलरिज्म के नाम से एक गलत विचार पैठ गया है।

सेक्युलरिज्म का अर्थ वास्तव में गांधीजी की भाषा इस्तेमाल करूँ तो सर्व धर्म समभाव है। परन्तु सेक्युलरिज्म का अर्थ हमने समझ लिया है-- सर्व धर्म सम अभाव। अब परिणाम उसका यह है कि उन आध्यात्मिक ग्रंथों का विद्यार्थियों को स्पर्श होने नही देते। लेकिन इनकी लाचारी है कुछ। क्या लाचारी है? जो हमारे कुछ आध्यात्मिक ग्रंथकार हो गये वे दुर्दैव से यानी इन सेक्युलरिस्ट लोगो के दुर्दैव से साहित्यिक भी थे। इस वास्ते साहित्य की दृष्टि से उनके साहित्य का कुछ पीस (छोटा हिस्सा) रखना ही पडता है। उसमें बहुत है पीस (टुकडा)। अब बी ए तक सीख लिया और ज्ञानेश्वरी से सम्बन्ध नही तो कैसे चलेगा? इस वास्ते ज्ञानेश्वरी का एक छोटा-सा अध्याय रख लेते हैं बी ए में। बी ए के पहले तो कुछ था ही नही बी ए में एक अध्याय ज्ञानेश्वरी का रख लिया। ऐसा इन लोगो का-- सेक्युलरिस्ट लोगो का-- मानस्य है। जिस ग्रंथ से महाराष्ट्र का हृदय बना उस ग्रंथ का परिचय न हो ऐसी कोशिश करते हैं और लाचारी से साहित्य के तौर पर कुछ पीस रख लेते हैं। यही हाल तुलसीदास के बारे में है।

यह ठीक है कि इन ग्रंथो में ऐसा कुछ चीज है जो इस जमाने के ख्याल से 'आउट डेटड' (कालबाह्य) है। तो उसका अंश निकालना होगा। ऐसी कोशिश बाबा ने की है। बाबा ने कई धर्म-ग्रंथो का उत्तम-से-उत्तम अंश निकाल कर लोगो के

सामने रखा है। जैसे— कुरान सार, 'ख्रिस्त धर्मसार', 'भागवत धर्मसार', 'मनुशासनम्' इत्यादि इत्यादि। ऐसे पद्रह-बीस ग्रंथ बाबा ने निकाले हैं जिनमें उन-उन ग्रंथो का सार रख दिया है। तो उन ग्रंथो का उपयोग भी आप कर सकते हैं। उससे पुराने ग्रंथो के गलत विचारो से हम बचेगे और जो अच्छे विचार है, उनको ग्रहण करेंगे।

सवाल यह है हमारे सामने कि पुराने जमाने के लोगो के आध्यात्मिक विचार रखें इसकी जरूरत क्या है? आधुनिक जमाने के विद्वानो की किताब रखने के बजाय पुराने ग्रंथकारो के विचार क्यों रखे जाय? इसका उत्तर है—होमियोपैथी। होमियोपैथी में क्या होता है? घोटा जाता है— घोटे घोटे घोटते हैं तो पोटन्सी (शक्ति) बढती है। तो जो आध्यात्मिक प्राचीन ग्रंथ है उनकी पोटन्सी बढी हुई है। आज तक लाखो लोगो ने अनेक महापुरुषो ने पढ-पढकर उन्हे घोटा है। इस वास्ते उन ग्रंथो की पोटेन्सी बढी है।

असम में दो महापुरुष हो गये— शकरदेव और माधवदेव जिनका नाम वहाँ के घर घर में है। लेकिन यहाँ हम लोग जानते नही। हमको एसी तालीम मिली है कि हम पोप बायरन, शरन-यारन एस अनेक रन जानते है परन्तु असम के घर घर में जो नाम चलते हैं वे नाम हम जानते नही। माधवदेव ने कहा है— विष्णुसहस्रनाम सत्य —अरे मूरखो विष्णु का सहस्रनाम तुम्हारे पास है फिर भी— विरोध वचन मात्र रटय —विरोधी वचन रटते हो विरोधी भाषा बोलते हो! तो उन्होने विष्णुसहस्रनाम को अविरोध साधक माना। यानी हमारे सबके हृदयो को जोडने वाला विरोध मिटानेवाला! और वही विष्णुसहस्रनाम चलता है केरल में और वही विष्णुसहस्रनाम चलता है सौराष्ट्र मे। हिन्दुस्तान के त्रिकोण में विष्णुसहस्रनाम चलता है। इतना घोटा हुआ होने के कारण उसका पोटेन्सी बढ गयी है। तो जो पोटन्सी बढ की है कुरान की है बाइबिल की है ज्ञानेश्वरी की है तुलसीदास की है वह पोटन्सी हमारे आज के विद्वानो के ग्रंथो मे नही हो सकती अगरचे विद्वानो के ग्रंथ अच्छे भी होगे। इस वास्ते पुराने ग्रंथो का विद्यार्थियो को स्पर्श होना चाहिए।

दूसरी भी एक बात है। कालपुरुष है। वह कालपुरुष परीक्षा करता है। कालपुरुष की परीक्षा में जो निकम्मी चीज है वह पचास साल मे सौ-दो-सौ साल में गिर जाती है और जो अत्यन्त उत्तम है वह कालपुरुष की परीक्षा में टिकती है। तो वेद की परीक्षा हो गयी। दस-बारह हजार साल से कालपुरुष ने उसकी परीक्षा की। अगर वह चीज काम की नही होती तो दस-बारह हजार साल टिकती नहीं। आज हमारे ग्रंथो में से कितने ग्रंथ सौ साल के बाद पड जायगे? मैं आपको मिसाल दूँ।

लोकमान्य तिलक का 'केसरी'। अपने बचपन में हम हर हफ्ते राह देखते थे कि 'केसरी' कब आयेगा और कब पढ़ेंगे। उसके लेख पढ़ते थे। उससे हमको बहुत ही प्रेरणा मिली। आज क्या है? पचास साल हो गये उनको। उनके लेखों में से एक भी पढ़ा नहीं जाता। वे केवल 'गीतारहस्य' के कारण जीवित हैं। अगर 'गीतारहस्य' न लिखा होता, तो लोकमान्य का एक भी लेख हमारे पास पढ़ने के लिए नहीं होता। पचास साल के बाद वे लेख 'आउट डेटड' हो जाते हैं।

हमारे बचपन में त्रिमूर्ति थी—भगवान शंकर, भगवान विष्णु और भगवान ब्रह्मदेव—इस त्रिमूर्ति के जैसी त्रिमूर्ति लाल-बाल-पाल। 'लाल' यानी लाला लाजपतराय,'बाल' यानी बाल गंगाधर तिलक और 'पाल' यानी विपिनचंद्र पाल। आज विपिनचंद्र पाल का नाम हमारे पास है, परन्तु उनकी कोई चीज पढ़ी नहीं जाती। लाला लाजपतराय ने अनेक ग्रंथ लिखे, लेख लिखे। एक भी लेख उनका आज पढ़ा नहीं जाता। उनका नाम आज इसलिए है कि पीपुल्स सोसायटी नाम की एक सोसायटी उन्होंने बनायी और वह आज भी कुछ सेवा-कार्य कर रही है। लेकिन ग्रंथ उनका एक भी पढ़ा नहीं जाता। लोकमान्य के हालात आपको सुनाये। यह मैंने आपसे इसलिए कहा कि जिन ग्रंथों की काल ने परीक्षा की और जो ग्रंथ हजार-हजार, पाँच-पाँच, दस-दस हजार साल की परीक्षा में बचे हुए हैं, उनकी परीक्षा हो चुकी। उन ग्रंथों से हमको मदद लेनी पड़ती है—इतनी अक्ल हमको सेक्युलरिज्म में होनी चाहिए। तो यह बात मैंने कही योग के बारे में।

उद्योग

शिक्षा का दूसरा विषय है—'उद्योग'। उद्योग में केवल चरखा हो या तकली हो, यह मेरा विचार नहीं। आधुनिक यंत्र भी हो, वर्कशाप भी हो। कुछ भी हो, लेकिन खेती तो होनी ही चाहिए। वेद में शब्द आया है 'पंचजन'। अब भगवान का शंख पांचजन्य है—यानी पाँच जनों के लिए भगवान का शंख है। वेद कहता है, 'पंचजन'। कौन-से पंचजन? रक्त, श्वेत, पीत, कृष्ण, मिश्र श्याम। हमारे देश के लोग श्याम हैं। कुछ लोग हैं रक्त वर्ण के रेड इंडियन्स वगैरह। कुछ लोग हैं काले, सिद्दी, हब्सी वगैरह। कुछ लोग हैं गोरे, सफेद, मानी यूरोपियन वगैरह। कुछ पीत—बर्मा, चीन, जापान वगैरह के लोग। तो रक्त, श्वेत, पीत, कृष्ण, मिश्र श्याम—ऐसी पंच प्रजा दुनिया में हैं। श्याम हिन्दुस्तान का खास वर्ण है। हम श्यामवर्ण लोग हैं। भगवान कृष्ण का वर्ण श्याम था। 'श्यामसुन्दर' वगैरह शब्द प्रचलित हैं ही। कृष्ण शब्द का अर्थ है—किसान, खेती करनेवाला। खेती करने वाले शरीर का जो रंग होता है, वह कृष्ण का रंग है। ऐसे पंचजनों का जिक्र वेद में आता है। और भगवान का शंख पांचजन्य है, इन पाँच जनों के लिए है यानी कुल दुनिया के लिए है।

जैसे 'पचजन' शब्द है, वैसे दूसरा एक शब्द वेद में बार-बार आया है—'पचकृष्टि', यानी पाँच किसान। उसका अर्थ यह है कि हर एक मनुष्य किसान है। खेती के साथ वह दूसरा काम करे। मान लीजिए, वह बुनकर है। उसे यह कहना कि आठ घटे बैठे-बैठे तुम बुनते रहो। यह बिलकुल जुल्म है उस पर। आठ घटे एक जगह बैठ कर बुनते रहने को कहना—यानी उसकी शक्ति को क्षीण करना है। लेकिन, मान लीजिए, दो घटे वह खेत में काम करे और छ घटे बुने, तब तो उसका जीवन अच्छा होगा। ऐसे ही ब्राह्मण होगा। वह मुख्यत अध्ययन करे। लेकिन वह भी दो घटे खेती करे और बाकी समय अध्ययन करे, तो उसका जीवन अच्छा होगा। प्रधान मंत्री होंगी आपकी, तो वह भी दो घटे खेती मे लगायें और बाकी समय अपना काम करें प्रधानमत्री का, तो क्या होगा ! उनका दिमाग ताजा रहेगा। और खेती के साथ सम्बन्ध होगा, तो उनकी प्रतिभा उज्ज्वल होगी। फिर, आज जितना सूझता है, उससे बहुत अधिक भी सूझ सकता है। इस वास्ते वेद में शब्द है—'पचकृष्टि।' पाँच प्रकार के किसान। इसलिए मैंने कहा कि हमारी समाज-रचना शिक्षा की रचना, गृह-रचना ऐसी होनी चाहिए। शहर में विद्यालय हो, तो भी विद्यालय के साथ दो-तीन एकड का खेत जुडा होना ही चाहिए। बच्चो को और शिक्षको को थोडी देर इकट्ठे होकर खेत में काम करना चाहिए।

इस सिलसिले में पडित जवाहरलाल नेहरू ने एक वाक्य मुझसे कहा था। वह वाक्य एक मत्र के समान मुझे याद रह गया। उन्होंने अंग्रेजी मे कहा था, इस वास्ते अंग्रेजी में आपके सामने रखूँगा—"नेशन्स डिके व्हेन दे लूज कांटेक्ट विथ नेचर"। जिन राष्ट्रों का आसपास की कुदरत के साथ सम्बन्ध नही रह जाता, वे राष्ट्र क्षीण होते हैं, उनका क्षय होता है। इस वास्ते खेती के साथ, प्रकृति के साथ, सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में वेद में एक वाक्य आया है कि सृष्टि में होना चाहिए सौन्दर्य और समाज मे सौजन्य। समाज का सौजन्य और सृष्टि का सौन्दर्य—दोनों मिलकर जीवन परिपूर्ण है। सौजन्य को वेद में 'वसु' नाम दिया है। वसु यानी सौजन्य। सौन्दर्य को 'वामम्' नाम दिया है। वामम् यानी सौन्दर्य। तो कहा गया—जो पृथ्वी पर काम करेगा, उसके लिए जरूरी है वसु, यानी अड्जस्टिंग नेचर (मेल-जोल की वृत्ति), वस धातु का यह अर्थ है। सौजन्य भावार्थ हुआ। और दिव्यधाम यानी सृष्टि होनी चाहिए वामम्—सुन्दर। 'वामवाम वो दिव्याय धामे। वसुवसु व पार्थिवाय सुन्वते' दो चीजें एक होनी चाहिए। इस वास्ते खेती के साथ हर मनुष्य का सम्बन्ध होना ही चाहिए, यह मेरा आग्रह है।

सहयोग

एक हो गया योग, दूसरा हो गया उद्योग, तीसरा है—सहयोग। इस सहयोग के अन्दर सारा समाज शास्त्र, मानस-शास्त्र इत्यादि आ जायेगा। लेकिन

मुख्य वस्तु क्या होगी ? हम सबको इकट्ठा जीना है। सहजीवन जीना है। सहजीवन में अनेक भाषाएँ, अनेक प्रांत, भेद इत्यादि इत्यादि सब खतम होने चाहिए। कल हमसे किसी ने कहा कि 'हम भारतीय हैं'—ऐसी भावना होनी चाहिए, न कि हम 'महाराष्ट्रीय हैं', 'गुजराती हैं' 'तमिल हैं' इत्यादि-इत्यादि। 'सन्तमिष्ठ नार्दनुम् पा देनिले जिन्व तेन वन्दु पायुदु कादिनिले अगष्ठ् तन्दैयर नाडेन्र पेच्चिनिले ओरू शक्ति पिरक्कुदु मूच्चिनिले।' 'अँगळ' यानी 'हमारा' उच्चारण करते हुए उत्साह आता है। "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" कहते हर्ष होता है। 'हमारा' इसलिए हर्ष, 'आमार सोनार बागला'— अरे 'आमार' इसलिए सोनार। हम बचपन में बोलते थे—'वारा तुझ्या स्पर्शने शुद्ध झाला मला लाभला भाग्य हे केवढे ?' राष्ट्रों के राष्ट्रगीत होते हैं। मेरे पास राष्ट्रगीतों का संग्रह था। उसमें झाबिया का राष्ट्रगीत था—"मेरा कितना भाग्य! तेरी सुन्दर हवा मिली, तेरा प्रकाश मिला" इत्यादि इत्यादि! इसका प्रमाण कौन है ? 'मैं' हूँ मुख्य। वायु से पूछा जाये, अरे वायु, तू कहाँ का है ? झाबिया का है कि भारत का, तो वह क्या जवाब देगा ? लेकिन हमारे देश की हवा का मतलब क्या है ? 'हमारा' यह है। अहम्— अहंगड। तो उन्होंने कहा कि 'महाराष्ट्रीय', 'गुजराती', ये सब जाना चाहिए, हम 'भारतीय' हैं। मैंने कहा, 'यह सबसे छोटी माँग है। मैक्सिमम (अधिक से अधिक) नहीं, और आप्टिमम् (इष्टतम) भी नहीं। यह कम से-कम। तो क्या जरूरी है ? जरूरी है 'विश्वमानव।' 'हम विश्वमानव हैं'—ऐसी भावना चाहिए।

हम आज गाते हैं भारत के गीत प्रांतों के गीत। लेकिन वेद में पृथ्वीसूक्त है, भारतसूक्त नहीं। 'नाना धर्माणं पृथिवी विवाचसम्।' यह पृथ्वी हमारी मातृभूमि, इसमें अनेक धर्म हैं और विवाचसम अनेक वाणियाँ, अनेक भाषाएँ हैं। तो अनेक भाषाओं से भरी, अनेक धर्मों से भरी हमारी यह पृथ्वी! इस वास्ते हमको समझना चाहिए कि हमको 'विश्वमानुष' बनना चाहिए। इसी वास्ते बाबा ने उद्घोष निकाला, 'जय जगत्!' जय जगत् से कम चीज अब नहीं चलेगी। लेकिन मिनिमम अगर रखना है, कम से कम रखना है, तो हम 'भारतीय' है, यह ठीक है। माफ है।

यह सारा मैं आपको कह रहा हूँ सहयोग के सिलसिले में। सहयोग में मानना होगा कि सारी पृथ्वी एक है। पृथ्वी के सारे मानव एक हैं और केवल मानव ही नहीं, आसपास के पशु, पक्षी, प्राणी, वनस्पति—सब एक हैं। क्रौंच का वध देखा, तो कविता स्फुरित हुई। तो आसपास की सृष्टि के साथ भी एक होना चाहिए। ये चिड़ियाँ हैं, सुन्दर गाती हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिए। ये कौए हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिए। ये गायें हैं, उनकी भी रक्षा होनी चाहिए। वटवृक्ष की भी रक्षा होनी चाहिए। तुलसी की भी पूजा होनी चाहिए। यह भारत का पागलपन है। यह भारतीय पागलपन अत्यन्त महत्व का है, कि कुल के कुल मानव हम हैं, और उनके अलावा

आसपास के जो प्राणी हैं, वनस्पति हैं, सब हम ही हैं। इतनी एकरूपता हमको आसपास की सृष्टि के साथ होनी चाहिए। यह आज के जमाने की, विज्ञान के जमाने की माँग है। क्योंकि विज्ञान ने क्या किया है? सबको नजदीक-नजदीक लाया है। इसलिए सहयोग में सबका सहयोग— प्राणियों का, मानवों का सबका सहयोग अपेक्षित है।

सहयोग के लिए क्या चाहिए? गुण ग्रहण करना चाहिए। हम जितने यहाँ बैठे हैं, उनमें से हरएक में असंख्य दोष और एकाध गुण भगवान ने रखा है। दोष हैं देह के साथ जुड़े हुए, और गुण हैं आत्मा के साथ। देह तो जलने वाली है, मरनेवाली है। तो दोष सारे उसके साथ जल जायेंगे। मनुष्य के जो गुण हैं वही उसकी आत्मा का मुख्य स्वरूप है। इस वास्ते हमेशा गुण ग्रहण करना चाहिए। इस सिलसिलेमें माधवदेव का वाक्य प्रसिद्ध है। उन्होंने मनुष्यों के चार वर्गों की कल्पना की। मनुष्य के चार वर्ग होते हैं— अधम, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम।

(१) अधमे केवल दोष लवय

जो अधम होता है, वह केवल दोष लेता है। दूसरोंके दोष देखता है।

(२) मध्यमे गुण-दोष सवे कारिया विचार

मध्यम, गुण-दोष—दोनों देखकर विचार करता है। गुण-दोष दोनों देखता है। अक्सर राजनीति में लोगों को गुण, दोष—दोनों देखना पड़ता है। वे मध्यम श्रेणी में आ जाते हैं।

(३) उत्तमे केवले गुण लवय

उत्तम केवल गुण ग्रहण करता है। उत्तमोत्तम क्या करता है?

(४) उत्तमोत्तमे अल्प गुण करय विस्तार

अल्प गुण का विस्तार करता है। किसी में थोड़ा-सा गुण देखा, तो पहाड़ करके देखता है, बढ़ाकर देखता है, वह उत्तमोत्तम पुरुष है। इस प्रकार हमको एक दूसरे के गुण बढ़ाना चाहिए। हमेशा गुणगान ही करना चाहिए। 'मेरे राणाजी! मैं गोविंद गुण गाना'। मीराबाई कहती है, मुझे केवल गोविन्द के गुण गाना है और कुछ नहीं। गोविन्द हर एक में भरा हुआ है। इसलिए हर एक के गुण गायें। नानक भी यही कहते हैं, 'विन गुण के कीने भकति न होई।'' जब तक गुण ग्रहण नहीं करते, तब तक आपको भक्ति का स्पर्श होगा नहीं। तो नानक की वही राय है। मीरा की वही राय है और माधवदेव की भी वही राय है।

बचपन में बाबा हर एक की अक्ल की परीक्षा करता था। इसमें यह दोष है, उसमें यह दोष है। फिर बाबा ने यह धन्धा छोड़ दिया। बाबा ने सोचा, बिना दोष-वाला आदमी दीखता नहीं। फिर अपना दोष देखना शुरू किया। तो वहाँ भी काफी दोष दीखे। लेकिन वह सबके दोष देखने के बाद दीखे। पहले देखा होता, तो दूसरे

के देखने की इच्छा न होती। सन्त तुकाराम ने कहा है— वासया गुणदोष याणूं आणिकांचे। मज काय त्याचे उणें असे। दूसरों के दोष क्यों देखूं अपने क्या कम पड़े हैं। इस वास्ते अपना ही दोष देखना अच्छा रहेगा। फिर गांधीजी के पास आये। तो उन्होंने कहा दूसरों के गुण बढ़ाकर देखो और अपने दोष बढ़ाकर देखें। मन वहां आप तो सत्यनिष्ठ हैं सत्य को महत्व देते हैं क्यों बढ़ा चढ़ा कर देखना चाहिए? जो है सो देखो। गणित में बढ़ाना चढ़ाना चलता नहीं। मैं तो गणित शास्त्र का विद्वान था। तो बोले तेरी बात ठीक है परन्तु सोचने की बात है यह स्केल बढ़ाने की बात है। अपना जो दोष होता है वह छोटा दीखता है इसलिए बढ़ाकर देखें तो प्रापर पारस्पेक्टिव (सही दर्शन) आ जाता है। ऐसे ही दूसरों के गुणों की बात। वह कम दीखता है। उसे बढ़ाकर देखेंगे तो ठीक पारस्पेक्टिव आ जाता है। तो वह प्रक्रिया हमने शुरू कर दी।

उसके बाद तीसरी अवस्था आयी जिसमें आज बाबा है। वह अवस्था है दूसरे के भी गुण देखो और अपने भी गुण देखो। गुण के अलावा देखना ही नहीं। बाबा से पूछते हैं सात्त्वयोग कैसे सधना चाहिए? बाबा जवाब देता है– जैसे बाबा को सधता है वैसे। बाबा ने एक विचार मन में तय किया तो सतत निरंतर करता रहेगा। यह बाबा का गुण है। और क्या गुण है बाबा का? दीनों के लिए करुणा है। और क्या है? संतों के वाक्यों पर श्रद्धा है। एक है श्रद्धा दूसरा है करुणा और तीसरा है सातत्ययोग। और बाकी हैं असंख्य दोष। लेकिन उन दोषों का बाबा विचार करता नहीं। तीन गुण हैं उनको आपके सामने रखता है। उसी प्रकार दूसरों में भी अनंत गुण हैं। तो अपने भी गुण गाना और दूसरों के भी गुण गाना। मेरे राणाजी! मैं गोविंद गुण गाना। यह आगे की तीसरी अवस्था अभी बाबा को प्राप्त हुई है। वही बाबा ने आपके सामने रखी। सहयोग के लिए यह आवश्यक लाभदायी है गुण ग्रहण वृत्ति।

इसको बाबा ने नाम दिया है— गुणचुम्बक-वृत्ति। लोहचुम्बक होता है। वह क्या करता है? मिट्टी के अनेक कण। में लोहे के कण हों तो उनको खींच लेता है। उसका नाम है—लोहचुम्बक। बस हमको बनना चाहिए गुणचुम्बक। मनुष्य में जो गुण-दोष पड़े होंगे उनमें से गुण एकदम खींच लेना चाहिए। यह शक्ति अगर हममें हो तो सहयोग अच्छी तरह सधेगा।

ब्रह्मविद्या मंदिर पवनार १४–१०–७२

O

श्रीमन्नारायण :

शिक्षा और राष्ट्र-निर्माण :

[राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर का कुल (ससद) अधिवेशन ता ७ अक्टूबर १९७५ को उदयपुर में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सस्था के कुलपति डा श्रीमन्नारायण जी ने 'शिक्षा और राष्ट्र निर्माण' विषय पर जो मननीय विचार प्रकट किये, उन्हें यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।
— प्र सम्पादक]

मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरी सूचनाओं के अनुसार राजस्थान विद्यापीठ की विभिन्न सस्थाओं ने 'सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा मन्तव्य' के बुनियादी सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया है और इस दिशा में काम भी प्रारम्भ हो गया है। इसी बीच राजस्थान सरकार ने एक उच्च-स्तरीय समिति का गठन कर सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन के लगभग सभी प्रस्तावों पर गम्भीरता से विचार किया। इस समिति की सिफारिशों को शासन ने स्वीकार किया है और उन्हें आगामी जुलाई से लागू करने का निर्णय लिया है। मुझे पूरी आशा है कि इस शिक्षा-सुधार कार्य को गतिशील बनाने के लिये राजस्थान विद्यापीठ के सभी पदाधिकारी व कार्यकर्ता अपनी पूरी शक्ति लगायेंगे, ताकि राजस्थान नई राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का एक प्रेरक आदर्श पेश कर सके, जिसके द्वारा भारत के अन्य राज्यों को भी आवश्यक दिशा-दर्शन प्राप्त हो।

सेवाग्राम सम्मेलन की मुख्य सिफारिश तो यही थी कि शिक्षा हर स्तर पर सामाजिक दृष्टि से उपयोगी एव उत्पादक क्रियाकलापों द्वारा आर्थिक विकास से सबद्ध रहकर ग्रामीण और नगरीय—दोनों क्षेत्रों में प्रचलित हो। इस ध्येय की पूर्ति के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हमारी शिक्षा का सम्बन्ध स्थानिक विकास-योजनाओं से जोडा जाय, ताकि विद्यार्थियों में उत्पादक-श्रम और समाज-सेवा द्वारा आत्म-निर्भरता, आत्म विश्वास और राष्ट्रीय-भावना जाग्रत की जा सके। देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति जैसी स्वराज्य मिलने के पहले थी, करीब-करीब वैसी ही बनी रही है। ऋषि विनोबा ने १५ अगस्त, १९७४ को ही कहा था— "जिस प्रकार नये राष्ट्र का झण्डा बदल जाता है, उसी प्रकार उसकी शिक्षा-प्रणाली भी तुरन्त बदल जानी चाहिये।" लेकिन ऐसा नहीं हुआ, और इस गलती के परिणाम हम इतने वर्षों से भोग रहे हैं। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् नव युवकों की एक नई पीढ़ी हमारे सामने उपस्थित है, जिसे पुरानी शिक्षा के ढाँचे में से ही गुजरना पडा। उनके हृदय में न कोई उत्साह है, और न कोई राष्ट्रीय आकाक्षायें हैं। उनका मन उदास और परेशान है और बेकारी के भयानक दृश्य से वे निराश और हताश हो गये हैं। अब यह बिलकुल

जरूरी है कि शिक्षा-सुधार के कार्य मे देरी न की जाय और आगे आने वाली पीढी को हम इस प्रकार की तालीम दें कि वे स्वतन्त्र भारत के उपयोगी नागरिक बन सकें तथा राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के सपनो का भारत बनाने मे सक्रिय सहयोग दें।

सेवाग्राम सम्मेलन ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया था कि हमारे पाठ्यक्रमो में भौतिक मूल्यो का सिंचन हो तथा सर्व-धर्म-समभाव के वातावरण का निर्माण हो। भारत जैसे देश मे राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लिए विविधता मे एकता की भावना को मजबूत करना होगा और नव-नागरिको को इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा देनी होगी, जिसके द्वारा वे विभिन्न भाषाओ, धर्मो तथा राज्यो के सकुचित दृष्टिकोण से ऊपर उठकर भारतीय तथा अन्तरराष्ट्रीय सद्भावना से ओतप्रोत हो। हमें एसे समाज का गठन करना है, जो बहुभाषीय व बहुधर्मीय हो और जिसमें सामाजिक व आर्थिक विषमता तेजी से घटकर अन्त्योदय के गाधी-मार्ग की ओर अग्रसर हो। भारत जैसा विशाल राष्ट्र तभी सुदृढ़ और समृद्ध बन सकता है, जब उसके नवयुवको के हृदय विशाल हो और बुद्धि व्यापक व समग्र हो। इस उद्देश्य को पूरा करने की सबसे बडी जिम्मेवारी हमारी शिक्षण-सस्थाओं के कन्धो पर है। यह उत्तरदायित्व तभी निभाया जा सकता है, जब सर्वप्रथम देश के शिक्षको का चरित्र उज्ज्वल और प्रेरणादायी हो। किसी भी राष्ट्र के सच्चे निर्माता उसके शिक्षक ही होते हैं, क्योकि व तरुण-नागरिको के चरित्र को ढालते हैं और उनकी भावनाओ तथा विचारो को सुविकसित करते हैं। मेरी श्रद्धा है कि इस कार्य को सफल बनाने में राजस्थान विद्यापीठ की विभिन्न सस्थाएं व शिक्षक अपना योगदान अवश्य देंगे और सेवाग्राम-मन्तव्य के कार्यान्वयन मे दिल जान से लग जायगें। शिक्षा के पुराने ढर्रे को अब चलाते रहने में अपनी शक्ति का अपव्यय करना हमे शोभा नही देगा। राजस्थान विद्यापीठ एक क्रान्तिकारी सस्था रही है और उसे अब सेवाग्राम शिक्षा-आदर्श की नयी क्रान्ति को प्रज्वलित करना ही है।

यह भी नितान्त आवश्यक है कि हमारी सस्थाओ के पाठ्यक्रमोमे भारतीय समन्वित सास्कृतिक परम्परा की जानकारी दी जाय, ताकि छात्रो का दृष्टिकोण व्यापक और राष्ट्रीय बन सके। उन्हें भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के सक्षिप्त इतिहास की जानकारी देना अनिवार्य माना जाय। हमारे सविधान के बुनियादी सिद्धान्तो पर भी पूरा बल दिया जाय, ताकि देश में लोकतत्र, धर्म-समन्वय और सामाजिक न्याय के मूल तत्वो का समावेश हो सके।

हमारी शिक्षा-सस्थाओ की परीक्षा-पद्धति में भी आमूलाग्र परिवर्तन करना बिल्कुल जरूरी हो गया है। हम बहुत वर्षों से इस विषय की चर्चा तो करते रहे हैं, लेकिन कोई ठोस सुधार अभी तक नही कर पाये हैं। इस दिशा में राजस्थान विद्यापीठ को अगुआ बनना है। हमारी परीक्षा-पद्धति विद्यार्थियो की न केवल बौद्धिक सिद्धि

की जाँच करे, बल्कि उत्पादक और विकास प्रवृत्तियो, सहगामी कार्यक्रमों, समाज-सेवा तथा छात्रो के चरित्र व व्यवहार पर भी उचित ध्यान दे। इसके लिए विद्यार्थियो-की दिन प्रतिदिन की उपलब्धियो का नियमित लेखा-जोखा तैयार करना होगा, ताकि आतरिक मूल्याकन द्वारा उनकी प्रगति आँकी जा सके।

इन सभी उद्देश्यो की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि राज्य शासन राजस्थान विद्यापीठ को स्वायत्व प्रदान करे, ताकि विद्यापीठ के अन्तर्गत सभी सस्थायें विभिन्न दिशाओ में नये-नये प्रयोग कर सकें और नवीन दिशाओ की खोज करने में सफल हो। स्वायत्व शिक्षण-सस्थाओ की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दो वर्ष पहले पेश की गई थी, किन्तु इस ओर अभी तक कोई विशेष प्रगति नही हुई है। मेरे ख्याल से इस प्रयोग को आगे बढाने में राजस्थान विद्यापीठ एक बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा अदा कर सकती है। मै उम्मीद रखता हूँ कि राजस्थान सरकार हमे सभी आवश्यक सुविधायें देने की शीघ्र ही घोषणा करेगी।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि पिछले दो वर्ष मे राजस्थान विद्यापीठ की विभिन्न यूनिटो ने कई दिशाओ में सन्तोषजनक प्रगति दिखलाई है। उदाहरण के लिये, उदयपुर स्कूल ऑफ सोशल वर्क न ग्रामीण सेवा-कार्य का अनुभव दिलाने के लिये यह अनिवार्य कर दिया है कि हर विद्यार्थी कम्युनिटी-केन्द्रो के कार्य स सम्बद्ध रहे। इसका परिणाम उत्साहवर्धक रहा है। प्रौढशिक्षा के क्षेत्र में विद्यापीठ की रात्रि शालाओ में इस बात का ध्यान रखा जा रहा है कि ग्रामीण जनता तालीम द्वारा अपना जीवन अधिक विकासशील बना सके। वह केवल भाषा और गणित का ज्ञान ही नही, किन्तु अपनी उद्योग-क्षमता और कार्य-कुशलताको अधिक प्रभावशाली बनाकर अपन आर्थिक विकास को अधिक गतिशील बनान मे कामयाब हो। विद्यापीठ की अन्य यूनिटो के कार्य की जानकारी काफी उत्साहवधक है। मै चाहता हूँ कि राजस्थान विद्यापीठ के रात्रि-महाविद्यालययो में भी इस ओर विशेष ध्यान दिया जाय और केवल किताबी पढाई और परीक्षाओ की सामान्य व्यवस्था करने म हमारी शक्ति खर्च न होती रहे। इस दृष्टि स वर्तमान अध्यापको को अपनी योग्यता और कार्य-क्षमता निश्चित रूप से बढानी होगी। हमें दृढता व अनुशासन के जरिये नवीन प्रतिभा का दर्शन मिलना ही चाहिये।

हमारे भूतपूर्व कुलपति आदरणीय हरिभाऊजी उपाध्याय का हटूँडी शिक्षा-क्षेत्र भी तेजी से प्रगति कर रहा है। विद्यापीठ ने यह निश्चय किया था कि पूज्य दा साहब की नारी-जागरण और उत्थान की भावना को ध्यान में रखते हुए उनकी स्मृति मे हटूँडी परिसर की महिलाओं के लिये एक बी एड कालेज स्थापित किया जाय। अब यह योजना क्रियान्वित हो चुकी है और सन् १९७४-७५ में 'हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय, हटूँडी' स्थापित हो गया है। इसी प्रकार तत्कालीन 'कमला नेहरु विद्यालय' को भी अब एक प्रगतिशील माध्यमिक शाला

का रूप दे दिया गया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि हटूंडी में कुछ अन्य उपयोगी शिक्षण-संस्थायें स्थापित की जायें, ताकि वहाँ बाल-मंदिर से महाविद्यालय तक की शिक्षा की समुचित व्यवस्था उपलब्ध हो सके।

इस वर्ष सारे देश में ऋषि विनोबा द्वारा संचालित भूदान-यज्ञ की रजत-जयन्ती मनाई जा रही है। शासन की ओर से भी अतिरिक्त भूमि गरीब खेतिहार मजदूरों को बड़े पैमाने पर वितरित की जा रही है। मुझे प्रसन्नता होगी, यदि इस वर्ष राजस्थान विद्यापीठ के शिक्षक और विद्यार्थी इस शुभ-कार्य में हाथ बँटाने का प्रयत्न करें और 'अन्त्योदय' की दृष्टि से हरिजनों व आदिवासियों को भूमि दिलवाने में सहायक हों। भूदान-यज्ञ में प्राप्त भूमि काफी मात्रा में पहले ही बँट चुकी है। किन्तु जो भूमि अभी तक बँट न सकी हो, उसे शीघ्र ही वितरित कराने का प्रयास करना चाहिये। इस रजत-जयन्ती वर्ष में और अधिक जमीन एकत्र करना तथा बाँट देना सब दृष्टि से वांछनीय होगा।

किन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि भूदान और ग्रामदान आन्दोलन मुख्यतः नैतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रम हैं। आचार्य विनोबाजी ने कई बार कहा है कि मुझे जमीन के टुकड़े होने की इतनी चिन्ता नहीं है, जितनी हृदयों के टुकड़े हो जाने की। यदि जमीन का न्यायोचित बँटवारा हो जाता है, तो इससे गरीबों और अमीरों के दिल नजदीक आयेंगे और धीरे-धीरे जुड़ सकेंगे। हमें स्मरण रहे कि भूदान का बुनियादी नारा रहा है — "एक बनो, नेक बनो।"

आप यह भी जानते हैं कि भारत में, और विशेषकर राजस्थान में, मद्य-निषेध आन्दोलन तीव्रता से चलता रहा है। वर्धा व सेवाग्राम की शिक्षण-संस्थाओं के संगठित प्रयत्नों के फलस्वरूप वर्धा जिले में महाराष्ट्र सरकार ने पूर्ण शराब-बन्दी लागू कर दी है। अब यह कार्यक्रम विदर्भ के आठ जिलों तथा पश्चिम महाराष्ट्र के कई क्षेत्रों में जन-आन्दोलन बनता जा रहा है। यह बड़े सन्तोष का विषय है कि पूज्य विनोबाजी की ८१ वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर ११ सितम्बर को नयी दिल्ली में एक सार्वजनिक समारोह में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी आग्रह किया कि देश भर में मद्य-निषेध का आन्दोलन शक्तिशाली ढंग से संचालित किया जाय। अतः यह आवश्यक है कि राजस्थान में इस आन्दोलन को अधिक गतिशील बनाया जाय, ताकि आचार्य विनोबा की सूचनानुसार अगले दो वर्ष के अन्दर यहाँ के सभी जिलों में शराब की दूकानें बन्द कर दी जाँय। यह आन्दोलन 'अन्त्योदय' के नजरिये से ही किया जा रहा है। जब तक गरीबों को शराब के दुष्परिणामों से बचाया नहीं जायगा, तब तक 'गरीबी हटाओ' नारा सफल बनाना असम्भव होगा।

यह सही है कि केवल कानून से यह कार्य पूरा नहीं होगा। शराब की दूकानें बन्द कराने के साथ साधारण जनता और विशेषकर गरीब वर्ग को शराब की बुराइयों

गहराई से समझाना होगा। संक्षेप में, कानून और जन-शिक्षण के कार्य साथ-साथ संचालित होने चाहिये। मेरी अपेक्षा है कि राजस्थान विद्यापीठ के कार्यकर्ता इस राष्ट्रीय आन्दोलन में भी सक्रिय दिलचस्पी लेंगे। दो वर्ष पहले मैंने आपसे राजस्थान के सूखाग्रस्त इलाकों में व्यापक सेवा करने की अपील की थी और आपने इस क्षेत्र में सुन्दर कार्य भी किया था। मुझे भरोसा है कि इसी प्रकार भूदान और मद्य-निषेध के रचनात्मक आन्दोलनों में भी आप क्रियाशील बनेंगे।

शराब-बन्दी के अलावा हरिजनों की समस्या अभी तक ठीक तौर से सुलझ नहीं पाई है। इस समय भी विभिन्न राज्यों से समाचार प्रकाशित होते रहते हैं कि अमुक गाँव में हरिजनों के प्रति सवर्णों ने घोर अत्याचार किया। छुआछूत की भावना अभी तक पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी है, यह सचमुच बहुत दुःख और शर्म का विषय है। इस ओर भी शिक्षकों और विद्यार्थियों को नजर डालनी चाहिये और सामूहिक प्रयत्नों द्वारा हमारे देश के इस कलंक को तीव्रता से धो डालना चाहिये।

दहेज-प्रथा भी एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। घटने के बजाय यह सामाजिक बुराई दिन प्रतिदिन बढ़ती ही नजर आ रही है। फलतः बहुत-सी बहनों का पारिवारिक जीवन दुखद व करुणापूर्ण बन जाता है। क्या हमारी शिक्षण-संस्थाओं का इस दिशा में कोई उत्तरदायित्व नहीं है? इस बारे में भी हम सभी को गम्भीरता से सोचकर कुछ ठोस कदम उठाने चाहिये।

यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे सभी काम दलगत राजनीति से परे हों। सदा से मेरी यह निश्चित राय रही है कि शिक्षण-संस्थाओं को राष्ट्र की सामान्य राजनीति की गतिविधियों से अवश्य परिचित रहना चाहिये, किन्तु राजनैतिक दलों के जाल में फँस जाना शिक्षण के पवित्र कार्य को मिट्टी में मिलाना है। हमारी बुनियादी भूमिका निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष वृत्ति से सींची जानी चाहिये। तभी हम अपने लक्ष्य की ओर सफलतापूर्वक बढ़ते रहेंगे।

अन्तत, हमारी शिक्षण-संस्थाओं का सच्चा विकास तभी हो सकता है, जब हम अन्तरमुख होकर अपना गुण विकास करें और आत्मविश्वास व ईमानदारी से अपना कर्तव्य पूरा करते रहें। राजस्थान विद्यापीठ पहले तीन-चार दशकों में जनसेवा का कार्य बड़ी लगन से करती रही है। मेरी दृढ़ श्रद्धा है कि भविष्य में भी यह कार्य आशाजनक उत्साह से सम्पन्न होता रहेगा। भगवान आप सबको यह पवित्र जिम्मेवारी निभाने की शक्ति देता रहे।

ॐ असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर् गमय।
मृत्योर माऽमृतं गमय॥

देवेन्द्रकुमार :

हरिजनों की समस्याएँ :

केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि ने अक्टूबर ११, १२ व १३, १९७५ को 'हरिजनो की समस्याओ' पर एक राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी का आयोजन किया। शिक्षा-शास्त्री, ससद-सदस्य, सरकारी कर्मचारी तथा विभिन्न अखिल भारतीय रचनात्मक सस्थाओ के ३० वरिष्ठ प्रतिनिधियो ने विचार-विमर्श में भाग लिया। विचार-गोष्ठी को अन्य सज्जनो के अलावा, श्री यू एन ढेबर, श्री आर आर दिवाकर और श्री जयसुखलाल हाथी का परामर्श और मार्गदर्शन मिला। गोष्ठी का उद्घाटन केन्द्रीय कृषि एव सिंचाई मत्री श्री जगजीवनराम और समापन केन्द्रीय गृहमत्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी ने किया। विचार-विमर्श की अध्यक्षता केन्द्रीय स्मारक निधि के अध्यक्ष डा श्रीमन्नारायण ने की।

गोष्ठी ने भारतीय सविधान के रजत जयन्ती वर्ष मे उसके अनुच्छेद १७ व ४६ पर विशेष ध्यान दिया। इनका पाठ इस प्रकार है —

मूल अधिकार अनुच्छेद १७	'अस्पृश्यता' को समाप्त किया जाता है और किसी भी रूप में उसका आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता' से उपजी किसी भी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दडनीय होगा।
निदेशक तत्व अनुच्छेद ४६	राज्य जनता के निचले तबको, विशेषत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियो के शिक्षा तथा आर्थिक हितो को सावधानी से उन्नत करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका सरक्षण करेगा।

तीन दिनो तक गहराई से विचार-विमर्श के बाद, गोष्ठी ने निम्नलिखित 'कार्यक्रम' को सर्वसम्मति से स्वीकार किया —

१— महात्मा गाधी ने छुआछूत को 'भारतीय समाज का सबसे बडा कलक' बताया था और इसे खत्म करने के लिये कई बार अपना जीवन तक दाँव पर लगा दिया था। सविधान में छुआछूत के विरोध में निश्चित निर्देशन के बावजूद और स्वतत्रता के बाद से अब तक की केन्द्र व राज्य सरकारो

की समाज-कल्याण योजनाओ के बाद भी तथ्य यह है कि हरिजनो की सामाजिक और आर्थिक दशा सतोषजनक नहीं हो पाई है। इसलिए यह जरूरी है कि अस्पृश्यता निवारण के लिए अनेक स्तरा पर राष्ट्रीय आन्दोलन चलाया जाय और जनता के कमजोर तबको के सामाजिक आर्थिक उत्थान की जी-जान से कारवाई की जाय। जरूरी है कि यह आन्दोलन गाधीजी के सिद्धान्तो और कार्यक्रमो के मुताबिक अहिसक और शातिपूर्ण हो। ठोस परिणामो के लिए सवर्णो और हरिजनो युवको और महिलाओ—सभी का इसमें पूरा सहयोग लिया जाय। इस कठिन काम को सफल बनाने के लिए सामाजिक और शैक्षणिक सस्थाओं के अलावा केन्द्र और राज्य स्तर की सरकारी समितियो को मिशनरी भावना स क्रातिकारी भूमिका निभानी चाहिए।

२— वर्ग और जाति विहीन समाज बनाने के ख्याल से शिक्षा के सघन प्रचार प्रसार के साथ-साथ छुआछूत के खिलाफ बने मौजूदा कानूनो को सख्ती से लागू करना तथा उन्हें और भी सख्त बनाना आवश्यक है। चूंकि छुआछूत स भारतीय समाज का विघटन और उसकी एकता को खतरा पैदा होता है इसलिए हरिजनो पर हुए अत्याचारो के मामलो म आतरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) का प्रयोग भी उचित हो सकता है।

३— छुआछूत को जड स मिटाना शिक्षण-सस्थाओ की विशेष जिम्मेदारी है। स्कूल और कालजो की पाठ्य पुस्तके एसी हो जिनसे एक एसे जातिहीन समाज का वातावरण बन सके जिसमे अस्पृश्यता का नामोनिशान भी न हो। अत्यन्त महत्वपूर्ण हिन्दू-ग्रथो म तो इस बुराई का कोई उल्लेख नही है, फिर भी जिन हिन्दू-ग्रथो में छुआछूत और जातिभेद का जिक्र आता हो उनके सशोधित सस्करण भी प्रकाशित किए जाने चाहिए। छुआछूत के विरुद्ध विचार प्रसार के सभी साधनो—समाचारपत्र सिनेमा रेडियो और टेलीविजन का उपयोग किया जाय।

४— बुनियादी तौर पर छुआछूत की मनोवृत्ति की जड धार्मिक अधविश्वासो म है। कानूनी सजा का भय होते हुए भी सवर्णो के मनम य दकियानूसी विचार भरे हुए हैं। इसके लिए जन-नेताओ (केन्द्र व राज्य के मत्रियो व दूसरे निर्वाचित प्रतिनिधियो समेत) को उन धार्मिक सस्थाओ के समारोहो में भाग नही लेना चाहिए, जिन्होने साफ-साफ शब्दो में छुआछूत के खिलाफ विचार न प्रकट किए हो।

५— सच है कि स्वतत्र भारत की चुनाव प्रणाली इस प्रकार की है जिससे प्रतिनिधियो के चयन में सकीर्ण जातीयता को प्रोत्साहन मिलता है। अत

यह अत्यन्त आवश्यक है कि राजनैतिक दल प्रतिनिधियों का चयन जाति नहीं, योग्यता के आधार पर करें।

६— अतिरिक्त पड़ी जमीन का वितरण करते समय समाज के निचले वर्ग को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय, जिससे ग्रामीण इलाकों के हरिजनों की आर्थिक अवस्था उन्नत की जा सके। हाल ही में सरकार ने यह एक सर्वथा उचित निर्णय लिया है कि बीज, खाद और कृषि विकास के लिए जरूरी औजार देते समय नए आवेदन-कर्ताओं खासतौर से, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों को प्राथमिकता दी जायगी। यथासंभव, भली प्रकार उपयोग करने पर ही यह सहायता दी जाय।

जमीन के वितरण के अलावा दलित वर्ग का जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए पशुपालन, डेयरी और विकेन्द्रित कृषिपरक उद्योग शुरु करने के लिए जरूरी सुविधाएँ दी जाय।

७— गाँवों में हरिजनों के लिए ढंग के मकान बनाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राज्य सरकारें ग्रामीण आवास-बोर्ड की स्थापना करें, जो अनुसूचित जातियों के लिए सस्ते और पक्के मकान बनवायें। इनकी कीमत धीरे-धीरे आसान किश्तों में वसूल की जानी चाहिए। जातपाँत की दीवारें तोड़ने के लिए दूसरी जातियों के मोहल्लों में मकान बनाने को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। कानून इस बात की भी गारंटी करे कि जिन इलाकों में पहले से भूमिहीन मजदूरों को मकान मिले हुए हैं, उन्हें नहीं हटाया जाएगा।

८— ग्रामीण क्षेत्रों में हरिजनों के लिए पीने के पानी को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय। सभी कुएँ (सिवाय निजी मकानों में खुदे) सार्वजनिक उपयोग के लिए माने जाय।

९— मैला ढोनेवालों की हालत में सुधार के लिए तुरन्त कदम उठाएँ जाय। अन्य हरिजनों की अपेक्षा इनकी हालत तो बहुत ही खराब है। अन्तिम उद्देश्य भंगी-मुक्ति का है, जहाँ पाखाना साफ करने के लिए हाथ से मैला ढोने वालों की जरूरत ही न पड़े। सिर पर पाखाना ढोने के रिवाज को पूरे देश से तत्काल खतम कर देना चाहिए।

१०— यह खेद की बात है कि देश के विभिन्न राज्यों में आज भी अनेक मंदिरों में अनुसूचित जातियों का प्रवेश वर्जित है। वर्तमान कानून की कमजोरियों का फायदा उठाकर जिन लोगों ने 'निजी मन्दिर' बना रखे हैं, उन्हें 'सार्वजनिक' घोषित किया जाय।

११— नौकरी और शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश के मामले में केन्द्रीय राज्य की सरकारों ने अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित कर रखे हैं। इन सुविधाओं को अधिक उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि अलग से हरिजनों के प्रशिक्षण और अध्यापन के लिए विशेष कक्षाएँ चलाई जाय। इससे उनकी शिक्षा का स्तर भी दूसरे विद्यार्थियों के बराबर हो सकेगा।

सरकारी नौकरियों मे यदि किसी समय आवश्यकता के अनुरूप हरिजन प्रत्याशी नहीं मिल पा रहे हो, तो भी उनके लिए निश्चित सुरक्षित स्थानों को भरा न जाय। ऐसे रिक्त स्थानों के लिए पास के राज्यों से अनुसूचित जाति के प्रत्याशियों को चुना जा सकता है।

राज्य व केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारें आम छात्रावासो में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के प्रवेश को बढावा दे। इसके लिए आवश्यक आर्थिक मदद भी की जाय।

१२— अनुसूचित जातियों के सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक जीवन को तीव्र गति देने के लिए यह निहायत जरूरी है कि जागरूक मंत्री और सरकारी विभाग हरिजनों के कल्याण के लिए अलग से उचित अनुपात में एक कोष की स्थापना करें। *योजना और बजट बनाते समय इस कोष की स्थापना* पर उचित ध्यान दिया जाय।

विचार गोष्ठी गाधी स्मारक निधि के अध्यक्ष से निवेदन करती है कि वे छुआछूत को मिटाने के लिए देश की विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं को एकजुट करने में पहल करें। वे इस गोष्ठी द्वारा तय किए कार्यक्रमो को लागू करने के लिए श्री ढेबरभाई की अध्यक्षता में एक 'संचालन समिति' भी गठित करें, ताकि अगली गाधी जयंती (२ अक्टूबर १९७६) तक कोई ठोस नतीजे हासिल किए जा सकें।

—— ० ——

हम अस्पृश्यता निवारण को व्रतों में स्थान देकर यह स्पष्ट कर रहे हैं कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का कदापि अंग नहीं है। इतना ही नहीं, वह पाप है और उसका निवारण प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है। अधिक नहीं तो प्रायश्चित्त स्वरूप प्रत्येक हिन्दू को चाहिए कि अछूत माने जाने वाले भाई-बहन को अपनावे, प्रेम से तथा सेवा भाव से उनका स्पर्श करके अपने आपको पवित्र समझे।

—गांधीजी

वजूभाई पटेल

नई तालीम का नवीन पाठ्यक्रम

(अखिल भारतीय नई तालीम समिति कार्यपरक अभ्यास-क्रम के वर्कशॉप का विवरण। ता २६ से ३१ जुलाई, १९७५ सेवाग्राम, वर्धा)

देश की बुनियादी तालीम के वर्तमान अभ्यासक्रम का पुनर्निरीक्षण करने तथा उसके सुधारार्थ सुझाव रखने के उद्देश्य से एक वर्कशॉप अ भा न त. के उपक्रम मे २६ जुलाई से ३१ तक आयोजित हुआ था। महात्मा गाधीजी से प्रतिपादित सार्वत्रिक स्वीकृत शिक्षा-सिद्धान्तो की (मदद से) शिक्षा को व्यवहारिक बनाने के लिये शिक्षा के अभ्यास-क्रम की पुनर्विचारणा अत्यन्त आवश्यक है, ऐसा महसूस हुआ था। यद्यपि शिक्षा मे जो कुछ परिवर्तन हुए है, वे लोकप्रिय होते जा रहे है, फिर भी हमारी शिक्षा किताबी और ज्ञानमूलक ही बनी रही है। बालक के विकास पर दबाव डालनेवाले पाठ्य-पुस्तक तथा विषयो के नियमो के अधिपत्य से मुक्ति दिलवाने (मुक्त करने) के लिए शिक्षा के प्रति एक नए अभिगम की आवश्यकता है। अपनी 'नई तालीम' मे गाधी जी ने जिस पर विचार किया था, उस अर्थपूर्ण अप्रगट दिशा को प्रगट करे—ऐसे वातावरण का निर्माण करने का निश्चय वर्कशॉप के प्रणेताओ ने किया है।

जूलाई २८ के दिन सुबह १–३० बजे श्री श्रीमन्नारायणके वरद हस्तो से वर्कशॉप का उद्घाटन हुआ। अ भा न ता के मत्री श्री वजूभाई पटेल ने मुख्य अतिथि, तज्ञो तथा वर्कशॉप म भाग लेनेवाले महानुभावो का स्वागत किया तथा वर्कशाप के प्रयोजन को स्पष्ट किया। उन्होने कहा कि नई तालीम समिति ने नवम्बर-दिसम्बर १९७४ मे 'अभ्यास-क्रम समिति' नियुक्त की थी। उस समिति ने जो सिफारिशें की थी, उनका निष्कर्ष यह कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम है। सेवाग्राम में नई तालीम के कार्यकर्ताओ का जो सम्मेलन हुआ था, उसकी माँग को मद्देनजर रखते हुए अभ्यास-क्रम समिति की नियुक्ति की गई थी। शिक्षा को व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी बनाने के लिये अभ्यास-क्रम कार्योन्मुख होना चाहिए, ऐसी आवश्यकता की प्रतीति हुई थी। श्री वजूभाई ने यह भी बताया कि इस वर्कशॉप का उद्देश्य कार्योन्मुख अभ्यास-क्रमकी सकल्पना को स्पष्ट तथा नए अभ्यास-क्रम के सूचित नमूनो को तैयार करने का है। उन्होने दुहराया कि यह एक प्राथमिक प्रयत्न मात्र है और एक आवश्यक कार्य, जो समय का तकाजा है, उसके प्रारम्भ में ही उसकी आवश्यकता है।

श्री श्रीमनजी ने अपने उद्घाटन वक्तव्य में वर्कशॉप के साझेदारों को उनके समर्पित कार्य के लिए प्रेरणा दी। अ भा न ता म के चेअरमेन के नाते तथा महात्मा गांधीजी एवं उनके शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टिकोण से सुपरिचित होने के कारण श्री श्रीमनजी ने देश के बुनियादी तालीम के इतिहास तथा उसकी प्रवृत्ति की बारीक छानबीन की। इस सन्दर्भ में उन्होंने भाग लेने वालों को नये अभ्यास क्रम को कार्योन्मुख तथा एकदम व्यावहारिक बनाने का सूचन किया। उन्होंने यह प्रसंगोचित प्रश्न उपस्थित किया कि इस तैयार किए गए अभ्यास क्रम के ग्राहक कौन होंगे ? उन्होंने चाहा कि वर्कशॉप में भाग लेने वाले, स्कूल के प्रथम १० वर्ष के अभ्यास क्रम का कार्य पूरा करने के बाद, दूसरे स्तर के लिए भी अभ्यास-क्रम तैयार कर। उन्होंने यह भी कहा कि देश की अन्य शालाओं के लिए, जो प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करें ऐसी शालाओं को स्वायत्तता देनी चाहिए।

इस बैठक म कु मार्जोरी साइक्स, श्री के एम आचालु तथा श्री एस सी चौधरी तथा अन्य महानुभावों ने बहुत-से उपयोगी सुझाव दिए। वर्कशॉप का मुख्य कार्य कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम की संकल्पना की स्पष्ट व्याख्या करने की जिम्मेवारी अदा करने का था। यह कार्य Buss Session में हुआ। जिन विशिष्टताओं पर बाद में चर्चा हुई तथा जिनकी स्पष्टता की गई, ऐसे अधिकांश लक्षण चर्चा विचारणा तथा स्पष्टता के बाद ६७ विधानों की एक सूची में दृष्टिगोचर हुए। आगे जाकर उन सब को निम्नलिखित २२ मुद्दों में समाविष्ट कर दिया गया।

कार्योन्मुख अभ्यास क्रम के लक्षण

कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम आवश्यकताजन्य (व्यक्तिगत तथा समाजगत) अग्रद्रष्टा, उत्पादक तथा लचीला (जड कदापि नहीं) है। वह व्यक्तिगत विभिन्नता का अनुसरण करता है।

विज्ञान तथा चिन्तन जैसी विभिन्न विषयमूलक नियामकता की सीमा को पार करते हुए, आंतर विद्या शाखा अभिगम को बढ़ावा देता है।

वह अपनी संस्कृति की समझ तथा गुणग्राहकता को बढ़ाता है। वह व्यक्ति के शारीरिक तथा बौद्धिक, वैयक्तिक तथा सामाजिक विकास में संवादिता तथा समन्वय लाता है।

कार्योन्मुख अभ्यास क्रम ऐसा प्रयत्न करता है, जिससे अध्ययन, कार्य तथा जीवन—तीनों का समन्वय हो तथा आत्मनिर्देशित अध्ययन का अवसर मिले।

तात्पर्य यह कि व्यक्ति अपनी खुद की आवश्यकता, शक्ति, कमजोरी, रस तथा रुचि आदि पर आधारित प्रवृत्तिओं का आयोजन करने की तथा व्यवस्था करने की शक्ति बढ़ाए। समाज के उपलब्ध व्यक्तियों तथा स्रोतों को अध्ययन-अध्यापन

परिवेश में उपयोग में लाने का अवसर प्रदान करता है। अन्तर्निहित मूल्यांकन का अवसर देता है।

कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम व्यक्ति की अभिक्रम विकसित करने में, समस्या हल करने की शक्ति, आलोचनात्मक विचारशक्ति, वास्तविकता का सामना करने की शक्ति, त्वरित निर्णयात्मक शक्ति के विकास में एवं लोकशाही के प्रति आदर, वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रतिबद्धता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता तथा सौन्दर्यपरख क्षमता के विकास में मदद करता है।

सीखने के क्षेत्र

(१) शरीर-श्रम।
(२) स्कूल में सामुदायिक जीवन।
(३) प्राकृतिक वातावरण।
(४) गृह तथा पास पड़ोस।
(५) समाज-सेवा तथा विकास-कार्यक्रम।

शरीर-श्रम (श्रमकार्य)

उत्पादक क्षमता के विकासार्थ कार्य को पसन्द किए गए कार्यक्षेत्र समाज के लिए उपयोगी होने चाहिए। कार्यक्षेत्र को ही अध्ययन का केन्द्र बनाना चाहिए। कार्य के प्रकार इन चार क्षेत्रों में विभाजित होंगे। भोजन, वस्त्र, निवास तथा मनोरंजन। प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत क्रियाशीलन विभिन्न प्रक्रियाओं के क्रम में आदि से अन्त तक किया जाएगा। भोजन के क्षेत्र में बालक बीज बोने की क्रिया से लेकर, भोजन का उपयोग, वितरण तथा क्रय विक्रय तक की सभी प्रवृत्तियां करे—यह अपेक्षित है। वस्त्रोद्योग के अन्दर कपास के उत्पादन से लेकर, वस्त्र की बनावट तथा लोगों की रुचि के अनुसार वस्त्र परिधान करने की सभी प्रवृत्तियों का समावेश होता है। निवास-क्षेत्र में निर्माण से लेकर मकान बनाने पर्यन्त की सभी प्रक्रिया का समावेश होता है। चौथा कार्यक्षेत्र मनोरंजन का है, जिसमें मनोरंजन-प्रसाधनों को तैयार करना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए रंगभूमि की (Settings) सजावट सामग्री तैयार करना तथा उसको रंगभूमि पर स्थापित करना आदि प्रवृत्तियों को समाविष्ट किया जा सकता है। शिक्षण की सहायक सामग्री तैयार करना भी कार्य का एक अंग बन सकता है।

स्कूल में समाज जीवन

स्कूल के अन्दर सामुदायिक जीवन ऐसा होना चाहिए कि जो स्वस्थ जीवन में सहायक होनेवाले नए दृष्टिकोण को विकसित करने का प्रोत्साहन मिले। इस क्षेत्र में बच्चों का लोकतंत्रीय पद्धति के जीवन का अभ्यास होगा, वे अपने अधिकारों तथा दायित्वों के बारे में सीखेंगे तथा अपने दैनिक जीवन में उसका अमल करेंगे।

जिन केन्द्रों के चौगिर्द ये प्रवृत्तियाँ सुग्रथित की जाएगी, वे हैं—आरोग्य शास्त्र, स्वास्थ्य, प्रार्थना, सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेलकूद, कक्षा-संगठन, ग्रंथालय तथा वाचनालय की व्यवस्था आदि। बाल सभा, शांति-सेना, मध्यान्तर भोजन-समिति आदि के आयोजन का बालक के योग्य वर्तन विकास में विशेष महत्व होगा

प्राकृतिक वातावरण

इस क्षेत्र के अन्तर्गत स्कूल प्रांगण में तथा स्कूल के बाहर प्रकृति के अभ्यास की योजना का आयोजन किया जाएगा। बच्चे हवामान के आलेख का निरीक्षण करेंगे तथा उसका चार्ट रखेंगे। स्थलों के मानचित्र बनाएँगे तथा अन्य स्थलों की रूपरेखा का अध्ययन करेंगे। स्थानीय पौधों तथा वृक्षों की खोज तथा पहचान करेंगे। वे अपने आसपास के विस्तार के निरीक्षण द्वारा पक्षी मछली तथा जंतुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

गृह तथा पास पड़ोस

इसका उद्देश्य है बालक की वृद्धि तथा विकास को त्वरित बनाने के लिए घर का बहुत ही असरकारक साधन के रूप में उपयोग करना। तरुणों के शिक्षण में घर तथा पास-पड़ोस की भूमिका का स्वीकार पूरक अनुयोगात्मक और सुदृढ़ीकर्ता के रूप में होना चाहिए। आरोग्य-शास्त्र स्वास्थ्य तथा व्यवहार विषयक अच्छी आदतों के सुगठन में घर का स्थान कोई नहीं ले सकता। परिवार के सभ्य तथा अन्य लोगों के लिए सहयोग, समझ, आदर की भावनाओं का ख्याल जैसे जीवन के सम्बन्धों के प्रति विधायक वर्तन का विकास नई ही दिशा के प्रति अभिमुख करते हैं। बालक परिवार के सभ्यों के लिए तत्परता तथा दक्षता से काम करे—यह सीखना है। प्रसंगोपात्त शाला के सीखे गए ज्ञान का उपयोजन घर की परिस्थिति में करने का अवसर प्रदान कर के घर का उपयोग शाला के प्रसार-क्षेत्र के रूप में होना चाहिए। धर्म तथा घर के *धार्मिक व्यवहार सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में दीर्घ असर करता है।* संक्षेप में घर, बालक के मन में संस्कार का संवर्धन करता है पोषता है तथा शाला की भूमिका को असरकारक बनाने में मदद करता है।

मनुष्य अनिवार्य रूप से एक सामाजिक प्राणी है। वह कभी एकाकी नहीं रह सकता। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि बालक में मित्रता समभाव, तथा अन्य के कल्याण की चिंता करने की उत्कट इच्छा के विकास की आवश्यकता है। शाला को बालक में ऐसी भावना का विकास करना होगा, जिससे वह अपनी परिस्थिति के प्रति जाग्रत रहे। समाज के कार्य-केन्द्रों, सेवा-संस्थाओं आदि की बोधक मुलाकात का प्रबंध पर्याप्त मात्रा में किया जाय, ताकि बालक समाज तथा पड़ोस के जीवन का अपने जीवन से सम्बंधित गहरी समझ प्राप्त कर सके, तथा उसका मूल्यांकन कर सके।

समाज-सेवा तथा विकासात्मक कार्यक्रम :

सामाजिक प्रतिबद्धता के उद्देश्य सामाजिक प्रवृत्तिओं तथा समाज-सेवा में कार्यरत होने से ही प्रत्यक्ष होते हैं। बालकों को आवश्यकताजन्य विकासात्मक तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों में हिस्सा लेना चाहिए। तरुण लडकों तथा लडकियों को रास्ते, गटर, औषधीय, स्वास्थ्य-केन्द्र प्रसूति-गृह, वाचनालय, अधिक स्कूलें आदि के बाँधकाम की जिम्मेवारी को स्वीकार करना चाहिए। उन लोगों को अकाल, बाढ जैसी प्राकृतिक आफतों के समय, आपदग्रस्त विस्तारों के लोगों के लिए काम करने के हेतु तत्पर रहना चाहिए। बालकों को स्कूल के अन्दर या बाहर समाज के लिए मेले तथा समारम्भों के आयोजन में मुख्य हिस्सा लेना चाहिए। इसके बदले में समाज का यह फर्ज बन जाता है कि वह संस्था के हित का खयाल करे तथा सामाजिक एवं धार्मिक समारोहों को साथ मिल कर मनाए।

समाज-सेवा के अन्तर्गत बालक, सरकार-स्थापित सेवाएँ पानी, बिजली, तार तथा डाक, व्यापारी-संस्था, यातायात व्यवहार आदि की अगत्य पहचान करें तथा उसके उपयोग से परिचित बनें। इस प्रकार स्कूल का प्रस्तार घर तथा समाज तक होता है और समाज स्कूल के अन्दर आ जाता है।

जूथ का यह अभिप्राय था कि अभ्यास क्रम की विस्तृत योजना तैयार करने के लिए अभ्यास क्रम घटक, निम्नलिखित तीन स्तर के लिए तैयार करना चाहिए।

क्र	अभ्यासका स्तर	आयुवर्ग	कक्षा
१	प्राईमरी	६–११ वर्ष	१ — ५
२	जूनिअर हाईस्कूल	१२–१४ वर्ष	६ — ८
३.	हाईस्कूल	१५–१६ वर्ष	९ — १०

सिफारशों में एक यह थी कि स्कूल अन्तर्निहित मूल्यांकन का प्रबन्ध करे। यह भी सुझाव दिया गया था कि दृष्टिगोचर होनेवाली अध्ययन गुणात्मकता का निर्णय निम्नलिखित मानदंड के आधार पर होना चाहिए।

सतत मूल्यांकन के मानदंड

१ जीवन के सभी पहलूओं में प्राप्त कार्यदक्षता की मात्रा का दर्शन।
- (अ) पद्धतिपूर्ण आयोजन।
- (ब) कौशल्यपूर्ण अमल।
- (क) स्वरचित अहवाल – लेखित, मौखिक।
- (ड) द्वितीय स्तर में दिखाई देनेवाले सुधार को प्रथम स्तर के दरम्यान प्राप्त की गई कार्यदक्षता का लक्षण मानना चाहिए।

२ सहकारी गुणो का विकास—व्यक्तिगत तथा सामाजिक सबधो में वृद्धि।

३ स्वयस्फुरण तथा उद्योगरतता।

४ सौदर्यपरक क्षमता का विकास-मूल्याकन-पद्धति में वस्तुनिष्ठा लाई जा सके, इसलिए यह इच्छनीय होगा कि शिक्षण निम्नलिखित शीर्षको व नीचे एक टिप्पणी रखें —

१ अतिम उत्पादन की गुणवत्ता। (किसी भी प्रकार का कार्य करना)। उदाहरणार्थ—बाग काम, चित्र काम, रसोई, धुलाई इस्त्री करना व)

२ उद्योगरतता का निदर्शन।

३ प्राप्त सूक्ष्मता। (Accuracy)

४ विविध कौशल्यो में कार्यदक्षता प्राप्ति की समयावधि।

५ सहयोगी गुणोका विकास।

६ अस्खलित वाक्प्रवाहिता की प्राप्ति।

७ प्रयोग की गई शब्द-समृद्धि।

८ तत्परता का निदर्शन।

९ चाल चलन व्यवहार।

१० प्राप्त ज्ञानका नई परिस्थिति म उपयोजन करने की क्षमता।

११ आत्मविश्वास की मात्रा का विकास।

१२ मानसिक गिनती की समयावधि।

१३ विचारोकी मौलिकता।

१४ विचारो का सकलन।

१५ स्वच्छता।

१६ हिज्जे।

१७ चर्चित विषयवस्तु का ज्ञान।

१८ समझशक्ति।

१९ शीघ्र निर्णय।

२० आत्म निर्भरता।

२१ समस्या के हल करने की क्षमता की मात्रा।

२२ मानव-सम्बन्ध बढ़ाने के कौशल्य का निदर्शन।

इनमें से अधिकाश गुणो का निरीक्षण बच्चे जब लेखित, मौखिक तथा प्रायोगिक कार्य, परिस्थिति में व्यस्त हो, तभी होना चाहिए। इनमें से कुछ का मूल्याकन साथी अभिभावको तथा अपने आप द्वारा बिलकुल अनौपचारिक रूप से होना चाहिए। गुणाक तथा वर्ग नहीं देना है। उसके बदले बालक को सही दिशा के प्रति गति करने में प्रोत्साहन मिले—ऐसे वर्णनात्मक अभिप्राय के द्वारा उपचारात्मक परिवर्तन ही स्पष्ट करना होगा।

यद्यपि किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत तुलना को टालना चाहिए, फिर भी व्यक्ति के खुद की भूतकाल की सिद्धि र वर्तमान सिद्धि की तुलना की जा सकती है।

बालक को दैनंदिनी रखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। वर्ष के अन्त में एक सकलित विवरण तैयार कर सकते हैं जिसमें शाला घर तथा समाज में अपनी जिंदगी का प्रत्यक पहलू का समावेश होता हो।

विद्यार्थी से कहा जाय कि मूल्यांकन के उद्देश्य से वे अपने काय का सतत पुनर्निरीक्षण करें तथा उसका मासिक द्वैमासिक तथा त्रिमासिक विवरण प्रस्तुत करें।

वर्कशाप में कार्योन्मुख अभ्यासक्रम के नमूने तैयार करने का प्रवृत्ति हाथ पर ली गई। जो चार नमूने प्रस्तुत किए गए उन पर सूक्ष्म चर्चा हुई। उन नमूनों में से दो बाग काम पर एक कृषि पर तथा एक मिट्टी-काम पर थे। परिशिष्ट न १ म वे दर्शाए गए हैं।

पवनार मुलाकात की घटना शैक्षिक व उपरान्त उत्तेजक भी थी। श्री विनोबाजी से संकेत की भाषा में प्रश्न पूछना लिखित उत्तर प्राप्त करना—यह अनुभव आपमें एक अनुभव था। एक महानुभाव का प्रश्न था— भारत के शिक्षाविदों से आप को क्या कहना है ? उनका उत्तर था— मैंने मेरे दृष्टिबिन्दु त्रिसूत्री शिक्षा म दिए हैं। ये सूत्र है—योग उद्योग और सहयोग।

कुछ बैठकें बुनियादी तालीम के अतीत वर्तमान तथा भविष्य की चर्चा करने के लिए भी की गई थी।

इसके सम्बन्ध में श्री ज प नाईक की Elementary Education and promise to keep पुस्तक प्रस्तुत की गई तथा उस पर चर्चा की गई। सूचित कार्योन्मुख अभ्यासक्रम की शक्यता के प्रति ध्यान खींचने की दृष्टि से यह किया गया।

बीच में ही अभ्यास छोड़ देनेवालों को तथा अन्य लोगों को स्कूल म उनकी योग्यता तथा शक्ति के अनुसार प्रवेश के बारे में भी (Multiple entry) चर्चा हुई।

श्री श्रीमनजी की उपस्थिति में ही अहेवाल प्रस्तुत किया गया था। श्री श्रीमनजीने वर्कशाप की कार्यवाही की समाप्ति करते हुए Neighbourhood शाला की संकल्पना का उल्लेख किया तथा अक्टूबर १९७२ के न ता सम्मेलन ने उस संकल्पना की सिफारिश जिन शब्दों में सूचित की थी उनके प्रति अंगुलिनिर्देश किया। सिफारिश निम्नलिखित शब्दों में सूचित की गई थी। Education Commission ने Neighbourhood शाला की सकल्पना का जो सुझाव दिया है उसकी प्रामाणिकता से आजमाईश की जानी चाहिए।

परिशिष्ट–१

एक आदर्श (नमूना) — कार्यक्रम की रूपरेखा

बागवानी (माध्यमिक स्तर आयु १०–१२ वर्ष)

१ ध्यान देने योग्य पूर्व विषय

(१) यदि आपके यहाँ परिस्थिति ऐसी हो, जिसमे सबके लिये तथा नियमित रूप से वास्तविक कार्य सम्भव हो, तभी यह काय हाथ में लें।

यह देख लें कि क्या —

पूरी कक्षा को लगन के साथ काम कर सकने के लिये आप के पास पर्याप्त भूमि उपलब्ध हैं ?

आप समुचित उपकरण काफी सख्या मे प्राप्त कर पायेंगे ?

आप बाड़ (Fencing) लगा पायगे ?

अध्यापक की वास्तविक रुचि हैं और वह हाथो के साथ-साथ, उन्हें जो नहीं आता, उसकी जानकारी प्राप्त करने के लिये तैयार हैं ? (बहुत-सी शालायें इन साधनो का प्रबध केवल एक श्रेणी के लिये कर सकती हैं। कुछ प्राथमिक (आयु ६–७) की श्रेणी, एक माध्यमिक श्रेणी (आयु १०–१२) और एक उच्च (१४–१५) श्रेणी के लिये साधन जुटा सकती हैं, कुछ शालायें सभी के लिये बागवानी और कृषि के लिये प्रबध कर सकती हैं। प्रबन्ध कर सकने, का अर्थ यह नहीं हैं कि यह सब उनके पास हैं ही। ग्रामीण शालाये, जिनका स्थानीय लोगो से अच्छा सम्बन्ध हैं, स्थानीय समाज और कृषको के साधनो का उपयोग कर ले सकती हैं।)

(२) क्या छात्रों ने इस कार्यक्रम को इसलिये चुना हैं कि इसमे उनकी स्वस्फूर्त रुचि हैं अथवा अध्यापक, यह सोचकर कि यह उनके लिये लाभदायक हैं, उनके बदले मे यह चुनाव कर रहे हैं ? यदि हम मानते हैं कि छात्र केन्द्र-बिन्दु हैं, तो उनके लिये जो बागवानी में रुचि नही रखते, कौन-से वैकल्पिक कार्यक्रम रख रहे हैं ?

(३) यह भी देख लिया जाय कि पूरी श्रेणी को ५ या ६ की टोली में काम करने के लिये भरपूर भूमि उपलब्ध हैं, तो भी बाग प्रतिदिन साल भर वास्तविक और जिम्मेदारी भरा काम नही प्रदान कर सकता। अधिकाश दिन आधे घटे, कभी मिलते हैं एकदम नहीं, और प्रारम्भिक कुछ दिनो तक दो या तीन घटे। शाला की अन्य सभी गतिविधिया को इससे समन्वित करने, प्रतिदिन और प्रति सप्ताह का प्रयास अवास्तविक और अरुचिकर होगा, इस कारण भी बागवानी को छात्र-समूह (कक्षा) द्वारा हाथ मे लिये जानेवाले कई प्रकल्पो मे से एक के रूप मे सोचना चाहिये।

प्रारम्भिक नियोजन .

(१) संख्या तथा टोली

बहुत छोटे बालक व्यक्तिवादी होते हैं। उनकी बागवानी में, जो भी वह उगाना चाहे, अपने खण्ड में उगावें। इसके अतिरिक्त दूसरे तरीके भी हैं। बड़े बच्चे स्वयं के चुने प्रयोगों में रस लेते हैं, माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी (आयु १०–१२ वर्ष टीम के रूप में कार्य करना चाहते हैं। बागवानी के लिए साथ काम करने वाले ५ या ६ छात्रों की टोली प्रभावक होती है। ३० या ३५ छात्रों की कक्षा के लिए ६ इतने बड़े खण्ड होने चाहिये, जिनसे पूरे समूह को कार्य का सन्तोष प्राप्त हो सके।

(इस पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि एक अध्यापक द्वारा पढ़ाये जाने वाले ६० या ७० छात्रों के भर्ती करने का वर्तमान दबाव वास्तविक शिक्षा को, चाहे वह किसी भी विधि से दी जा रही हो, असम्भव बना देता है, क्योंकि इस स्थिति में अच्छा व्यक्तिगत सम्पर्क असम्भव सा होता है।)

रुचि संवर्धन

बागवानी सौन्दर्य-वृद्धि, आर्थिक मूल्य या चीजों को बढ़ते देखने से प्राप्त सुख के लिये किया जा सकता है। ये सभी उत्तेजक साथ-साथ उपस्थित रह सकते हैं।

शाला के समीप के 'अनुपयुक्त' क्षेत्रका उपयोग कैसे किया जाय—इसी विषय पर वाद-विवाद, दूसरे उन्हीं की आयु के विद्यार्थियों द्वारा शाला के वातावरण सुधारने तथा धन-संग्रह के लिये की गई कृतियों की कहानी द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

नियोजन

हम फूल प्राप्त करना चाहते हैं या भाजी, या दोनों? क्या हम बाग में ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं कि एक के बाद एक बुवाई करके या सामयिक नियोजन द्वारा साल भर तक कुछ न कुछ उत्पादन प्राप्त करते रहें?

शाला की छुट्टियों के दिनों में बाग की देखरेख करने की व्यवस्था कैसे करेंगे?

(कुछ गहरे कारणों से यह महत्व पूर्ण है। पौधे जीवधारी हैं। उन्हें हमारी उपेक्षा के कारण विनष्ट होते या मरते देख हमें ठेस लगनी चाहिये।) क्या हम ऐसी रोप लगाना चाहते हैं, जो एक से अधिक साल तक सुख दे सके? दीर्घजीवी पौधे या वृक्ष? यदि ऐसा है, तो हमें दूसरों से परामर्श करके यह चुनाव करना चाहिये कि उन्हें कहां लगाया जाय, जिससे आगे चलकर बाग का नुकसान न हो।

१ कार्य की प्रथमावस्था —

क्षेत्ररचना, मापन, क्षेत्र-रक्षण

(१) क्षेत्रवरण :— किस दिशा से प्राप्त होनेवाला सूर्य प्रकाश सर्वोत्तम हैं? पूर्व की ओर से खुला हुआ होना यो सर्वोत्तम होना हैं।

(२) क्यारियाँ और रास्ते पर चलते या खडे रहने वाले छात्रो के लिये क्यारियाँ बहुत अधिक चौडी न हों। छात्रो को उन्हें पदाक्रान्त न करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। जिस क्यारी के एक ओर ही रास्ता हो, उसे ऐसी क्यारी की अपेक्षा, जिसके दोनो ओर से रास्ता हो, कम चौडा हो, छात्रा द्वारा उनके अनुभव के आधार पर किया जा सकता हैं।

(३) क्षेत्र-रक्षण— चहार दीवारी होने पर भी शत्रुओं से आवश्यक आरक्षण मिलना निश्चित नही। उस क्षेत्रविशेष में लगाई जाने वाली वाड के विभिन्न प्रकारों का निरीक्षण होना चाहिये और स्थानीय वागवानों से परामर्श लेना चाहिये। जल्दी बढने वाली झाडियाँ और बाढ लाभकर हैं। बाढ लगाने की चर्चा के समय विद्यार्थियो से अन्य आवश्यकताओं और लागत का लेखा-जोखा होना चाहिये। इस व्यापार में लागत और उत्पादन का मूल्य ज्ञात होना चाहिये।

गुडाई और खेत की तैयारी —

(१) गुडाई क्यो? कितनी गहरी? यह मिट्टी के प्रकार पर निर्भर हैं। 'हल्की' और 'भारी' मिट्टी—दोनो की अत्यावस्था में सम्हाल कठिन हैं। दोनो का पोत और 'स्तर' जैविक खाद कम्पोस्ट द्वारा सुधारा जा सकता हैं।

(२) कम्पोस्ट निर्माण —

भारतीय शालाओं के साथ के प्रथम कुछ सप्ताह कम्पोस्ट बनाने के लिये आदर्श परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं।

क—१४ दिनो में बनने वाला त्वरित कम्पोस्ट, जो तुरन्त प्रयुक्त हो।

ख—साल भर के लिये प्रयुक्त होने वाला आयोजन धीमे बनने वाले घूरे (कम्पोस्ट बनाने के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक कार्य, शाला की स्वच्छता और स्वास्थ्य-विज्ञान से मिलाजुला, सम्बन्धित कार्य।)

कम्पोस्ट की वनस्पतियाँ और विषाणु बैक्टीरिया—दोनो को हमारी ही भाँति हवा, पानी, भोजन की आवश्यकता हैं।

पहली बुवाई

विभिन्न प्रकार के बीजो को अलग-अलग ढग से देखभाल की आवश्यकता होती हैं।

क— कुछ बीज (जैसे फलियाँ) आवश्यक दूरी के अन्तर से, जिसमें उन्हें यथेष्ठ स्थान मिल जाय, साधारण रूप में बो दिये जाते हैं।

ख— कुछ को पहले बोया जाता हैं, फिर बाद में रोप लगाई जाती हैं।

(रोप लगाना इस अवस्था के हाथो के लिये अच्छा प्रशिक्षण है। इस आयु में वे जीवधारियो के प्रति सौम्य और सतर्क व्यवहार करना सीख सकते हैं)

ग— कुछ को स्थायी क्यारियो मे छिडक दिया जाता है और बाद में उनकी निराई की जाती है। (जैसे गाजर) बुवाई के बाद उनके उगने तक के समय मे अंकुरण की विभिन्न स्थितियो के निरीक्षण का अच्छा सुयोग होता है। काँच के जार में भीगे सोख्ते पर रखे बीजो द्वारा यह सम्भव है। विभिन्न प्रकार के (एक दलीय और द्विदलीय) बीजो का तिथि युक्त सचित्र अंकन द्वारा भी निरीक्षण हो सकेगा।

पौधो के बढ़ने की अवधि में किये जानेवाले काम

(१) खर-पतवार की निराई—क्या? कैसे? कम्पोस्ट के लिए खर-पतवार का उपयोग। खर-पतवार क्या है? उपयोगी और भोज्य जगली पौधे।

(२) व्याधिजतु — कौन-से भुनगे, कीट, पक्षी इत्यादि वास्तव में हानिकारक है? क्यो? उनका नियमन कैसे किया जाय? मक्खियो, मधुमक्खियों, केंचुए, भुनगे और पक्षियो की बाग और कृषि में उपयोगिता, जीवन के विभिन्न प्रकार—एक साथ रहते और एक दूसरे की सहायता करते है —'प्राकृतिक सतुलन'। जब सतुलन खो जाय, तो क्या करना?

(३) व्याधियाँ — सामान्यत जब मनुष्य स्वस्थ होते हैं और उन्हें अच्छा पोषण मिलता है, तो बीमार नही होते। पौधे भी हमारी ही भाँति हैं। रोगी पौधे बहुधा अपूर्ण—पोषित पौधे होते है। रोग का पता लगने पर उनकी चिकित्सा कैसे की जाय?

(४) विशेषोपचार —

क— बेलो को सहारे की आवश्यकता होती है।

ख— चक्कर खाने वाले पौधों का निरीक्षण किया जा सकता है कि वे किस प्रकार मुडते है? घडी की सुइयो की भाँति या उनके विपरीत?

ग— अच्छी फसल के लिये कुछ पौधो के सहारे की आवश्यकता होती है (जैसे टमाटर)

घ— कुछ को पानी के विशेष निकास की आवश्यकता होती है।

च— कुछ को (मूल वाली फसले) पाषाण रहित गहरी नरम भूमि की आवश्यकता होती है।

फसल चुनना और काटना—

फूल — यदि विगलित पुष्पों को सावधानी से अलग कर दिया जाय, तो बहुत-से पौधे लम्बे समय तक फूल देते रहते हैं। पुष्प चयन और उनको फूलदान और पुष्पगुच्छ में सजाने का प्रशिक्षण।

फल —कच्चा या पक्का कर खाने के लिये कब तोड़े जाय ?

बीज —भविष्य में उपयोग के लिये बीजों को कैसे सुरक्षित रखा जाय ?

फसल का मापन और मूल्यांकन :—

फूलों की संख्या, गुण और प्रकार—भाजियों के स्तर और भार, फलेदार फल

मूल (कन्द)

सफाई और दूसरी फसल की तैयारी—

वनस्पति विसर्जन का कम्पोस्ट के लिये उपयोग अच्छे नियोजन का परीक्षण। जब पहली फसल कट गई, तो आगे कुछ करने की आपने तैयारी की है क्या? बदलती फसल से सम्बन्धित सामान्य विचार—एक ही जमीन में उसी फसल को बारम्बार न उगायें।—

सामान्य—

जब एक माह का काम समाप्त हो जाय, तो बागवानी का सूचना-पत्रक बनाइये। यह भीतिचित्र के रूप में कक्षा के चतुर्दिक सामूहिक सहयोग से बनाया जा सकता है।

प्राप्त ज्ञान और दक्षतायें—

अ— भाषा — शब्द भण्डार की क्षेत्र-वृद्धि, लेखन और संभाषण द्वारा पौधों, उनकी विशेष जातियों, उनके विभिन्न अवयवों, कीटकों की विशेष जातियों और उनके अंगों, जड़ों, प्रक्रियाओं के नामों के प्रयोग द्वारा शब्द भंडार का उचित उपयोग करना।

लेखा रखना, बागवानी की दैनंदिनी, और अभिलेख रखना। कार्य का सामयिक लिखित मूल्यांकन करना।

आ— गणित — विशेष प्रकार के पौधे लगाने और क्यारियाँ बनाने के द्वारा व्यावहारिक मापन और गणना ३, ४, ५ के प्रमाण में, समकोण बनाने के लिये, रस्सी का उपयोग। नियमित और अनियमित आकृति, बाग का भिन्न भिन्न आकार चित्रण, मूल्यांकन और गणना। क्षेत्रविशेष के उपयोग के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के बीजों की संख्या तथा भार निकालना।

इ— प्रकृति अध्ययन — सामान्य विज्ञान।

मौसम और मौसम रेखा तापमान, वर्षा धूप, विभिन्न पौधों के वृद्धि की गति निरीक्षण और मापन।

पौधा, फूलों की रचना का विश्लेषण और निरीक्षण, जिसका सम्बन्ध बाग के पौधों और उन्हीं की जाति के वन्य पौधों से हो।

ई— हस्तकौशल्य — पूर्वोक्त से सम्बन्धित वनस्पति-शास्त्र के चित्र बनाना तथा चार्ट बनाना वर्षा और तापमान के आलेख, रोप लगाने, निराने, छँटनी करने, वध लगाने जैसी नाजुक क्रियाओं के समय वनस्पतिक पदार्थों के प्रति व्यवहार में दक्षता तथा सुनिश्चितता प्राप्त करना।

उ— सांस्कृतिक विकास —

साहित्य— बागों की कहानियाँ ऋतुओं की कवितायें।

(पौराणिक पारम्परिक और आधुनिक)

कहावतें और लोकोक्तियाँ— बागवानी और ऋतु सम्बन्धी, बुवाई और कटाई से सम्बन्धित पारम्परिक गीत और नृत्य, पुस्तकालय का उपयोग—तथ्य-संग्रह तथा प्रश्नों के उत्तर के लिये शिल्प-कविता करना, गीत लिखना।

मिट्टी का काम

सृजनात्मक कार्य के रूप में मनुष्य द्वारा प्रयुक्त होने वाले प्राचीनतम कार्यों में से मिट्टी का काम भी एक है। यह पाषाण-युग से भी प्राचीन है। स्वयंपूर्ण समाज का कुम्हार अभिन्न अंग है। इसमें कोई शक नहीं कि सिमेंट प्लास्टिक और चीनी मिट्टी की औद्योगिक विकास के साथ साथ मिट्टी के पात्रों की माँग में निरंतर कमी हुई है, तथापि मिट्टी का काम शैक्षणिक क्षमता सपन्न सृजनात्मक काम बना रहेगा।

तीन प्रकार के पदार्थ अर्थात आकारद, वलनशील और दृढ़ में से मिट्टी पहली श्रेणी की है, जो आकार देने की दृष्टि से सरलता से व्यवहृत हो सकती है। अतः प्रारम्भिक अवस्था के लिये बड़ी उपयुक्त है। इसके लिये सामान्य सरल उपकरण लगते हैं और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिये अधिक अवसर प्राप्त होता है। प्रक्रिया की दृष्टि से मिट्टी के काम का निम्नांकित वर्गीकरण सम्भव है।

हाथ काम
जमावट
कुचन कार्य
चाक से काम
प्रतिरूप बनाना
साँचे बनाना (साँचा)

उत्पादन की दृष्टि से मृत्तिका के कार्य का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है।

खिलौने
नित्य उपयोग की वस्तुएँ।
छाजन
सजावट की वस्तुएँ

मूर्तियाँ
शैक्षणिक साधन
इसमें कौशल और शैक्षणिक पाठ्यवस्तु निम्नांकित हो सकते हैं।

कौशल	संबंधित जानकारी
(१) कच्चे माल की प्राप्ति :—	मिट्टी क्या है? इसके घटक विश्लेषण द्वारा इस मिट्टी के गुण, कामयोग्य मिट्टी की पहचान, प्राप्त मिट्टी की कमी कैसे पूरी की जाय? किस स्थान से क्रय की जाय?
(२) कच्ची मिट्टी का रखाव :—	खर्च का हिसाब करना, घनफल और भार का मापन, कच्ची मिट्टी के सुरक्षित रखरखाव के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ।
(३) मिट्टी की तैयारी और इसका रखाव	मापन, घनात्मक पदार्थ, मिट्टी तैयार करने की विधि, कमी दूर करना, वांछित स्थायित्व कैसे प्राप्त किया जाय? बनाई गई मिट्टी का रखाव, मौसम, आर्द्रता।
(४) मिट्टी के प्रयोग, पत्थर ढालना, मुरमुरी बनाना, छानना, निचोड़ना, बखेरना नक्काशी मरोड़ना, छपाई, लपेटना आकृति देना, गेंडुर बनाना, पदाक्रांत करना	मिट्टी से विधिवत काम करना, औजार और उपकरण का अध्ययन, काम करते समय आवश्यक शारीरिक आसन, इच्छित परिणाम के लिये आवश्यक शक्ति-संतुलन, मूल्यांकन— हर विधि का।
(५) हस्त-व्यापार के आधार पर क्रमबद्ध की गई विधियों द्वारा वस्तुओं का सृजन, मोतीया गुरियाँ पेपरवेट, धूपदान, प्याले, शैक्षणिक साधन।	भार, ठोस आकृति, प्रक्षेप
(६) हस्त व्यापार के आधार पर क्रमबद्ध की गई जमावट, विधि द्वारा वस्तुओं का सृजन, खपरैल, तश्तरियाँ, फूलदान खिलौनों के नमूने	शिल्पा बनाने की विधियाँ और उन्हें जोड़ना, जिससे वस्तु बन जाय, घनफल घनफल की संकल्पना।
(७) गेंडुर वृत्ताकार वस्तु बनाना,	

के आकार पर क्रमबद्ध काम
प्याले, कप, गमले, घड, सुराही।

मिट्टी का काम

(८) चाक के काम — चाक के प्रकार
चाक घुमाना मिट्टी रखना — केन्द्रविमुख बल घर्षण-बल
हस्त व्यापार आकार देना — बदुक प्रवतन
तैयार माल काट कर अलग करना
कप तश्तरी घड़े, फूलदान, गमले

(९) नमूना बनाना — नमूना बनाने के औजार
फल सरल खिलौने — का अध्ययन
भूमाकृति काम

(१०) साँचे बनाना अखंड द्विखंड,
भूमाकृति, खपरैल टाइल
खिलौने, शैक्षणिक साधन

(११) पजावा लगाना — आवा और उनकी बनावट इसे कैसे बदला जाय, मिट्टी पर ऊष्मा का प्रभाव, पैकिंग क्यों पैकिंग के लिए आवश्यक शर्तें पैकिंग में प्रयुक्त द्रव्य, सफाई का हिसाब लगाना

(१२) तैयार सामान की बिक्री — खर्च निकालना (उत्पादन व्यय) लाभ ज्ञात करना बैंक-व्यवहार।

परिशिष्ट

कार्य का आयोजन

	क्रियायें	कालाशता	अनुमानित समय
१	प्रार्थना	प्रतिदिन	१५ मिनट
२	दिवस का कार्यारंभ		
२	दिवस का आयोजन	साप्ताहिक	१ घंटा
२	आरंभ और अंत में सफाई और व्यवस्था	प्रतिदिन	१५ मिनट
२	मध्य द्वितीय भोजन	प्रतिदिन	१ घंटा
२	मिति समाचारपत्र	प्रतिदिन	
२	बुलेटिन फलक लेखन	साप्ताहिक	

२ पेयजल उपलब्धि	नित्य	
३ अन्वेषण		
३ देशाटन – खत	साप्ताहिक	
कायस्थान	(आवश्यकता और	
हाट-बाजार	सुविधानुसार)	
समाजोपयोगी		
स्थान		
महत्वपूर्ण स्था		
३ सामाजिक कार्य	नित्य	॥ घंटा
और (रखरखाव दुरुस्ती)		
सेवाओं सहित उत्पादक		
कार्य का परीक्षण		
व प्रयोग		
३ वास्तविक परिस्थिति	साप्ताहिक	१ दिन
अनुभव		
४ सम्पादित ज्ञान और कौशल्य		
४ भाषा	नित्य	१ घंटा
४ गणित	नित्य	
४ विज्ञान	नित्य	
५ सौन्दर्यानुभूति का विकास	नित्य	१ घंटा
५ कला	नित्य	
५ संगीत	नित्य	
५ नाटक		
६ स्वास्थ्य	नित्य	॥ घंटा से
योगासन	नित्य	
खेल-कूद	नित्य	१ घंटा

—o o—

Report :

CONFERENCE OF HEADS OF DEPARTMENT OF EDUCATION AT SEVAGRAM

The Conference of Heads of Departments of Education of the Universities/Colleges of Education convened by Akhil Bharat Nai Talim Samiti met at Sevagram on 22, 23 and 24 October, 1975 Representatives from Gujarat, Maharashtra, Karnatak and Rajasthan attended the Conference, which was presided over by the Samiti's Chairman, Dr Shriman Narayan.

The Conference considered the guidelines of a functional curriculam for Nai Talim schools and adopted the recommendations of the Committee set up to revise the Nai Talim curriculam framed by Dr Zakir Hussain Committee in the light of changed contexts

The Conference recommended to the Departments of Education of the Universities/Colleges of Education/State Institutes of Education that the concept of functional curriculum should be taken up as part of study of curriculum development at the post-graduate level and that the curriculum of the Teacher preparation should itself be made functional

The Conference further recommended that the Nai Talim Samiti should organise an orientation camp of Teachers so that they can successfully implement the curricula in all its functional aspects Similar camps of teachers should be organised by UGC, NCERT and teacher training institutions, both at the regional and State levels

The Akhil Bharat Nai Talim Samiti at its meeting held on 24th October, 1975, approved the recommendations of the Conference and urged the State Governments that the schools be given autonomous status on the lines of the autonomous colleges on acceptable norms and conditions

---

ALL INDIA NAI TALIM SAMITI, SEVAGRAM

(Meeting on 24-10-1975)

RESOLUTION :

The Akhil Bharat Nai Talim Samiti discussed at its meeting on 27-4-75 the issues arising out of the 10+2+3 pattern and had expressed its opinion that although it welcomed 10+2+3 pattern in principle, it considered vocationalisation of Secondary education a prior condition to implementation of Higher Secondary courses The Committee has now reviewed the educational scene in the country as it exists at Secondary and Higher Secondary stages and once again reiterates its strong objection to what is being organised today in the name of educational reform in the country The Kothari Commission, while recommending 10+2+3 pattern, clearly argued for vocationalisation of Secondary education In its absence, all the students passing at the end of 10 years course are rushing to the Higher Secondary and most of them in one stream only There has been woeful lack of proper planning of courses of different duration and hence all the students passing out of Higher Secondary will once again rush to college education It was anticipated that 50 per cent of students would siphon out in different courses at the end of 10 year general education, but it has not taken place.

The Committee, after examining the whole situation, has reached the conclusion that the policy of the Central Government in not releasing funds for vocationalisation of Secondary education needs to be revised immediately and that proper planning for diversification of Higher Secondary is also urgently required The Committee earnestly hopes that both the Central and State Governments would reconsider their position in the light of the earnest plea made by this Committee and that they will plan the programmes accordingly

---

संविधान की २५ वीं जयन्ती के अवसर पर

आइए, हम चौकस रहें

अपने संविधान द्वारा हमने अपने लिये एक विशेष रास्ता ···· जीवन पद्धति ···· चुना है। यह विशेष रास्ता है संसदीय लोकतंत्र, जिसके द्वारा हम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे कुछ लोग, जो इसे पसन्द नहीं करते, इसे नुकसान पहुँचाने में जुटे हैं। वे नहीं चाहते कि इस रास्ते पर चलकर हम अपने लक्ष्य प्राप्त करें। उनकी जिन्दगी का रास्ता दूसरा है। वे विघटन, तोड़-फोड़, बेबुनियाद बदनामी और अस्थिरता पर विश्वास करते हैं।

हमें ऐसे लोगों से चौकस रहना चाहिये। तभी हम लोकतंत्र और स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेंगे।

संविधान की रक्षा कीजिये।

डीएवीपी–७४/४९०

शारदा शुगर अँड इंडस्ट्रीज लिमिटेड

पालिया, जि. खेरी (उत्तर प्रदेश)

सफेद दानेदार शक्कर निर्माता

पंजीयन कार्यालय

51 महात्मा गाधी मार्ग
बबई 400 023

टलिफोन 255721
टेलिग्राम 'श्री'
टलेक्स 011-2363

मुद्रक : शकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नई तालीम का मक़सद
शासन और अनुशासन
जीवन-केन्द्रित शिक्षा
" हिरण्मयेन पात्रेण "

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २४] दिसम्बर–जनवरी, १९७६ [अंक : ३

अध्यात्म और अहिंसा का समन्वय हो, तो सर्वोदय समाज स्थापित हो सकता है। लेकिन अगर साइंस के साथ हिंसा का गठबन्धन हो जाए, तो फिर समाज और संसार का सर्वनाश सुनिश्चित है।

इस अवसर पर आचार्य विनोबा ने 'अनुशासन-पर्व' की व्याख्या भी बहुत मार्मिक ढंग से की। उन्होंने समझाया कि शासन, सत्ता का होता है, और अनुशासन आचार्यों का। भारत में आचार्यों की परम्परा प्राचीन कालसे चली आ रही है। भगवान् राम और कृष्ण ने भी गुरुओं के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त की थी और अनुशासन का आदर्श अपने जीवन में उतारा था। केवल सत्ता और राजनीति से दुनिया की समस्याएँ सुलझ नहीं पाती है। वे कुछ समय के लिए सुलझ भी गईं, तो फिर उलझ जाती है। लेकिन अगर आचार्यों के अनुशासन में दुनिया चले, तो सच्ची शान्ति स्थापित हो सकती है। आचार्य वे होते है, जो निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष होते है तथा कभी अशान्त नही होते। यदि उनके मार्गदर्शन मे लोग चलेंगे, तो उनका भला होगा और दुनिया में शान्ति होगी।

अन्त में ऋषि विनोबा ने चेतावनी दी कि यदि शासन आचार्यों के मार्गदर्शन का विरोध करेगा, तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रश्न आएगा। लेकिन विनोबाजी को विश्वास है कि भारत का शासन कोई ऐसा काम नही करेगा, जिससे सत्याग्रह का मौका आये। इसी दृष्टि से उन्होने पवनार आश्रम में जनवरी के मध्य में आचार्यों का एक सम्मेलन भी बुलाया है, जिसमें देश की वर्तमान स्थिति पर गम्भीर चिन्तन किया जाएगा। आशा है आचार्यों के इस सम्मेलन द्वारा देश को एक नया प्रकाश प्राप्त हो सकेगा।

अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन :

गत् २४, २५ और २६ दिसम्बर को केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि की ओर से सेवाग्राम मे एक अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन आयोजित किया गया। उसमे देशभर के करीब ४०० चुने हुए कार्यकर्ताओने भाग लिया। तीन दिन की विस्तृत चर्चा के

पश्चात् सम्मेलन ने सर्वानुमति से जो 'निवेदन' स्वीकृत किया, उसको इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया गया है।

इस निवेदन में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं को सत्ता और दलगत राजनीति से अलिप्त रहना चाहिए और उनके सभी कामों में साधन-शुद्धि का पूरा ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। पूज्य विनोबाजी ने स्पष्ट कर दिया है कि साधन-शुद्धि का अर्थ है कि हमारे सभी काम सत्य, अहिंसा और संयम के आधार पर संचालित किये जाएँ। यदि किसी विशेष कार्यक्रम को चलाते हुए कुछ ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाएँ, जो पूरे प्रयत्न करने पर भी दूर न हो सकें, तो फिर गांधीजी के आदर्शों के अनुसार सत्याग्रह का तरीका अपनाया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के सत्याग्रह में वैर, क्रोध और पक्षपात का कोई स्थान नहीं रह सकता।

सेवाग्राम सम्मेलन के निवेदन में समग्र-दृष्टि और अन्त्योदय की भावना पर भी बहुत जोर दिया गया है। अगर हमारी रचनात्मक संस्थाएँ अपने ही विशिष्ट कार्यक्रमों में व्यस्त रहें और समग्र दृष्टि न रखें, तो सर्वोदय आन्दोलन अधिक गतिशील नहीं बन सकेगा। यह भी निहायत जरूरी है कि हमारे रचनात्मक कामों का मुख्य उद्देश्य गरीबी-रेखा के नीचे रह रही जनता का सामाजिक, आर्थिक व आध्यात्मिक उत्थान होना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रित हो और ग्राम-स्वराज्य द्वारा आम जनता में स्वदेशी व स्वावलम्बन की भावना जाग्रत की जाय। इस समय देश में केन्द्रीकरण की जो धारा प्रवाहित हो रही है, उसे सम्मेलन ने बड़ी चिन्ता की दृष्टि से देखा।

इस सम्मेलनमें कार्यकर्ताओं से आग्रह किया गया कि वे आनेवाले वर्ष में मद्य निषेध और अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलनों को सफल बनाने के लिए अपनी सम्मिलित शक्ति लगावें। ये दोनों कार्यक्रम 'अन्त्योदय' की दृष्टि से बहुत महत्व के हैं और उनको कामयाब बनाए बिना देश की गरीबी और पिछड़ापन हटाना नामुमकिन है।

अनुक्रम

दिसम्बर–जनवरी, '७६

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

नयी तालीम

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २४
अंक : ३

ऋषि विनोबा के मौन की समाप्ति :

एक वर्ष के मौन के बाद ऋषि विनोबा ने तारीख २५ दिसम्बर को धाम नदी के तट पर अपने आश्रम के मंच से राष्ट्र को एक विशेष सन्देश दिया। उन्होंने पंच-शक्तियों के सहयोग पर बल देते हुए कहा कि भूदान और ग्रामदान जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों को सभी के सहयोग से ही सफल बनाया जा सकता है। ये पाँच शक्तियाँ हैं—जन-शक्ति, सज्जन-शक्ति, विद्वत-शक्ति महाजन शक्ति और शासन-शक्ति। दो वर्ष पहले पवनार आश्रम में ही आयोजित ट्रस्टीशिप सम्मेलन के अवसर पर विनोबाजी ने इस पंच-शक्ति का बड़ा सुन्दर विवेचन किया था। हम आशा करते हैं कि देश में इन पाँच शक्तियों के सहकार्य का वातावरण बन सकेगा ताकि गरीबों की सेवा के सभी रचनात्मक काम तेजी से बढ़ सकें।

हम आशा करते है कि सेवाग्राम सम्मेलन का निवेदन व्यापक गाधी-परिवार की एकता के एक 'चार्टर' के रूप में माना जाएगा। देश के सभी लोग, जो साधन-शुद्धि में श्रद्धा रखते है, इस गाधी-परिवार के सदस्य है और देश की मौजूदा हालत में उनकी पारस्परिक एकता नितान्त आवश्यक है।

हमारी शिक्षा जीवन-केन्द्रित हो:

गत २७ नवम्बर को दिल्ली मे केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मडल की एक बैठक में उद्घाटन भाषण देते हुए प्रधान मंत्री श्रीमती इदिरा गांधी ने कई मार्के की बाते कही। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमारी शिक्षा सिर्फ रोजगार-मूलक नही, किन्तु जीवन-केन्द्रित होनी चाहिये। यह बुनियादी सिद्धान्त प्राथमिक से लेकर उच्चतम शिक्षा के लिये लागू होना जरूरी है। महात्मा गाधी ने भी बुनियादी शिक्षा का प्रतिपादन इसी दृष्टि से किया था। जब तक विभिन्न स्तरों की शिक्षा जीवनोपयोगी उत्पादक-श्रम द्वारा नही दी जाती, तब तक शिक्षित नवयुवको की बेकारी और निरर्थकता के मसले हल नही हो सकते।

श्रीमती इदिरा गाधी ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया कि शिक्षा-सुधार के बहुत-से काम बिना विशेष आर्थिक सहायता के किये जा सकते हैं। इस समय ईंट, पत्थर, सीमेंट और लोहेसे इमारतें बनाने में बहुत खर्च किया जाता है। उसके बजाय यदि शिक्षकों के गुण-विकास पर अधिक ध्यान दिया जाय, तो नवयुवकों के चरित्र का गठन अधिक सावधानी से किया जा सकता है। हाँ, इन शिक्षको के लिये पर्याप्त उपकरण भी सुलभ किये जाने चाहिये। विद्यार्थियों को केवल किताबी ज्ञान दिये जाने से खास लाभ नही होगा। उन्हें तो राष्ट्र की सभी समस्याओं से अवगत कराना चाहिये, ताकि वे भारत के जागरुक, क्रियाशील व उपयोगी नागरिक बन सकें।

महिला सेवा मंडल की स्वर्ण-जयंती:

हमें खुशी है कि वर्धा में महिला सेवा मंडल की स्वर्ण-जयंती का उद्घाटन १० जनवरी को पूज्य विनोबाजी ने किया। साधारणतः वे

अपने पवनार आश्रम के बाहर नहीं जाते है, क्योकि उन्होने क्षेत्र-सन्यास ले लिया है, किन्तु इस अवसर पर वे अपवाद के रुपमें महिलाश्रम के प्रागण में पधारे और छात्राओ को प्रेरणादायी मार्गदर्शन दिया। कई वर्षों से ऋषि विनोबा स्त्री-शक्ति जागरण पर बहुत भार देते रहे हैं। महिला सेवा मडल द्वारा सचालित महिलाश्रम ने इस दिशा में पिछले चार दशकों में बहुत ठोस कार्य किया है। भारत के सभी राज्यो की बहनें यहाँ प्रशिक्षित होकर अपने-अपने क्षेत्रो मे सुन्दर कार्य कर रही हैं। हमारे पडोसी मित्र राष्ट्र नेपाल की भी बहुत सी बहनें यहाँ की शिक्षा-दीक्षा का लाभ उठा चुकी हैं।

इस अवसरपर हम महिलाश्रम की सचालिका श्रीमती शान्ताबाई रानीवालों और उनकी मंत्री रमा बहन रुइया का विशेष अभिनन्दन करना चाहते हे, जिनके अथक परिश्रम के द्वारा यह शिक्षण-संस्था बहुत वर्षों से सराहनीय कार्य करती आ रही है।

वर्धा का महिलाश्रम राष्ट्रपिता महात्मा गाधी, आचार्य विनोबा और श्रद्धेय जमनालालजी बजाज की प्रेरणा से ही प्रारम्भ हुआ था तथा उन्हीके आशीर्वाद व मार्गदर्शन से वह विकसित होता रहा है। हमें पूरी उम्मीद है कि भविष्य में भी वह और भी लगन व उत्साह से राष्ट्रीय शिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य करता रहेगा।

महात्मा गांधी :

नई तालीम का मक़सद

[हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के आठवें वर्ष के प्रारम्भ में राष्ट्रपिता गाधीजी ने पटना में ता २२-४-४७ को जो विचार प्रकट किये थे, उन्हें यहाँ पुन उद्धृत किया जा रहा है। सम्पादक]

हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ने अपना आठवाँ साल शुरू किया है। सघ जिस ढग की तालीम देता है, उसे तालीम का नया तरीका कहा जाता है, क्योंकि न तो वह बाहर से लाया गया है, और न लादा गया है। यह एक ऐसा तरीका है, जिसका ज्यादातर गाँवो से बने हुए, हिन्दुस्तानी वातावरण से मेल बैठता है। मनुष्य जिस शरीर, मन और आत्मा का बना हुआ है, उनके बीच समतोल कायम करने में उसका विश्वास है। तालीम के पश्चिमी ढग से उसका कोई सम्बन्ध नही है, जो खासकर फौजी होता है और जिसमें आत्मा को दबाकर शरीर और मन की ही खास फिक्र की जाती है और उन्हें आगे बढाया जाता है। दस्तकारियो के जरिए तालीम देकर ही शरीर, मन और आत्मा का उम्दा समतोल कायम किया जा सकता है। नई तालीम की दूसरी खूबी यह है कि वह पूरी तरह अपने पैरो पर खडी होने वाली है। इसलिये वह तालीम के खर्च के वास्ते लाखो रुपयो की माँग नही करती।

नई तालीम शुरु तो ७ वर्ष की उम्र से होती है और १४ वर्ष तक दी जाती है, लेकिन सात वर्ष तक बच्चा क्या करे? असल में तो बच्चा जब माँ के पेट में होता है, तभी माँ को चाहिये कि बच्चे को तालीम देना शुरू कर दे। यह मैं निजी बात नही करता। सारी दुनिया का तजुरबा है कि बच्चा पेट में हो, तब माँ के कामो और विचारों का बच्चा होने पर बहुत असर पड़ता है। इसका मतलब

यह हुआ कि बच्चा जब पेट में हो, तब से ७ वर्ष तक माँ बच्चे को तालीम दे सकती है। उसके बाद १४ वर्ष तक बुनियादी तालीम दी जाती है। नई तालीम की तो—जो बूढ़े हो गये हैं, उनको हर मर्द, औरत और मजदूर—सबको, जरूरत है। लेकिन अगर हम सब को तालीम देना चाहें, तो उसके लिये करोड़ो रुपये यहाँ से लायें? हिन्दुस्तान बहुत गरीब मुल्क है। और अगर हम चाहे कि यहाँ के ४० करोड आदमियों में से सबको पढ़ना-लिखना सिखा दें, तो इतना इन्तजाम कहाँ से होगा? इसलिये नई तालीम का प्रचार जरूरी है, जो स्वावलम्बी है—अपना खर्च खुद चलानेवाली है।

आज तक जो तालीम दी गई, वह विदेशी थी, इसलिये विदेशी भाषा भी आ गई, क्योंकि अँग्रेज चाहते थे कि उनका काम करने के लिए आदमी मिलें और उनके राज का फैलाव बढ़े। उनको तो क्लर्क चाहिए थे। मैं उनकी जगह होता, तो मैं भी यही करता। मुझे डॉक्टर, इंजिनियर वगैरह की जरूरत होती, तो सब अँग्रेज कहाँ से मिलते? अँग्रेज बिहारवालों को अपनी बात कैसे समझाते? या मद्रास में, जहाँ की भाषा तमिल है, वे उस भाषा में तालीम कैसे देते? इसलिये उन्होंने अँग्रेजी तालीम के लिये बड़े-बड़े कॉलेज और युनि-वर्सिटियाँ खोलीं और डाक्टर, इंजिनियर बनाने लगे। लेकिन वे सब दरअसल अच्छे गुलाम बनाये जाते थे। हम आज भी उसी जमीन में हैं। सिर्फ ख्याल करने से जमाना नहीं बदलता। आज भी हमें अँग्रेजी भाषा का मोह रहता है। कांग्रेस के दफ्तरों तक में अँग्रेजी में काम होता है। मेरे पास जो नोटिसें आती हैं, वे भी अँग्रेजी में होती हैं। कुछ ऐसा सिलसिला बन गया है कि हम जल्दी अँग्रेजी से नहीं छूट सकते। इसलिये बुनियादी तालीम बनाई गई। यह जिन्दा और सच्ची तालीम है। इस में अँग्रेजी को जगह नहीं दी गई। बुनियादी तालीम पानेवाला लड़का घर जाकर खुद अपने बाप से खुशी से बताता है कि उसने क्या सीखा। लेकिन मैं अँग्रेजी स्कूल में पढ़ूँ और मेरे देहाती बाप पूछे कि क्या पढ़ा, तो मैं इंग्लैंड की और अँग्रेजों की

बातें बताऊँगा । और अगर वे कहें कि अपने घर का हाल बताओ, बिहार के बारे में बताओ, तो मैं कुछ नहीं बता सकूँगा ।

आज हमारी सालाना आमदनी ६० या ६२ रुपये है । कुछ लोगों की आमदनी ६० हजार है । इसके मानी यह हुए कि ४० करोड़ में से कितने ही भूखे रहते होंगे जिनकी कुछ भी आमदनी न होगी। ऐसी हालत में हम सब को कैसे पढ़ायें ? आज हम भिखारी बने हैं । हमारे बच्चों को घी, दूध, कपड़ा न मिले, तो कैसे काम चलेगा ? हम सच्ची तालीम लेकर अपनी आमदनी को बढ़ाना है ।

अब तालीम को स्वाश्रयी बनाना है । उसे अपने सहारे चलनेवाली बनाना है । नहीं तो आप भी स्वाश्रयी नहीं बन सकते । नई तालीम में यह खूबी मौजूद है । नई तालीम का मकसद लड़कों को गुलाम बनाना नहीं है, न नेता बनाना है । वह सब को हिन्दुस्तानी बनाती है ।

सबको खाना मिलना चाहिए । खाने के यह मानी नहीं कि सत्तू और नमक मिल जाय, बल्कि हमें खालिस घी, दूध और पहनने को कपड़ा मिलना चाहिये । आज तो यह सब सपना मालूम होता है । लेकिन यह सपना ही न होगा । नई तालीम सब को बैरिस्टर, इंजिनियर या डाक्टर नहीं बनाती । वह सब को इन्सान बनाना चाहती है और हमें इन्सान ही बनाना है ।

●

जिन्होंने अंग्रेजी पढ़ ली है, उन्हें सोचना चाहिए कि अपने बच्चों का पहनना सदाचार और अपनी भाषा सिखायें। जब वे प्रौढ़ हो जायें तब चाहें तो अंग्रेजी पढ़ सकते हैं। इसमें भी हमें सोचना होगा कि हम अंग्रेजी के जरिये क्या सीखें क्या न सीखें।

(गांधी वाणीसे)

ऋषि विनोबा :

शासन और अनुशासन

[एक वर्ष के मौन की समाप्ति पर ऋषि विनोबा का तारीख २५ दिसम्बर को दिए गए भाषण के अंश]

यहाँ पर भूदान रजत जयन्ती के निमित्त आप सब आए हुए हैं। मैंने कई दफा कहा था कि भूदान, ग्रामदान इत्यादि जो काम हैं, वह पंचशक्ति के सहयोग से होगा। यह मैंने कई दफा समझाया है। हमारी पद-यात्रा में बी डी ओ वगैरह सब लोग शामिल होते थे। तो मैंने कहा था कि बी डी ओ यानी---भूदान डेव्हलपमेण्ट ऑफिसर और एस डी ओ यानी सर्वोदय डेव्हलपमेण्ट ऑफिसर। मेरी यह व्याख्या उन लोगों ने मान्य की और बहुत श्रम किया भूदान-प्राप्ति के लिए।

आज आप सब लोगों को आनन्द हुआ है और मुझे भी आनन्द हुआ है। आपको आनन्द इसलिए हो रहा है कि मेरा मौन आज समाप्त हो रहा है और मुझे आनन्द इसलिए हो रहा है कि 'सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपाद' समाजरूपी नारायण मेरे सामने उपस्थित है। समाज नारायण का यह दर्शन मेरी पद यात्रा में मुझे कई दफा हुआ है। परन्तु इस मौन काल में ऐसा दर्शन मुझे हुआ नहीं था। वह आज हो रहा है। इसलिए मेरे हृदय में आनन्द है। जहाँ तक मौन का ताल्लुक है, मौन में जो एक शक्ति होती है, उसका स्पर्श सब को हो सकता है। वाणी में वह शक्ति नहीं है कि चैतय भावनाएँ सारी वह प्रगट करे। यह वाणी की दुर्बलता है। चिरत से वाणी दुर्बल है और क्रिया उससे और दुर्बल है। इसलिए भावना व्यक्त करने के लिए वाणी सर्वोत्तम साधन नहीं है। फिर भी मैं आज से बोलने वाला हूँ। यह नहीं कि बोलने वाला हूँ तो सतत बोलता रहूँगा।

परन्तु दिन भर में थोडा समय बोलूंगा। कब बोलूंगा और कितना बोलूंगा– यह अभी मे जाहिर नही करता। दिन भर में आधा घण्टा समाज के लिए दे सकता हूँ और आधा घण्टा ब्रह्म विद्या मन्दिर के लिए दे सकता हूँ। रोज आधा घण्टा देना ठीक रहेगा या हफ्ते में एक घण्टा या आधा घंटा देना ठीक रहेगा—वह बाद में सोचूंगा।

अभी मै बोलूंगा तो किस विषय पर बोलूंगा ? कई दफा जाहिर हो चुका है कि बाबा के मुख्य दो विचार हैं—विज्ञान और अध्यात्म,(सायन्स एंड स्पिरिच्युअेलिटी)। आप सब लोग जानते है कि इस विचार का प्रचार पण्डित नेहरू ने जहाँ-तहाँ किया और बाबा का नाम भी उसके साथ उन्होने जोड दिया। अभी का जमाना विज्ञान और अध्यात्म का है। विज्ञान और अध्यात्म के मार्गदर्शन में अगर दुनिया चलेगी, तो दुनिया में शान्ति रहेगी। ये दो मेरे बोलने के विषय।

अध्यात्म की व्याख्या क्या है ? शकराचार्य के शब्दो में, जो उन्होने आम जनता के आचरण के लिए श्लोक में कही है, वह मैं आपके सामने रखूंगा। "गेय गीता नाममहस्त्रम्"—गीता और विष्णु-सहस्त्रनाम गाया करो। अभी हमने विष्णु-सहस्त्रनाम का पाठ आपके सामने किया ही है। तो गीता और विष्णु सहस्त्रनाम आम जनता के लिए उपदेश। "ध्येय श्रीपतिरूपमजस्त्रम्" भगवान के रूप का चित्त में ध्यान करो। "नेयं सज्जनसगे चित्तम्" सज्जन सगति में चित्त को रखो और आखिर में कहा चौथा आदेश—"देय दीनजनाय च वित्त" दीनो की, दुखियो की मदद करो। दीन दुखियो को मदद करना यह अध्यात्म माना शकराचार्य ने, रामानुज वगैरह सब आचार्यों ने और साधु सतो ने। सबने यह कहा है कि दीन-दुखियो के दुख दूर करने का प्रयत्न करना—यह अध्यात्म का अग है। मेरे प्यारे भाइयो इस लिए मौन के बाद जो मेरी वाणी का उपयोग होगा, वह दीन-दुखियो के दुख निवारण के काम के लिए भी हो सकता है, क्योंकि वह भी अध्यात्म है।

महात्मा गाधी ने हमारे सामने जो कार्यक्रम रखा था, वह सारा दीन दुखियो की सेवा प्रमपूर्वक करने का काम है। इसमें संघर्ष का कोई सम्बन्ध नही रहा है। क्या क्या काम उन्होने हमको सौंपा ? आप सब लोग उनका कार्यक्रम जानते है। खादी-ग्रामोद्योग, गोरक्षा शराबबन्दी, हरिजन सेवा, गिरिजन-सेवा कुष्ट रोगियाकी सेवा ये खास कार्यक्रम, खुद भी कुष्ठ-रोगियो की सेवा की अपने हाथो से और प्राकृतिक उपचार। और भी कुछ काम उन्होन हम लोगा को दिया। वह सबका सब दीनो के दुख निवारण का काम है। इसलिए उसकी गिनती अध्यात्म में होती है। इन सब कामोमे एक काम कुष्ठ रोगियो की सेवा का उन्होने दिया। आप लोग जानत है कि यहाँ वर्धा जिले म कुष्ठ-रोगियो के लिए एक आश्रम है। फिर भी मुझ बताया गया कि वर्धा जिले के गाँव-गाँव में कुष्ठ रोग बढ़ रहा है। इसका अर्थ क्या हुआ ? हमको गाँव-गाँव जाना होगा और गाँववालो की सभा करके सबको समझाना होगा। तब यह काम पूर्ण होगा और यह हमको गाधीजी के बताए हुए सब कामो क साथ करना होगा। मेरा ख्याल है महाराष्ट्र सरकार को गांधीजी का दिया हुआ जो रचनात्मक काम है, कम-से-कम वर्धा जिले में उसको पूरा करना चाहिए। जैसा उन्होंने किया—वर्धा जिल म शराबबन्दी एकदम जाहिर कर दी वर्धा जिले क लिए। सन्ट्रल गवर्नमेन्ट ने इस कामके लिए बारह पाइन्ट का कार्यक्रम जाहिर किया। तो वह काम हमको करना है कुल भारत में। परन्तु वर्धा जिले में उन्होन जो कर दिया, बस ही कुष्ठ-रागियो के बारे में वे काम करें वर्धा जिल में। उस काम का नमूना पश किया जाए—यह मैं क्यो कह रहा हू ? इसलिए कि इस मध्य युग में जो सत्पुरुष हो गए शकरराव चव्हाण क कार्य क्षेत्र में—ज्ञानदेव, नामदेव इत्यादि-इत्यादि, वैसे ही इस जमाने में, जो प्रसिद्ध पुरुष हो गए भारत में, उनमें से कुछ यहाँ रहत थे और वह देखने क लिए सब जगहो से लोग यहाँ आत हैं, खास करके सेवाग्राम के कारण। कौन-कौन यहाँ रह चुके है ? मुख्य मुख्य नाम मैं लेता हूँ --कस्तूरबा और बापू, महादेवभाई, किशोरलालभाई, कुमारप्पा भारतन, कुमारप्पा, जे सी,

आशादेवी, आयनायकम, धर्मानन्द, कौसम्बी, जमनालालजी, जाजूजी। अब ये ऐसे पुरुष हो गए है कि इन्होने सारे भारत की सेवा की है और सारे भारत में मशहूर हुए है। तो कुष्ठ-रोग-निवारण के बारेमें और ऐसे ही जो काम बापू ने बताये है, उन सब कामो का आदर्श नमूना यहाँ पूरा किया जाय--यह मेरी खास सूचना है।

इसके आगे मै चार शब्द कहूँगा अनुशासन के बारे में और फिर समाप्त करूँगा। यह 'अनुशासन-पर्व' शब्द महाभारत का है, परन्तु इसके पहले वह उपनिषद्में आया है। प्राचीन काल में आचार्यों के पास जाकर १२ साल विद्याध्ययन करने की प्रथा थी। तो उसके विषय में जिक्र आया है, वह तैतीरेय उपनिषद् में है। यह प्राचीन काल का रिवाज था कि बारह साल गुरू के घर रहना। उसके अनुसार राम और कृष्ण भी गए थे। राम वसिष्ठ के आश्रम में और कृष्ण सादीपनी के पास गए। कब गये कृष्ण? जब सब दुनिया में वे मशहूर हो गए थे उसके बाद, क्योकि गुरु के पास जाना ही चाहिए, इसलिए गए। १२ साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहते थे, वे गृहस्थाश्रम में जाते थे और जो हमेशा के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में रहना चाहते थे, वे ब्रह्मचर्य का जीवन बिताते थे। तो आचार्य उनको १२ साल के बाद अन्तिम दिन उपदेश देते थे। १२ सालके बाद---'सत्यं वद, धर्मं चर' इत्यादि। उसके अन्त में उपनिषद् कह रहा है--"एतद् अनुशासनम्" एव उपासितव्य यह अनुशासन है। इसकी उपासना करो। तो आचार्यों का होना है अनुशासन और सत्तावालो का होता है शासन। शासन और अनुशासन में जो फरक है, वह हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मै कोशिश करूँगा थोडे में समझाने की। अगर शासन के मार्गदर्शन में दुनिया रहेगी, तो दुनियामें कभी भी समाधान रहने वाला नही है। क्या होगा शासन के मार्गदर्शन में? बंगाल देश की समस्या सुलझ गई, तय हो गया, लेकिन फिर एक बार उलझ गई। सुलझ गया, उलझ गया—यह दुनिया भर में चल रहा है। क्या होना है सत्ता के शासन में? सत्ता-प्रमुखो का कतल होना है, मर्डर होना है। किसीने देश के मुख्य मन्त्री को मार डाला--

ऐसी खबरें अकसर अखबारों में हम देखते हैं और यह सारा 'ए' से 'झेड' तक सब राष्ट्रों में चलता है। अफगानिस्तान में चलता है और झाविया में चलता है। मेरा ख्याल है तीन सौ-साढे तीन सौ राष्ट्र होंगे। उनमें क्या होता है ? उनके गुट होते हैं। एक गुट के खिलाफ दूसरे गुट का उपयोग करते हैं। कभी इस गुट को समर्थन देते हैं। इस तरह दुनिया भर में सब दूर असंतोष, मारकाट चलता है। ये बड़ी शक्तियाँ क्या करती हैं ? सब जगह थोड़ा-थोड़ा असंतोष रहे—ऐसी कोशिश करती हैं। मान लीजिए—हिन्दुस्तान में शक्ति है तो कोशिश करेंगे वे बड़े राष्ट्र कि पाकिस्तान को भी शक्ति मिल जाय। उनको उत्तम हथियार देंगे, जिससे बैलेन्स ऑफ पावर हो जाएगा, तो ऐसे बैलेन्स ऑफ पावर से दुनिया त्रस्त हो गई है। ये लोग बैलेन्स ऑफ इमबैलेन्स भी करना चाहते हैं। एक जगह कितना दुख है, उतना दुख दूसरी बाजू भी होना चाहिए, तब दुनिया में शान्ति रहेगी—ऐसा वे मानते हैं। एक बाजू जितना सुख हो, उतना दूसरी बाजू सुख हो— यह तो मामूली बात है, परन्तु एक बाजू जितनी विषमता और दुख है, उतनी विषमता और उतना दुख दूसरी बाजू भी पैदा होना चाहिए। तो इस तरह बैलेन्स ऑफ इमबैलेन्स तक वे पहुँच गये हैं। तो शासन के आदेश से चलने वाले की ऐसी स्थिति है। उसके बदले अगर आचार्यों के अनुशासन में दुनिया चलेगी, तो दुनिया में शान्ति रहेगी। आचार्य कैसे होते हैं ? बाबा ने वर्णन किया है। गुरु नानक की भाषा में—निर्भय, निष्पक्ष, जिनके मन में क्षोभ कभी नहीं होता। कभी उपवास करना, दबाव डालना—इस तरह का काम वे कभी नहीं करते। हर बात में वे शान्ति से सोचते हैं और जितना विचार सर्वसम्मत होता है, उतना लोगोंके सामने रखते हैं। तो उनके मार्गदर्शन में अगर लोग चलेंगे, तो लोगों का भला होगा और दुनिया में शान्ति रहेगी। यह अनुशासन-पर्व है। ऐसा आचार्यों का अनुशासन-पर्व दुनिया में चलेगा, तो दुनिया में शान्ति रहेगी। लेकिन दुनिया की बात छोड़ दीजिए। भारत के सम्बन्ध में ही सोचें। भारत एक बड़ा देश है। १५ भाषाओं का देश है। इसलिए भारत में

आचार्यों का अनुशासन अगर लोगों को मिलता रहे और उस अनु-शासन के मार्गदर्शन में प्रजा अगर चलेगी, तो प्रजा को सुख होगा इसमें कोई शंका नहीं। और आचार्य जो मार्गदर्शन देंगे, उसका विरोध अगर शासन करेगा, तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रश्न आएगा। लेकिन बाबा को पूरा विश्वास है कि यहाँ का शासन ऐसा कोई भी काम नहीं करेगा, जो आचार्यों के अनुशासन के खिलाफ होगा। इसलिए सत्याग्रह का मौका भारत में आनेवाला नहीं है।

इस तरह अनुशासन पर्व का अर्थ आपके सामने थोड़े में मैंने रखा। सबको प्रणाम। जय जगत्।

O

आज तक सारी दुनिया के मानवीय प्रयत्नों में पुरुषों का प्राधान्य रहा। जब तक राष्ट्रों के बीच, धर्मों के बीच और संस्कृतियों के बीच ईर्ष्या, मत्सर काम करते थे, तब तक संघर्ष झगड़ा और युद्ध की मदद ली जाती थी। झगड़े में और लड़ाइयों में पुरुषों का प्राधान्य रहे, यह स्वाभाविक था। अब भौतिक विज्ञान इतना बढ़ा है कि संघर्ष, झगड़े और युद्ध चलाये गये तो मानव जाति का नाश ही हो जायगा। अब जहाँ मतभेद है, कार्यपद्धति भिन्न है, वहाँ दोनों तरफ के अच्छे तत्वों को एकत्र लाकर, उनमें से सब कल्याणकारी समन्वय का रास्ता Synthesis का इलाज ढूंढ़ निकाले बिना चारा ही नहीं है। समन्वय की यह शुभवृत्ति स्त्री-स्वभाव में सर्वत्र है ही। जब एक लड़की शादी करती है, तब पिता के घर के संस्कार और पति के घर के संस्कार दोनों के प्रति मनमें आदर रखकर, दोनों के अच्छे तत्वों का समन्वय करने की Synthesis खूबी स्त्री-स्वभाव में ही है।

अब इसी स्वभावके बलपर समन्वय की स्थापना के लिए स्त्री जाति को मानवता का नेतृत्व करना है।

—काका कालेलकर

इंदिरा गांधी :

जीवन-केन्द्रित शिक्षा :

[नई दिल्ली में तारीख २७ ११-७५ को केन्द्रीय शिक्षा सलाह-कार मंडल की ३८ वी बैठक का उद्घाटन करते समय प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने शिक्षा को जीवन-केन्द्रित तथा प्रेरणादायी बनाने के सम्बन्ध में मननीय विचार प्रकट किये। उनके भाषण के महत्वपूर्ण अंश यहाँ दिये जा रहे हैं। —सम्पादक]

कई समाज-सुधारकों ने शिक्षा को हमारी आवश्यकताओं के अधिक अनुरूप बनाने के लिये काफी काम किया है। हमें अपनी शिक्षा पद्धति को परिपक्व बनाने के लिए पश्चिमी देशों में किये गये प्रयोगों को अपनाना चाहिए, किन्तु हमारी संस्कृति और मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर ही ऐसा किया जाना उचित होगा।

आदिवासियों की संस्कृति और जीवन-पद्धति पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये, जिससे उनमें राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से अलगाव की प्रवृत्ति मिटायी जा सके।

विद्यालयों में भवन और खेल के मैदान आदि से अधिक सुयोग्य शिक्षक और अनुशासित छात्रों पर जोर दिया जाना वांछनीय है।

वित्तीय साधनों की कमी के कारण शिक्षा की प्रगति किसी भी मूल्य पर रोकी नहीं जा सकती। धन का अभाव सभी क्षेत्रों में है। किसी भी मंत्रालय अथवा संस्था के पास अधिक धन नहीं है। अतः हम अभावों के बीच अपने लक्ष्यों के अनुसार बढ़ने की शिक्षा लेनी चाहिये और उसके लिये निरन्तर उपाय ढूंढते रहना चाहिए। धन के अभाव के कारण हमारी प्रगति कदापि नहीं रुकनी चाहिये। अनावश्यक मदों पर कटौती की काफी गुंजाइश रहती है।

विद्यालयों के लिये भव्य मकान की आवश्यकता नहीं है। विद्यार्थियों को खुले वातावरण में पढ़ाया जा सकता है। गुरुदेव टैगोर की 'विश्व भारती' इसका सुन्दर उदाहरण है। भवन की आवश्यकता

सिर्फ वर्षा से रक्षा के लिए होती है। परन्तु वर्षाऋतु देश के कई हिस्सों में लम्बी नही होती। अत पेड़ों की छाया मे, चबूतरों और दालानोंमें शिक्षा, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। प्रयोग-शालाओं और कर्मशालाओं के लिये भवन की आवश्यकता होती है, परन्तु उसके लिये भी निर्माण-कार्य स्थानीय साधनों से हो सकता है। सीमेंट व इस्पात आदि के अभाव के कारण ऐसे भवनों का निर्माण रुक नही सकता।

शिक्षकों को अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया जाना चाहिये तथा उन्हें पढ़ाने के लिये पर्याप्त उपकरण सुलभ किये जाने चाहिये।

छात्रों को केवल अक्षर अथवा अंकगणित का ज्ञान ही नही दिया जाना चाहिय, उन्हें अपने राष्ट्र और अपने क्षेत्रकी समस्याओं से भी अवगत कराया जाना चाहिये, जिससे वे जागरूक हो सकें। छात्रों को किताबी ज्ञान देने के बजाय उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने की चेष्टा की जानी चाहिये, ताकि वे जाति-पाँति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और रंग आदि के कारण भेदभाव न बरतें। भारतकी समन्वयवादी संस्कृति से छात्रों का प्रेम बना रहे— इस बात की भी चेष्टा की जानी चाहिये।

आदिवासियों और पहाड़ों में रहने वाले लोगों की राष्ट्रीय जीवन-धारा मे शामिल करने की दृष्टि से उनके बच्चों को शिक्षालयों में लाने के लिये संगठित प्रयास किया जाना चाहिये।

शिक्षा को रोजगारमूलक बनाए जाने की माँग सही है। परन्तु शिक्षा सिर्फ रोजगारमूलक नही हो सकती, उसे जीवन-केन्द्रित होना चाहिए।

पश्चिमी शिक्षा-पद्धति के प्रति बहुत अनुराग अच्छी बात नही है। इससे देश को अधिक लाभ नही होगा। पश्चिमी देशों के सिद्धान्तों को वहीं तक लागू किया जाना चाहिये, जहाँ तक वे भारत के लिये संगत है। यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि छात्रों को अपने देश की समस्याओं के बारे में अवगत नही कराया जाता। उन्हें भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई और उसके आदर्शों के प्रति अवगत कराया जाना चाहिये।

श्रीमन्नारायण :

हिरण्मयेन पात्रेण :

आजकल भारत तथा अन्य विकासशील देशो में भ्रष्टाचार इस हद तक बढ गया है कि ऋषि विनोबा विनोद में उस 'शिष्टाचार' कहने लगे है। रिश्वतखोरी, चोरबाजारी मिलावट व कर चोरी करने में व्यापारियो, उद्योगपतियो सरकारी नौकरा व सामान्य नागरिको को किसी प्रकार की हया-शर्म नही रही है। इन सामाजिक व आर्थिक कुरीतियो को राजनीतिज्ञो से भी काफी बढावा मिल रहा है क्योकि चुनावो के लिये वर्तमान कानून के अनुसार काला धन ही एकत्र किया जा सकता है। कम्पनियाँ खुले तौर पर चेक द्वारा राजनीतिक दलो को चन्दा नही दे सकती। सभी प्रान्तो में हजारो 'बोगस' फर्मो को पकडा जा रहा है, जो शासन से विभिन्न प्रकार का महँगा कच्चा माल कन्ट्रोल भाव में प्राप्त करती रही हैं और उसे काले बाजार में बेचकर बेहद मुनाफा कमाती हैं। इस मुनाफे का कुछ अश राजनीतिज्ञो के पास चला जाता है और इस तरह आर्थिक जुर्म करने वालो को समुचित कानूनी सुरक्षा प्रदान कर दी जाती है। इन दिनो शासन की ओर से कुछ सख्ती बरती जा रही है—यह अच्छा है। आशा है यह कडा रुख जारी रहेगा।

लेकिन धन के पीछे यह पागलपन क्यो? जो गरीब हैं और अपन परिवार का भरण पोषण बडी कठिनाई स कर पाते हैं, उनकी 'बेईमानी' तो कुछ हद तक समझ में भी आ सकती है, किन्तु अमीर-वर्ग का भ्रष्टाचार तो एक तरह की बीमारी ही समझना होगा। हम अनुभव से कह सकते है कि गरीबो का दिल अकसर उदार होता है। वे अपना कर्ज चुका देना पावन कर्तव्य समझते है। लेकिन भगवान की कुछ अजीब लीला है कि जो व्यक्ति जितना अधिक अमीर होता है, उसका

हृदय उतना ही तग व छोटा हो जाता है, हाँ, कुछ अपवादो को छोडकर। धनी लोग इस तरह व्यवहार करते हैं, मानो मृत्यु के बाद वे अपनी सारी धन-दौलत बटोरकर परलोक में ले जाने वाले हैं। अगर यह धन अपने बाल बच्चो के लिये जमा करना है, तो भी वह बेमाने ही है। यदि लडका सपूत है, तो उसे पिता के द्रव्य की जरूरत नही। वह स्वय पुरुषार्थ द्वारा कमाई करना पसन्द करेगा। अगर लडका कपूत है तो फिर उसके लिये कितना ही धन छोड जाइये, उसे वर्बाद करने व उडा-खाने में अधिक समय न लगेगा। दुनिया का यह आम तजुर्बा है न!

*　　　*　　　*

ईशोपनिषद के ऋषि ने विश्व पोषक प्रभो से एक मार्मिक प्रार्थना की थी —

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम
तत्त्व पूषन् अपावृण सत्यधर्माय दृष्टये।'

अर्थात सुवर्णमय ढक्कन ने सत्य का मुख ढक लिया है। जगत का पोषण करनेवाले भगवान्! मुझे सत्य के दर्शन हो सकें, इसलिये तुम यह सुनहरा ढक्कन हटाकर सारे प्रलोभन दूर करो!

यह सही है कि सत्य की खोज में स्वर्ण का लोभ बडी कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। "काचन को काष्ठवत समझो' — यह उपदेश देना तो आसान है पर उस पर अमल करना टेढी खीर है। महात्मा गाँधी ने आत्मकथा को 'सत्य की खोज की कहानी' कहा है। उसी में लिखा है कि एक बार उन्होंने लालचवश अपने किसी रिश्तेदार की बाँह के गहने मे से थोडा सोना चुरा लिया था। लेकिन दिल ने गवाही न दी और कुछ समय बाद उन्होंने अपने पिताजी को चिटठी लिखकर चोरी कबूल कर ली। पिता पुत्र के आँसुओ ने वह पाप धो डाला।

दक्षिण अफ्रीका से वापिस आते समय भी गाँधीजी के जीवन मे एक महत्वपूर्ण घटना घटी। वहाँ की जनता ने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के हेतु वापू को बहुत सी सोने चाँदी की घडियाँ व कस्तूरबा और बच्चो के लिये गहने भेंट में दिये। गाँधी जी को उस रात नींद नही आई। वे सोचते रहे कि सार्वजनिक सेवा के उपलक्ष्य में सोने की कीमती वस्तुयें

स्वीकार करना कहाँ तक उचित होगा ? अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि इन घडियों, गहनों आदि का एक पब्लिक ट्रस्ट बना दिया जाय, जिसके द्वारा समाज की सेवा जारी रहे। इसके लिये बच्चों को समझाना और उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना आसान था, लेकिन बा ने दलील दी — "इन गहनों को मैं न पहनूं, किन्तु बहुयें क्या पहनेंगी ?" गाँधीजी ने उत्तर दिया —"जब हमारे बच्चे बडी उम्र में शादी करेंगे, तब वे कमाकर अपना घर सम्हालेंगे। हम अभी से चिन्ता क्यों करें ? ' बा ने कई और दलीलें पेश की, लेकिन बापू अडिग रहे। आखिर, बा की भी रजामंदी मिल गई।

* * *

महाभारत में भी एक बडी मर्म भरी कथा है। कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त होने के बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर की राजगद्दी पर आसीन हुए और उन्होंने अश्वमेध महायज्ञ आयोजित किया। वह बडी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। बहुत-से ब्राह्मणों व दीन-दरिद्रों को मनमाना दान दिया जा रहा था। इतने में अचानक एक बडा सा नेवला यज्ञशाला के बीच कहीं से आया और राख में लोटने लगा। उसका आधा शरीर सुनहरा था। उसने राजा-महाराजाओं व विद्वान ब्राह्मणों से निडर होकर कहा —"आप लोगों ने कोई बडा यज्ञ सफल कर लिया है—ऐसा गर्व न करें। इसके पहले कुरुक्षेत्र में ही एक महान यज्ञ हो चुका है। एक गरीब ब्राह्मण ने व उसकी स्त्री, पुत्र व बहू ने अपने-अपने हिस्से का केवल एक सेर आटा भूखे अतिथि को दान दिया था। जब मैं उस भूमि पर गिरे थोडे-से आटे पर लोटा, तो मेरा आधा अंग सुनहरा हो गया। लेकिन आपके इस अश्वमेध महायज्ञ की राख में लोटकर भी मेरा बचा हुआ आधा शरीर सोने का न हो सका।"

दर असल, असली कीमत भावना व त्याग की है, सोने-चाँदी व धन की नहीं।

* * *

मुहम्मद पैगम्बर का जीवन बडा सादा व सरल था। वे अपने सुख व आराम के लिये कोई साधन न जुटाते थे। किन्तु एक दफा अपने

बहुत-से कार्यों में से किसी एक को ठीक तौर से चलाने के लिये धन की आवश्यकता पडी। उन्होने अपने शिष्यो से माँग की। कुछ ने, जो कुछ उनके पास था, उसका आधा भाग दिया और कुछ ने तीसरा। अबू बक्र ने अपना सारा धन उन्हे दे दिया। अन्त में एक गरीब स्त्री आई। उसने तीन खजूर और गहूँ की एक रोटी भेंट में दी। उसके पास बस यही था। यह देखकर कई लोग हँस पडे। पर पैगम्बर ने उन्हें अपना एक सपना सुनाया, जिसम कुछ स्वर्ग-दूत एक तराजू लाये थे। उन्होने एक पलडे मे उन सबकी भेटे रखी और दूसरे मे केवल उस गरीब स्त्री की तीन खजूर और रोटी। तराजू स्थिर रही क्योकि यह पलडा भी उतना ही भारी निकला, जितना पहला।

किसी गिरजाघर म इसी प्रकार ईसु-ख्रीस्त के डब्बे में गरीब औरत ने कवल एक पैसा डाल दिया था और मसीहा ने सबसे ज्यादा तारीफ उसी स्त्री की की थी।

* * *

इसका यह अर्थ नही कि दुनिया में धन की कोई कीमत ही नही है। हम सभी को अपन परिवार या सस्था के लिये कुछ धन सम्पत्ति जुटानी पडती है। लेकिन हम सदा याद रखना होगा कि वित्त-सग्रह केवल एक साधन है, साध्य नही। जिस कार्य क लिये जितने धन की बिलकुल जरूरत हो, उतना ही एकत्र किया जाय, आवश्यकतासे अधिक नही। गाँधीजी वर्धा व सेवाग्राम की रचनात्मक सस्थाओ के लिये सिर्फ एक साल क बजट की रकम देते थे। वे हमेशा कहते थे — "कोई भी अच्छी सस्था धन के अभाव म नही, सेवाभावी कायकर्ताओ के अभाव में बन्द होती है। यदि सस्था का कार्य अच्छा है, तो जनता उसके लिये आवश्यक राशि जरूर देती रहेगी। अगर लोग रुपया न दें, तो फिर उस सस्था को बन्द कर दना ही उचित होगा।"

हम रोजमर्रा देखते है कि जिन सस्थाओ के पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति जमा हो जाती है, वहाँ आपसी झगडे खडे हो जाते है और वह सगठन टूट जाता है। इसीलिये बापू अपरिग्रह-व्रत पर इतना जोर दत थे। यह व्रत व्यक्तियो व सस्थाओ—दोनो के लिये वाछनीय है।

अपरिग्रह का आदर्श नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टिसे तो उचित है ही, दुनियावी नजरिये से भी सही है।

*　　　*　　　*

अब जमाना आ गया है कि सार्वजनिक संस्थाओ को भी स्वावलम्बी बनाने की जरूरत है, सिर्फ सरकारी ग्रान्टो पर इन्हें संचालित करते रहना दिन-दिन कठिन हो रहा है। स्वराज्य मिलने के बाद वर्धा की कुछ रचनात्मक संस्थाओ ने बापू से पूछा था — "अब तो सरकार हमारी है, उसकी ग्रान्ट लेने में क्या हर्ज है?" गाधीजी ने गम्भीरता-पूर्वक कहा — "हाँ, अब सरकार अपनी ही है, लेकिन हमारी संस्थाओ को सरकारी धन से दूर रहना है। उन्हें स्वाश्रयी बनने की पूरी कोशिश करनी होगी।"

इस विचार को समझाते हुए उन्होने सुझाया —"संस्थाओं के पास कुछ जमीन होनी चाहिये, जिस पर महनत कर जरूरी अन्न, फल, तरकारी आदि उत्पन्न किये जांय। वस्त्र स्वावलम्बन के लिये चर्खा तो है ही। दूसरे ग्रामोद्योग भी चलाने चाहिये और शुद्ध दूध के लिये गोशाला। इस तरह हमारी संस्थायें अगर स्वावलम्वी बनेंगी, तो भविष्य में सुचारु रूप से चलेगी, शासन पर निर्भर रहेंगी तो बिखर जायेंगी।"

बापू की दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी! आज हम देख रहे हैं कि बहुत-से अच्छे संगठन सरकारी धन के बोझ से फीके और तेजहीन बन गये हैं। पंडित जवाहरलालजी ने भी एक बार हमें सावधान किया था — "सरकारी हाथ बडा भारी होता है, जिस संस्था पर रख दिया जाता है, वह चकनाचूर हो जाती है!"

हम जानते हैं कि कई शिक्षण-संस्थायें सरकारी ग्रान्टो को लेने के लिये अपने हिसाब-किताब में कितनी चालाकियाँ करने लगी हैं। बहुत-से स्कूल और कॉलिज, 'शिक्षण केन्द्र' नहीं, 'दूकानें' बन गये हैं, जहाँ शर्मनाक व्यापार चलता है। खादी, ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा सम्बंधी कई रचनात्मक संस्थायें भी सरकारी योजनाओ के चक्कर में पड गई हैं

यह तथ्य बहुत दुखद है, किन्तु उतना ही सच भी है। सोने के बरतन ने सत्य को किस बेशरमी से ढाँक रखा है!

* * *

जो बात सस्थाओ के लिये लागू है, वही व्यक्तियो के लिये भी सावधानी का विषय है। हम देखते है कि देश के अच्छे अच्छे रचनात्मक कार्यकर्ता सरकारी या सस्थाओ के वित्तीय जाल में फँस गये हैं और बेहद परेशान है। उन्हें कई प्रकार से अपमानित होना पडता है। किन्तु जो जन-सेवक अपने पैरो पर खडे है, वे सम्मानपूर्वक व शान्ति से रचनात्मक कार्य कर रहे है। राजनीति में भी यही हाल है। जिसके पास जीवन-निर्वाह का निजी प्रबन्ध नही है, वह नेताओ के सामने तरह-तरह की गर्जो के लिये हाथ पसारता रहता है। रहीम ने ठीक ही लिखा है —

आव गई, आदर गया
नैनन गया सनेह।
रहिमन ये तीनो गये
जबहि कहा– 'कछु देहु'॥

मुझे एक वरिष्ठ नेता के बारे मे बडी दुखदाई जानकारी मिली है। उन्होने अपने जीवन-काल में ही अपनी सारी सम्पत्ति पुत्रो के नाम कर दी, ताकि उनके स्वर्गवास के बाद बच्चो को किसी तरह की कठिनाई न हो। लेकिन जब वे बीमार पडे, या आर्थिक तगी महसूस हुई, तो परिवार का कोई भी व्यक्ति उनके पास न आया और न कोई मदद दी। स्वर्ण की माया कितनी बलवान व नीचे गिरानेवाली होती है! वह पिता-पुत्र व भाई-भाई के बीच आकर कितनी निर्दयता से सभी मानवीय मूल्यों का मजाक बनाती है और हँसती है।

* * *

काचन की इस माया से किस तरह छुटकारा मिले? स्पष्ट है कि यह सयम और विवेक द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इसी दृष्टि से गाधीजीने 'ट्रस्टीशिप' आदर्श का प्रतिपादन किया था। वे चाहते थे कि धनीवर्ग अपने धन का उपयोग अपने भोग-विलास के लिये नही,

वरन् जनता-जनार्दन के कल्याण के लिये करें। कुछ अमीर लोग आम के वृक्ष जैसे होते हैं, जो थके हुए यात्रियों को शीतल छाया देते हैं और मीठे फल भी, और कुछ खजूर के पेड की तरह होते हैं —

वडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर।
पक्षी को छाया नही, फल लागे अति दूर॥

श्री आदि शंकराचार्य रचित 'विवेक-चूडामणि' में ससार की स्वर्णिम माया को जीतने का एक अमोघ अस्त्र वतलाया है, और वह है 'आत्म-दर्शन'। जब तक हम इन्द्रियो को विषय-वासना के कुचक्र में जकडे रहते हैं, तब तक यह मृग-तृष्णा हमारा पीछा नही छोडती। विवेक द्वारा ही हम काचन-मोह से विरक्त होकर सत्य का शोध कर सकते हैं —

'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्येत्येवरूपो विनिश्चय ।
सोऽय नित्यानित्यवस्तुविवेक समुदाहृत ॥

गोधन गजधन बाजिधन
और रतन धन खानि।
जब आवै सन्तोष धन
सब धन धूरि समान॥

* * *

साईं इतना दीजिये
जामें कुटुम्ब समाइ।
मैं भी भूखा न रहूँ
साधु न भूखा जाइ॥

जी. रामचन्द्रन :

साक्षरता और गरीबी

[डा जी रामचन्द्रन प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैं। महात्मा गान्धी की प्रेरणा से जब 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' की स्थापना की गई थी, तब श्री जी रामचन्द्रनजी उसके एक सह मंत्री रहे थे। रचनात्मक कार्यकर्ताओं में उनका विशेष स्थान है। हाल ही में डा जाकिर हुसैन की स्मृति में जो व्याख्यान-माला दिल्ली में आयोजित की गई, उसके अन्तरगत डा जी रामचन्द्रन ने 'साक्षरता और गरीबी' विषय पर अपने मननीय विचार प्रकट किये। उनके भाषण का सार यहाँ दिया जा रहा है।]

इस युग का कोई भी ऐसा विषय नही है, जिसपर महात्मा गाधी ने गहरा चिन्तन न किया हो, अपने विचार प्रकट न किये हो, जनता का मार्गदर्शन न किया हो।

बात पुरानी है। प्रौढ शिक्षा के सम्बन्ध में 'प्रौढ-शिक्षा समिति' की एक बैठक मे गाधीजी ने अपने मौलिक विचार सामने रखे थे। कार्यकर्ताओ को उन्होने नई दृष्टि दी थी। इसके बाद उक्त कमेटी ने जो निष्कर्ष निकाले, उनको यहाँ देना उचित होगा।

१ प्रौढ शिक्षा का प्रारम्भ या अन्त साक्षरता से ही हो, यह जरूरी न होने पर भी साक्षरता उसका महत्वपूर्ण अग अवश्य है।

२ जब तक साक्षरता को जन-जीवन के सभी महत्वपूर्ण अगो को स्पर्श करने वाली सार्वत्रिक प्रौढ-शिक्षा की पार्श्वभूमि में नही रखा जायगा, जब तक साक्षरता की कोई भी योजना न तो सफल होगी और न प्रभावशाली ही।

३ करोडो भारतीयो को साक्षर बनाने का काम अपने में अतिशय विकट हिमालय जैसा प्रचण्ड कार्य है। लेकिन सतत साक्षरता बनाये रखना उससे भी अधिक कठिन है। लोगो को साक्षर बनाने का काम, उन्हें साक्षर बनाये रखने के काम से शायद थोडा सरल ही है।

सतत् साक्षरता का अर्थ है— कुछ समय के बाद साक्षरता को स्वयं-विकासमान बनाना। सतत् साक्षरता का कार्य बढ़ते हुए प्रवाह जैसा होना चाहिये।

४. निरक्षरता और गरीबी एक-दूसरे के कारण एवं कार्य हैं और इसलिये साक्षरता के किसी भी सफल कार्यक्रम के लिये जनता की गरीबी पर भी ध्यान देना होगा और उसे 'गरीबी हटाओ' की योजनाओं से सम्बद्ध करना होगा। जब तक साक्षरता का कार्यक्रम जीवन को धुरी मानकर नहीं चलेगा, तब तक वह प्रौढ़ों को अपनी तरफ स्वेच्छा से और प्रभावशाली ढंग से आकर्षित नहीं कर पायेगा।

५. करोड़ों के लिए बना ऐसा कार्यक्रम किसी एक केन्द्रीय एजेंसी के जरिये अमल में नहीं लाया जा सकता। उसके लिये विकेंद्रित संगठनों, संस्थाओं और सेवाभावी प्रतिष्ठानों का एक देश व्यापी जाल आवश्यक है। जीवन के हर क्षेत्र का सम्पूर्ण शिक्षित समुदाय ऐसे कार्यक्रम में गूँथ दिया जाना चाहिये, चाहे फिर उसके लिये कानून का सहारा ही क्यों न लेना पड़े।

६. चूंकि साक्षर होना हर नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार है, जनता की काफी बड़ी संख्या को उससे वञ्चित करना जनतन्त्र के प्रति बेवफाई है। राज्य का कर्तव्य है कि वह इस कार्यक्रम के लिये पैसों का इन्तजाम करे, आवश्यकता हो तो राष्ट्रीय कर लगा कर भी।

७. साक्षर व्यक्ति अपनी साक्षरता कैसे बनाए रखते हैं, कैसे प्राप्त ज्ञान का उपयोग गरीबी सहित अन्य समस्याओं के निराकरण में करते हैं— यही साक्षरता की सफलता की कसौटी है। ऐसा परिणाम प्राप्त हुआ है या नहीं— इसकी जाँच पड़ताल शैक्षणिक एवं लोकप्रिय एजेंसियों द्वारा प्रतिवर्ष की जानी चाहिये। यह भी जरूरी है कि सम्पूर्ण साक्षरता तक पहुँचने की समय-मर्यादा निश्चित कर दी जाय।

भारत सदियों तक गुलाम रहा। विदेशी शासन में शासकों ने इस विषय पर कभी ध्यान नहीं दिया। स्वराज्य प्राप्ति से पहले भारत में प्रौढ़ शिक्षा की दिशा में कुछ विशेष नहीं किया गया। विदेशी सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा के नाम पर कुछ नहीं किया—यह समझा जा सकता है, परन्तु

यह देखकर किसे आश्चर्य और दुख न होगा कि पिछले ३० वर्षों में भी इस क्षेत्र में कुछ विशेष नही किया गया है। आज भी ३० करोड भारतीय निरक्षर है।

प्रौढ शिक्षा के सम्बन्ध में गांधीजी के स्पष्ट विचार फिर स्मरण हो आते है। उन्होने कहा था —

"प्रौढ शिक्षा न साक्षरता के साथ प्रारम्भ होती है, न समाप्त होती है। जो लोग बडी कठिनाई से अपनी जीविका उपार्जन कर पाते हैं, उन पर साक्षरता थोपी नही जा सकती। एक भूखा और थका हुआ व्यक्ति साक्षरता में क्यो रस लेगा? वे तभी साक्षर बनने में रस लेंगे, जब प्रौढ शिक्षा उनके जीवन की समस्याओ को हल करने में सहायक हो। इसलिये प्रौढ शिक्षा को जीवन-केन्द्रित होना चाहिये। जब निरक्षर लोग समझेंगे कि साक्षर बनकर वे अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं, तब वे स्वय ही पढने लिखने की ओर दत्तचित्त होगे।" गांधीजी के इस कथन से स्पष्ट है कि साक्षरता प्रचार को जीवन केन्द्रित होना चाहिये। बच्चे उन्ही शब्दो और विषयो की जानकारी पहले प्राप्त करते हैं, जिनकी उन्हें जीवन में आवश्यकता होती है। इसलिये प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक यह है कि जीवनोपयोगी विषयो पर प्रौढो के साथ वार्तालाप किया जाय। उसके बाद उन्हें पढने लिखने के लिये प्रवृत्त किया जा सकता है। यहाँ यह दुहराने की आवश्यकता ही नही कि यदि प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उसे जीवन केन्द्रित बनाना होगा।

गांधीजी ने एक बार कहा था — "निरक्षर ही गरीब है और गरीब ही निरक्षर है।"

निरक्षरता और गरीबी में अटूट सम्बन्ध है। निरक्षर व्यक्ति अपनी गरीबी को दूर नही कर सकता और एक गरीब व्यक्ति साक्षर हो नही सकता। इसलिये यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि गरीबी हट नही सकती जब तक गरीबो को साक्षर बनाया नही जाता, और उन्हें साक्षर तभी बनाया जा सकता है जब हमारी शिक्षा जीवन-केन्द्रित बने।

भारत की जन-संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है और उसी तेजी से निरक्षर लोगों की संख्या बढ़ रही है। इसलिये प्रौढ़-शिक्षा की गंभीरता का अनुमान किया जा सकता है। इस देशमें अगर हमें इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी है, तो हमें प्रौढ़-शिक्षा को जीवन केन्द्रित बनाना ही होगा, ताकि निरक्षर लोग उसमें स्वयं रस लेने लगें।

निरक्षर लोग हरिजनों से भी गये बीते हैं। राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से ही वे वंचित नहीं है, वे सभी प्रकार के ज्ञान से भी वंचित हैं। निरक्षर लोग प्रगति और विकास के क्षेत्र के बाहर खड़े हैं। ६० करोड़ में से ३० करोड़ व्यक्तियों की यही दशा है। इसलिये अगर इस देश में समाजवाद की स्थापना करनी है, तो हमें अपने पंच-वर्षीय योजना में ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि हम जल्दी से जल्दी अन्धकार में भटकने वाली जनता को प्रकाश में ला सकें।

प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में मेरे कुछ सुझाव हैं। जिन्हें मैं देना चाहता हूँ। वे इस प्रकार हैं :—

१. साक्षरता के कार्य को हम जीवन-केन्द्रित और व्यवसाय-सम्बद्ध बनायें। इसका अर्थ है हर स्तर पर व्यापक आधार का अनौपचारिक शिक्षण।

२ हमें इस बात पर जोर देना चाहिये कि जीवन के हर क्षेत्र की प्रौढ़ महिलाओं को साक्षरता-आन्दोलन में लाने का काम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

३. शिक्षा-मंत्रालय के अन्तर्गत प्रौढ़-शिक्षा-विभाग का अलग से गठन कर उसे एक मंत्री के अधीन रखा जाय और उसके जिम्मे प्रौढ़-शिक्षा के प्रचार-प्रसार का काम दिया जाय, जिसे सात साल के भीतर उसे पूरा कर लेना है।

४. केन्द्र एवं राज्य सरकारें प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रम के लिये समुचित धन की व्यवस्था करें। आवश्यकता हो तो उसके लिये एक विशेष कर भी लगाया जाय।

५. हम एक लाख कार्यकर्ताओं को एक महीने की ट्रेनिंग दें और फिर उन्हें हर भाषा-क्षेत्र में भेज दें।

६ हर प्राथमिक स्कूल तथा हाईस्कूलो के शिक्षको का तथा उनके साधनों का हम इस काम के लिये उपयोग करे, ताकि हर विद्यालय साक्षरता-केन्द्र बन जाय। इस काम को संतोषजनक ढंग से करने वाले हर शिक्षक को प्रति माह ३० रुपये मानधन के रूप में दिये जांय।

७ शिक्षा विभागो और विश्वविद्यालयो को भी इस विशाल कार्यक्रम का मार्गदर्शन एव निरीक्षण करना चाहिये। हमारे नेताओ को भी इस सम्बन्ध में आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये।

८ हर शिक्षित सरकारी कर्मचारी को इस राष्ट्रीय आन्दोलन मे, उचित सेवा-नियम बनाकर, सलग्न किया जाना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति प्रति वर्ष १० व्यक्तियोको साक्षर बनाये—यह अनिवार्य माना जाय।

९ केन्द्रीय एव राज्य धारा-सभायें इस काम की प्रेरणा देने तथा आगे बढाने के लिये गैर-सरकारी कमेटियाँ बनायें।।

१० चूंकि इस कार्यक्रम को बहुत बडे फैलाव में एव विकेन्द्रित ढग से पूरा करना है, इसलिये देश की हर पचायत को इस में जुटाना चाहिये और उस पर यह जिम्मेवारी डाली जानी चाहिये कि उसके इलाके का हर प्रौढ व्यक्ति सात साल के दरम्यान साक्षर बना लिया जाय। हर पचायत को दो प्रशिक्षित प्रौढ शिक्षा-कार्यकर्ताओ की सेवायें मुफ्त में मुहेया की जानी चाहिये।

११ जीवन-केन्द्रित साक्षरता की कल्पना के आधार पर दस पुस्तिकाओं का सच भारत की हर भाषा में तैयार करवाया जाय। उसमें अलग अलग धन्धो से सम्बन्ध प्रौढ-गुटो का ध्यान रखा जाय।

१२ इस कार्यक्रम की पूर्ति के लिये जानकारी देने के हर माध्यम—फिल्मों एव रेडियो तथा टेलिविजन का भी उपयोग किया जाय।

१३ इस कार्यक्रम को सात साल में पूरा करना ही है, यह ध्यान में रखते हुए हर राज्य अपने क्षेत्र में किए गए तत्सम्बधी कार्य-प्रगति का तीन महीने में एक बार मूल्यांकन करे।

* * *

देवेन्द्र कुमार :

रचनात्मक कार्य : बुनियादी निष्ठायें

केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा आयोजित अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन सेवाग्राम में २४, २५ और २६ दिसम्बर को गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायणजी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। उसमें देशभर के लगभग ४०० प्रमुख कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। चर्चा में औरों के अलावा श्री आर आर दिवाकर, श्री चारुचन्द्र भंडारी, श्री अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, श्री आर के पाटील व श्री पागे आदि के विचारों का भी सम्मेलन को लाभ मिला। तारीख २६ दिसम्बर को सुबह पवनार आश्रम में पूज्य विनोबाजी का मूल्यवान मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सका।

तीन दिन की चर्चा के पश्चात् नीचे लिखा निवेदन सर्व सम्मति से स्वीकृत किया गया —

१. समग्र-दृष्टि :

रचनात्मक संस्थाओं के भिन्न भिन्न कार्य होते हुए भी उनके क्रियाकलापों में पारस्परिक समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। अतः यह जरूरी है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं में समग्रता की दृष्टि जाग्रत हो। इस प्रकार के आपसी सहकार्य से रचनात्मक संस्थाओं को बल मिलेगा और सर्वोदय आन्दोलन अधिक गतिशील बन सकेगा। सभी संस्थाओं से यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे समग्रता और समन्वय की दृष्टिसे अपने कार्यकर्ताओं को आवश्यक सुविधायें दें।

२. अन्त्योदय :

सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यों का मुख्य उद्देश्य 'अन्त्योदय' होना चाहिये। इस समय देश की कम से कम आधी जनता गरीबी रेखा के नीचे रह रही है। इन गरीब और कमजोर वर्गों के सामाजिक, आर्थिक,

नैतिक व आध्यात्मिक विकास की ओर विशेष ध्यान देना रचनात्मक सस्थाओ का कर्तव्य हो जाता है।

यह भी स्पष्ट है कि 'अन्त्योदय' को सफल बनाने के लिये विकेन्द्रित ग्राम स्वराज्य की स्थापना जरूरी है। तभी भूदान, खादी, ग्रामोद्योग, गोसेवा आदि द्वारा सभी लोगो के लिये रोजगार का प्रबन्ध किया जा सकेगा। इस समय देश में केन्द्रीकरण की जो धारा प्रवाहित हो रही है, उसे यह सम्मेलन चिन्ता की दृष्टि से देखता है।

३. मद्य-निषेध :

'अन्त्योदय' की दृष्टि से देश भर में मद्य निषेध लागू होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत सरकार की ओर से इस वर्ष गाधी-जयन्ती के अवसरपर जो बारह-सूत्री न्यूनतम कार्यक्रम जाहिर किया गया है, उसका स्वागत सारे देश में हुआ है। किन्तु उसे सम्पूर्ण शराब-बन्दी की दिशा में पहला कदम ही मानना चाहिये। सम्मेलन आशा करता है कि सभी राज्य-सरकारें पांचवी पचवर्षीय योजना के अन्त तक अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण मद्य-निषेध लागू करने की क्रमिक योजना शीघ्र ही बनायेंगी।

मद्य निषेध आन्दोलन को कामयाब बनाने के लिये व्यापक जन शिक्षण निहायत जरूरी है। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि शराब-बन्दी के नियमो का पालन शासन की ओर से कडाईसे किया जाय। सम्मेलन आशा करता है कि सभी रचनात्मक क्षेत्रो के कार्यकर्ता मद्य निषेध के आन्दोलन को मजबूत बनाने में अपनी सगठित शक्ति लगायेंगे।

४. अस्पृश्यता-निवारण :

यह गहरी चिन्ता का विषय है कि स्वराज्य मिलने के २८ वर्ष बाद भी छुआछूत की बुराई भारतीय समाज में जारी है। सविधान में अस्पृश्यता-उन्मूलन के निर्देश और केन्द्रिय व राज्यसरकारो की कल्याण-योजनाओ के बावजूद हरिजनो की सामाजिक और आर्थिक दशा सोचनीय बनी हुई है। इसलिये यह आवश्यक है कि इस सामाजिक कलक को जड से मिटाने के लिये शासन और रचनात्मक सस्थाओ की सामूहिक शक्ति लगाई जाय।

गत् अक्टूबर में केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि की ओर से आयोजित की गई 'हरिजन-समस्याओ पर विचार-गोष्ठी' की शिफारिशो का यह सम्मेलन समर्थन करता है और आशा करता है कि 'अन्त्योदय' की दृष्टि से विभिन्न रचनात्मक सस्थायें मद्य-निषेध के साथ अस्पृश्यता-निवारण को भी प्राथमिकता देंगी।

पूज्य विनोबाजी ने सुझाव दिया कि छुआछूत को मिटाने के लिये यह भी जरूरी है कि हरिजनो के बीच मासाहार त्याग का विचार फैलाया जाय।

५ बुनियादी निष्ठायें :

यह भी स्पष्ट है कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ता, सत्ता और दलगत राजनीति से अलिप्त रहें और अपने सभी काम साधन-शुद्धि के सन्दर्भ में सत्य, अहिंसा और सयम के आधार पर सचालित करें। विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमो को सफल बनाने के लिये ये बुनियादी निष्ठायें कायम रखना सब दृष्टि से वाछनीय है। यदि किसी विशेष कार्यक्रम को चलाते हुए कुछ ऐसी कठिनाइयां उपस्थित हो जायें, जो पूरे प्रयत्न करने पर भी दूर न हो सके तो फिर महात्मा गाधी के आदर्शों पर आधारित सत्याग्रह का तरीका अपनाना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु यह सत्याग्रह निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष भावनाओ से ओतप्रोत होना चाहिये।

६. विज्ञान व अध्यात्म का समन्वय :

हमें अपने सभी रचनात्मक कार्यो में विज्ञान के साथ अध्यात्म के समन्वय की दृष्टि को अपनाना होगा। केवल भौतिक विकास द्वारा समाज में शान्ति और समृद्धि कायम नही हो सकती। विज्ञान और आत्मज्ञान की सामूहिक शक्ति से ही सर्वोदय का उदय होगा।

७. स्त्री-शक्ति जागरण :

यह साल अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। भारत में भी स्त्री-शक्ति जागरण-आन्दोलन को बहनो की रचनात्मक शक्ति को प्रोत्साहन देकर मजबूत बनाना चाहिये। यह सम्मेलन आशा

करता है कि इस महत्वपूर्ण काम की तरफ सभी रचनात्मक कार्यकर्ता ध्यान देंगे।

८. आपसी प्रेम और सहयोग :

यदि किसी कार्यक्रम को लेकर सर्वानुमति की पूरी कोशिशें करने के बावजूद आपसी मतभेद हो जाय, तो भी मन-भेद या हृदय-भेद न हो और पारस्परिक सद्भावना बनी रहे। हम एक-दूसरे की नियत पर शक न करें। देश की वर्तमान परिस्थिति में साधन-शुद्धि के बुनियादी सिद्धान्त को मानने वाले व्यापक गांधी-परिवार की एकता मजबूत बनाये रखना सब दृष्टि से अनिवार्य है। सम्मेलन की श्रद्धा है कि इस समय के आपसी मतभेद शीघ्र दूर होंगे और पूज्य विनोबाजी के मार्गदर्शन में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का भाईचारा सुदृढ बनेगा।

* * *

"मैं तुम्हें एक ताबीज देता हूँ। जब कभी तुम संशय में हो या तुम्हारा अहम् बहुत बढ जाय, तो यह उपाय करो--उस गरीब-से-गरीब बेहद दीन व्यक्ति के चेहरे को याद करो, जिसे तुमने कभी देखा हो और अपने आप से पूछो कि जो कदम तुम उठाना चाहते हो, उससे उसे कोई लाभ पहुँचेगा ? क्या उससे वह कुछ पा सकेगा ? क्या उससे उसे अपने जीवन और भाग्य पर नियंत्रण करने में सहायता मिलेगी ? दूसरे शब्दों में क्या उससे पेट और आत्मा की भूख से व्याकुल हमारे लाखों देशवासियों को स्वराज्य अथवा आत्मानुशासन प्राप्त होगा ? और तब तुम देखोगे, तुम्हारा संशय दूर हो गया है और अहम् मिट गया है।"

—गांधी

श्री पद्मजा बंग :

साक्षरता-शिक्षण का एक क्रांतिकारी प्रयोग

[पाओलो फेयरे की शिक्षण-पद्धति से सम्बधित विभिन्न पेपर्स पर आधारित अनुवाद और सकलन।]

स्वतत्रता प्राप्ति से पहले जिस स्वराज्य, सुराज अथवा राम-राज्य का स्वप्न देखा था, वह पूरा नही हुआ। शासन तत्र बदला, परन्तु शासन-पद्धति में कोई विशेष अन्तर नही आया। परम्परागत नौकरशाही पूर्ववत काम कर रही है। जनता आज भी लगभग उसी स्थान पर है, जहाँ पहले थी। परिस्थितियोमे परिवर्तन लानेकी शक्ति उसमें नही रही। जनता में यह शक्ति पैदा करनी होगी। इस तरह के सही लोक-शिक्षण से ही समाज के मानवीकरण की शुरुआत हो सकती है। "सा विद्या या विमुक्तये"— विद्या वही है, जो मुक्त करती है— उपनिषद् का यह वाक्य भी तभी सिद्ध हो सकता है।

आज हमारे देश मे लोकशिक्षण के लिय साक्षरता-अभियान बहुत जोर से चल रहा है। इन अभियानो के उद्देश्य के बारे में लोगो के मन में अलग-अलग विचार हैं। जैसे कि समाज का सांस्कृतिक स्तर उठाना, नागरिक अपनी भूमिका सफलतापूर्वक अदा कर सके इसके लिये उन्हें तैयार करना, समाज का ढांचा मूल्य और कार्य को ध्यान में रखते हुए अच्छे नागरिक को बनाना आदि।

प्रचलित शिक्षण पद्धतियो से बगावत :

इस सन्दर्भ में हम जरा भारत की तरह अविकसित दक्षिणी अमरीका की तरफ नजर दौडायें, जहाँ साक्षरता-शिक्षण एक विवादस्पद मामला बना है। हमेशा से उत्तरी अमरीका और योरप के शिक्षण-शास्त्र और पद्धतियों का अनुकरण करने वाले इन राष्ट्रो ने साक्षरता-शिक्षण के क्षेत्र मे एक नवीनतम क्रातिकारी पद्धति अपनायी है, जिसे 'चेतना-जागरण' का नाम उन्होने दिया। प्रसिद्ध ब्राजिलियन शिक्षा-शास्त्री पौलो फेयरे इस विचारधारा के जन्मदाता, प्रवर्तक और मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं।

पौलो फ्रेयरे १९६४ तक ब्राजील के रेसीफ विश्वविद्यालय में शिक्षण क दर्शन शास्त्र और इतिहास के प्राचार्य थे। १९४७ से लेकर ही वे ब्राजील के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के निम्नवर्गीय निरक्षर ग्रामीण लोगो के बीच प्रौढ-साक्षरता का काम करन लगे। शिक्षा-शास्त्री होने के नाते प्रौढ शिक्षण की प्रचलित पद्धतियो के बारे में वे जानकारी रखते ही थे। लेकिन खासकर तीन कारणो से उन्हे प्रौढ-शिक्षा की प्रचलित पद्धतियो से सतोष नही हुआ।

(१) बाल-शिक्षा के ही साधनो का इस्तेमाल प्रौढो के लिए भी किया जाता था।

(२) पाठ्य-पुस्तको की भाषा और सदर्भ शहरी मध्यमवर्ग के जीवन से सम्बधित थे। इसलिए निम्नवर्गीय ग्रामीण लोगो की समस्याओ और रुचियो के साथ उन किताबो का कोई तालमेल नही था।

(३) शिक्षक और शिक्षार्थी के आपसी सम्बध और प्रचलित पद्धतियो का विद्यार्थियो पर हो रहा मनोवैज्ञानिक असर—इनके बार में फ्रेयरे के मन में जडमूल से उद्विग्नता रही। सस्कृति, साक्षरता का परिणाम माना जाता था। और, अपने 'अज्ञानी' विद्यार्थी को यह 'सस्कृति' प्रदान करते हुए उसके अन्दर पहले से मौजूद हीन भावना और पराधीनता को पोषण करना ही शिक्षको का काम था। शिक्षण भी समाज में प्रचलित वर्ग-सम्बधो की एक अभिव्यक्ति और प्रकटीकरण बनकर रह गया।

फ्रेयर के लिए चिंता की एक और बात थी। वे सोचने लगे — इन निरक्षर लोगो को मै पढना और लिखना किसलिए सिखा रहा हूँ? क्या इसलिए कि प्रचलित ऊँच नीच के भेदभावो स ग्रस्त स्तरीय और अमानवीय समाज के मूल्यो को वे स्वीकार करें और उसी चौखट में अपनी भूमिका अदा कर सकें? उनकी बुद्धि और भावना ने इस बात को अस्वीकार किया।

नये विचार के लिए तीन प्रेरणा-स्रोत :

इसके बाद पाठ्य-पुस्तको को एक बाजू में रखकर फ्रेयरे ने अन्य तीन स्रोतो से विचार ग्रहण करना और उन पर चिंतन करना शुरू किया।

(१) निरक्षर लोगो की भाषा, सस्कृति और समस्याएँ।

(२) मानव प्रकृति, संस्कृति और इतिहास के दर्शन-शास्त्र।

(३) दूसरे विश्व-युद्ध के उपरान्त दक्षिणी अमरीका की अविकसित स्थिति का विश्लेषण।

पराधीनता, पिछडापन और जडता के पुराने युग को पीछे छोडकर राष्ट्रीय स्वायत्तता, औद्योगीकरण और गतिशीलता की तरफ ब्राजील राष्ट्र बढ रहा था। प्रजातत्र जन सहभागिता, स्वतत्रता,स्वामित्व सत्ता आदि विषयो के नये अर्थ प्रकट हो रहे थे। इस सक्रमण काल में शिक्षण का काम बहुत महत्वपूर्ण था। बुद्धि सगत, लोकतान्त्रिक और विवेचनात्मक तरीके से राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य मे जो भाग ले सकें, ऐसे एक जनसमुदाय को गढना अपना वर्तव्य फ्रेयर ने मान लिया।

फ्रेयरे का अध्ययन, चिंतन, ब्राजील के विकास की समस्याओ और जन-जीवन क साथ उनका निरतर जीवत सम्पर्क, सालो तक चलते रहे। १९६० और १९६३ के बीच फ्रेयरे को अपना रास्ता सामने साफ दिखाई पडने लगा।

चेतना-जागरण पद्धति .

परिस्थिति के बारे मे निरक्षर आदमी का दुनियादी परिप्रेक्ष्य दुखवाद और दैववाद चला आ रहा था। प्रौढ-शिक्षा की परम्परागत पद्धतियो में शिक्षार्थी का अपना कोई जीवत अस्तित्व नही था। वह केवल एक वस्तु माना गया था, जिसके 'अन्दर' वरिष्ठ लोग 'ज्ञान' को उँडेल दिया करते थे। लेकिन फ्रेयरे के लिए विद्यार्थी एक वस्तु नही, बल्कि एक व्यक्ति था, जिसका वर्तव्य दुनिया मे काम करना और उसे बदलना था। अपने परिवेश को गढने की शक्ति अपने ही अन्दर निहित है—यह जागृति उस निरक्षर के मन म पैदा करनी होगी। इस काम के लिये योग्य साधन भी उसे प्राप्त करने होगे।

इसलिए, प्रौढ-शिक्षा के लिए 'चेतना-जागरण' की जो पद्धति फ्रेयरे ने अपनायी, उसके तीन प्रधान उद्देश्य रहे —

(१) समाज का शोषण मूलक ढाँचा ,गलत मूल्य, वर्ग-भेद, वर्ग-सघर्ष आदि कुरीतियों के बारे मे साधारण जनता के मन में जागृति पैदा करना और वास्तविकता का भान उन्हे करवाना।

(२) इन सब समस्याओं या विवेचनात्मक विश्लेषण करन की शक्ति 'क्यो', 'कैसे' आदि सवाल पूछने की हिम्मत और किस समस्याको प्राथमिकता देनी चाहिए–इस बात की समझ उनमे पैदा करना।

(३) अपनी नयी जागृति और विचारधाराओं को सामाजिक परिवर्तन हेतु क्रियान्वित करने की तैयारी और ताकत भी इन प्रौढो में लाना। हर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की और प्रतिकार करने की तैयारी उनमे आवे।

ये सब बातें तभी होंगी, जब विद्यार्थी अपने जीवन की समस्याओं और परिस्थिति के बारे में आपस मे चर्चा और विचार-विनिमय करेंगे। इन चर्चाओं मे केवल सयोजन का काम शिक्षक करेंगे। शिक्षक भी शिक्षार्थी के प्रति आदर का भाव रखें और दोनों एक दूसरे के साथ कंधे से कधा मिलाकर किसी समस्या के हल की खोज करने निकलें। उन दोनो के बीच की दूरी कम से कम हो।

पाठ्य-पुस्तकों के बदले शब्द-संग्रह :

फ्रेयरे का विचार था, इस तरह की चर्चाओं को छेडने की प्रेरणा देनेके लिए, उन्हे सुगम बनाने के लिऍ और लोगो की विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक चेतना जगानेके लिए एक न्यूनतम शब्दावली बनायी जा सकती है। उनकी शिक्षा-पद्धति 'पौलो फ्रेयरे पद्धति' या 'मनो-वैज्ञानिक-सामाजिक पद्धति' के नाम से आज प्रचलित है। इसमे तीन विभिन्न अवस्थाये है —

(१) एक सर्वसामान्य न्यूनतम शब्दावली और चिंतन-मनन के लायक समस्याओ के मसले तैयार करने के लिए अनपढ लोगो के जीवन का नजदीक से अध्ययन करना, पहली अवस्था है।

शिक्षकों का एक समूह अनौपचारिक वार्तालाप के द्वारा एक विशेष समुदाय के विचार, समस्याएँ और आकांक्षाएँ ढूंढ निकालकर अध्ययन करने में लगते हैं। राष्ट्रीय समस्याएँ भी इनमे सम्मिलित की जा सकती है, लेकिन शिक्षार्थियो के व्यक्तिगत और क्षेत्रीय समस्याओं के साथ जोड़कर ही उनका प्रस्तुतीकरण होना चाहिए।

ब्राजील के शहरी और ग्रामीण निरक्षरो के लिए अलग अलग शब्दावलियाँ फ्रेरे ने बनायी। ब्राजील छोडकर चिली चले जाने के बाद उन्होने फिर नये सिरे से वहाँ के लिए शब्दावली बनाना शुरू किया।

(२) दूसरी अवस्था में इस शब्द सग्रह में से कुछ ऐसे शब्दो का चयन करते है, जो क्षेत्रीय अनपढ लोगो के जीवन से सब से ज्यादा सम्बधित है और जो उनकी अभिव्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करते है। यह शब्द-चयन तीन कसौटियो पर निर्भर है।

(क) भाषा की सभी बुनियादी ध्वनियो को सम्मिलित कर सकें—ऐसे शब्द हो।

(ख) ललित अक्षरो और शब्दो से शुरुआत करके कठिन अक्षरों और शब्दो की तरफ जा सके—ऐसा क्रम है। कठिनाइयो को क्रमबद्ध करने से नवसाक्षर लोग उन्हे जल्दी पार कर सकेगे, जिससे उन्हें आतरिक संतोष और आत्मविश्वास मिलता रहेगा। साथ-साथ, पढने-लिखने में उनकी रुचियाँ भी बढेंगी।

(ग) सामाजिक सास्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियो का मुकाबला करने में अन्तर्निहित सामर्थ्य जिनमे है, ऐसे मानसिक और भावनात्मक प्रेरणादायी शब्द चुने जायें।

उदाहरण के लिए 'घर' शब्द साधारण दैनदिन पारिवारिक जीवन से ही केवल सम्बधित नही बल्कि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर आवास की समस्याओं के साथ भी सम्बन्ध रखता है। 'काम' शब्द मानव का अस्तित्व उसके आर्थिक कार्यभार, सहयोग की भावना, बेरोजगारी आदि कई मसलो की तरफ चर्चा को ले जा सकता है।

इस तरह का शब्द-सग्रह बनाने की क्या जरूरत है? लगातार नये शब्द और वाक्य जो प्रदान कर सकती है, ऐसी कोई प्रवेशिका का इस्तेमाल नही कर सकते? फ्रेरे का विचार है, कोई भी प्रवेशिका पर्याप्त रूप से उपयोगी नही हो सकती। इन प्रारम्भिकाओ को तैयार करने वाले लोग अपने मनपसद विषयो को प्राथमिकता देते है और अपनी समझ के अनुसार विषयो की सुसगति या असगति का निर्णय करते है। इस तरह पहले से तैयार विषयवस्तु विद्यार्थियो पर थोपी जाती है।

पाठ्यक्रम तैयार करने में उनका कोई हिस्सा नहीं रहता। बल्कि, फ्रेयरे की पद्धति में तो शब्दावलियाँ विद्यार्थी अपने मन से बढ़ा सकते हैं। केवल मात्राओं की हेरफेर से नये शब्द और वाक्य बनते हैं। यह विद्यार्थियों की सृजन-शक्ति और मौलिकता बढ़ाती है। इन कारणों से बनी-बनाई किताबों का फ्रेयरे ने पूर्ण रूप से निष्कासन किया।

परिचित शब्दों के अपरिचित और नये आयाम :

(३) तीसरी अवस्था में, दो तरह के शिक्षण साधनों के निर्माण की बात आती है। शब्दों के ध्यानपूर्वक विश्लेषण के लिये उन्हें अलग हिस्सों में बाँटने वाले कुछ फ्लैश कार्ड या स्लाइड—यह पहला साधन है। दर्शन के माध्यम से शब्दों की प्रतिकृति विद्यार्थियों की कल्पना में आ सके और शब्दों के संदर्भ में ज्यादा सोच-विचार करने के लिए उन्हें प्रेरणा दे सके, इसके लिए सचित्र पत्रक का इस्तेमाल करते हैं।

स्पष्टीकरण के लिए हम एक उदाहरण लें :—

हमें 'घर' शब्द नवसाक्षरों के सामने प्रस्तुत करना है। इस शब्द के साथ ही एक निम्नवर्गीय परिवार और उनकी छोटी-सी कुटिया का चित्र भी लोगों के सामने रखा जाता है। इस शब्द और तस्वीर पर चर्चा-वर्ग आधारित है। शब्द को बार-बार दोहराना, उसे पहचानना, उसका अलग-अलग अक्षरों में विभाजन करना (शब्दाक्षर-पद्धति), इन अक्षरों से नये शब्द बनाना आदि दृश्य-श्राव्य शैलियाँ इस्तमाल की जाती हैं। चर्चा का संयोजक 'घर' शब्द के विविध पहलू समूह के सामने प्रस्तुत करता है और उनको अपने विचारों के मंथन में और लेन-देन में मार्गदर्शन करता है। पारिवारिक जीवन के लिए सुविधाजनक घर की आवश्यकता, राष्ट्र की आवासीय समस्याएँ, लोगों को घर की उपलब्धि की शक्यताएँ, विभिन्न देशों के निवास-स्थानों की तुलनात्मक विशेषताएँ नगरीकरण से संबंधित आवासीय समस्याएँ आदि कई विषयवस्तु चर्चा-समूह के सामने रखी जाती हैं। सभी लोगों के पास घर है क्या? नहीं है, तो उसका क्या कारण है? बचत और उधार की योजना और व्यवस्था से सब लोग निवास-स्थान प्राप्त कर सकते हैं क्या?—आदि विचारोत्तेजक

और प्रेरक सवाल रोजमर्रा की बातों की ओर आलोचनात्मक मनोवृत्ति अपनाने के लिए सहायक होते हैं।

शिक्षण : खुद को पहचानने की एक प्रक्रिया

इन सब सवालो के तयार जवाब नही है। लेकिन, विचारो की सामूहिक लेन देन से विद्यार्थियो की सोचने समझने की, विश्लेपण करने की और अभिव्यक्ति की शक्ति बढ़ती है। विद्यार्थी खुद को पहचानने लगते हैं। उन्हें रोज नये-नये अनुभव का आविष्कार होता है। ज्ञान का अभाव सापेक्ष होता है निरपेक्ष अज्ञान नही रहता नही है और हर व्यक्ति मे ज्ञान और सृजन शक्ति छिपी है—इसका अहसास उन्हें होने लगता है।

सब जन एक समान ज्ञान और सस्कृति पर सबका समान हक, अपनी परिस्थितियो की आलोचना करने और उन्हें बदलने का हर एक का हक— इन मूल्यो पर 'चेतना-जागरण' का निर्माण और विकास हुआ है।

शिक्षक भी विद्यार्थी है :

इस पद्धति में सबसे महत्वपूर्ण भाग सयोजक को अदा करना है।

(१) वह कभी स्वय शिक्षा 'देता' नही है बल्कि अन्य सहभागियो को खुद को पहचानने और खुद ही ज्ञान को खोजने मे हमेशा 'मदद' करता है।

(२) वह कम-से-कम बोलता है। केवल चर्चा को वाछनीय, दिशा में आगे बढाने के हेतु इशारा करता रहता है।

एक क्रान्तिकारी प्रयोग का आकस्मिक अवसान

इस पद्धति से कोई भी निरक्षर व्यक्ति छ हफ्ते के अन्दर पढना और लिखना अच्छी तरह सीख सकेगा, ऐसा फ्रेयरे का अनुभव है। १९६३ में ब्राजील सरकार ने पौलो फ्रेयर पद्धति अपनाकर साक्षरता-शिक्षण का काम बडी तादाद में शुरू किया। आठ माह के अन्दर हर प्रात में प्रशिक्षको का प्रशिक्षण चलाया गया। सबसे ज्यादा उत्साह

इस कार्यक्रम में विद्यार्थियों में था। योजना यह थी कि १९६४ तक बीस हजार 'सांस्कृतिक वर्तुल' तैयार हो, जो तीन माह के अन्दर बीस लाख लोगों का प्रशिक्षण कर सकेंगे। इस तरह पाँच साल के अन्दर ही **ब्राजील के चार करोड़ निरक्षर लोगों को साक्षर बनाने की पूरी योजना बनाई गई थी।**

लेकिन, १९६४ में वहाँ आकस्मिक शासन परिवर्तन हुआ। प्रजातंत्र शासन की जगह सैनिक शासन आ गया। उच्च और मध्यम वर्ग के लोगों के मन में यह आशंका पैदा हो गई थी कि फ्रेयरे पद्धति उनके निहित स्वार्थों के लिए खतरनाक साबित हो रही है और अपनी सारी सुविधाएँ जल्दी ही अपने हाथों से छीन ली जायेंगी। सर्वहारा-वर्ग की तरफ समाज की अभिमुखता व सहन नहीं कर सके। इसलिए, वे लोग भी नये सैनिक-शासन का समर्थन करने लगे। ब्राजील से निष्कासित होने से पहले कुछ समय फ्रेयरे को जेल में भी काटना पड़ा। तदुपरांत वे चिली चले गये और वहाँ उन्होंने अपने शिक्षण-प्रयोग आरंभ किये। तबसे ब्राजील में साक्षरता शिक्षण तो चालू है, लेकिन उसमें 'चेतना जागरण' का काम नहीं हो रहा है।

'चेतना जागरण' और अन्त्योदय — दो नहीं, एक

शिक्षित और अशिक्षित लोगों के बीच का वर्ग भेद हटाने के लिए और उत्पादक और उपभोक्ता समाजों के बीच की खाई हटाने के लिये बापू ने आज से चालीस साल पहले ग्रामाभिमुख शिक्षा, बुनियादी तालीम और सर्वोदय की कल्पना हमारे सामने रखी थी। दशकों के बाद भारत से हजारों मील दूर के एक अविकसित देश में चल रहे इन क्रांतिकारी शिक्षण प्रयोगों का भी लक्ष्य और पद्धति यही है—एक अहिंसक स्वावलम्बी समतामूलक ग्राम-समाज की रचना।

* * *

रिपोर्ट :

'शिक्षा सलाहकार मंडल' के सुझाव

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मडल' की नई दिल्ली में तारीख २७-११-७५ को ३८ वी बैठक में शिक्षा के विभिन्न पहलुओ पर गम्भीर चर्चा हुई। शिक्षा को किस प्रकार जीवनोन्मुख बनाया जाय, किस प्रकार उसके व्यापक कार्य के लिए आवश्यक धन प्राप्त किया जाय—आदि बातो पर शिक्षा शास्त्रियो ने अपने स्पष्ट विचार प्रकट किये। एक प्रस्ताव के द्वारा मडल न केन्द्रीय और राज्य सरकारो से आग्रह किया कि वे ऐसी योजनायें बनायें और उसके लिये धन की व्यवस्था करें, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में वांछित उद्देश्य को शीघ्र पूरा किया जा सके।

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मडल' ने इस सम्बध में जो सुझाव दिये हैं, वे इस प्रकार हैं —

१. अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम बडे पैमाने पर विकसित किया जाय। ऐसे विद्यार्थियो की सूची तैयार की जाय, जो शाला में न जाते हो। अपव्यय को कम किया जाय।

२ केवल भर्ती और वह भी विशेषत पहली कक्षा में भर्ती किये जाने पर बल दिया जाना छोड दिया जाय।

३ मध्यान्ह के भोजन के कार्यक्रम तथा अन्य अप्रेरक कार्यक्रमो पर बल दिया जाय एव उन्हें स्वदेशीय उपायो या साधनो द्वारा बढावा दिया जाय।

४ पूरे समय के शिक्षको की नियुक्ति पर जोर न दिया जाय। इसके स्थान पर बहुत बडी सख्या म अल्पकालीन शिक्षको के द्वारा

अनौपचारिक तथा अल्पकालीन शिक्षा के कार्यक्रमको आगे बढाया जाय। इसके लिये स्थानीय बुद्धि-जीवियो का सहयोग प्राप्त किया जाय।

५ जहाँ आवश्यक हो, वहाँ प्रथम और द्वितीय श्रेणी की कक्षाओं में दो पारियो की व्यवस्था को अपनाया जाय।

६ इस कार्यक्रम को सर्वोच्च महत्व का राष्ट्रीय कार्यक्रम माना जाय और उसके लिए आवश्यक आर्थिक व्यवस्था करने को वरीयता दी जाय।

७ इस कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि जनता के उत्साह को किस सीमा तक गतिमान किया जा सका है। यह इस पर भी निर्भर करेगा कि इसे किस तरह जन आन्दोलन के रूप में चलाया गया है।

प्राथमिक शाला के शिक्षको की इस नई प्रणाली में कहाँ तक पहुँच है तथा प्रशासनिक तन्त्र इसे चलाने में कितना सक्षम है—कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये यह दोनो बातें आवश्यक होगी।

विशेषत यह भी आवश्यक होगा कि प्रत्येक शाला की विस्तृत योजना तैयार की जाय। यह योजना क्षेत्रीय, तालूका तथा जिला स्तर पर तैयार की जाय और उसकी वार्षिक प्रगति पर दृष्टि रखी जाय।

* * *

कमलनयन बजाज स्मृति

अन्तर-विश्वविद्यालयीन परिसम्वाद, वर्धा

शिक्षा मडल के तत्वावधान मे आयोजित द्वितीय कमलनयन बजाज स्मृति परिसम्वादमें 'शिक्षा में गाधीवादी मूल्य' विषय पर ४ और ५ जनवरी, १९७६ को डा श्रीमन्नारायण, अध्यक्ष, शिक्षा मडल वर्धा के सभापतित्व में विचार विमर्श हुआ। भारत के विभिन्न राज्यो के ६५ विश्वविद्यालयों से आए हुए छात्र प्रतिनिधियो ने इस परिसवाद में भाग लिया। प्रतिनिधियो ने हिन्दी और अंग्रजी—दोनो भाषाओ में अपने उच्च तर्कयुक्त एव भावनात्मक विचार उपयुक्त शैली में व्यक्त किये।

परिसम्वाद के अन्त में सर्वसम्मति से निम्न निर्णय लिए गये —

१ यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति स्वतंत्र भारत की वास्तविक आवश्यकताओ और उचित आकाक्षाओ को पूर्ण करने म पूरी तरह विफल रही है। इस शिक्षा-पद्धति ने विद्यार्थियों को अपने देश में ही विदेशी बना दिया है। अत गाधीवादी मूल्यो के मुताबिक इस शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन करना जरूरी है।

२ राष्ट्रपिता द्वारा सुझाई गई बुनियादी शिक्षा जन्म से मृत्यु तक चलने वाले जीवन के लिये और जीवन द्वारा प्रक्रिया थी। इसका उद्देश्य युवा पीढी के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास था, जिसमें शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक सभी मूल्या का समावेश था। नैतिक मूल्यो की शिक्षा, सर्व-धर्म समभाव, श्रम प्रतिष्ठा और सहकारी जीवनयापन–इस शिक्षा-नीति के मूलभूत सिद्धान्त थे। ऋषि विनोबा ने इन्हीं तत्वो को योग, उद्योग और सहयोग की सज्ञा दी है। इस शिक्षा-पद्धति को इसके शुद्ध रूप म सम्पूर्ण देश म और सभी स्तरों पर अमल में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

३ बुनियादी शिक्षा का अर्थ क्वल कताई और बुनाई के द्वारा शिक्षा देना नही है। महात्मा गाधी ने यह बात पूर्णरूपेण साफ कर दी थी कि शिक्षा का सम्बध उस क्षेत्र की सभी विकासशील क्रियाओ से होना चाहिये, ताकि विद्यार्थी उपयुक्त नागरिक बनने के लिये व्यवहारिक शिक्षण पा सक और बाबूगिरी के पदा के पीछे न दौडे। ऐसी शिक्षा युवको म स्वावलम्बन, आत्मविश्वास एव स्वदशी की भावना को बढ़ायगी। ऐसी बुनियादी शिक्षा किताबी एव परीक्षाप्रधान न होकर जीवन-केन्द्रित एव विकासोन्मुख होगी।

४ अब समय आ गया है जब कि शिक्षित वर्ग एव अशिक्षित जनता के बीच की खाई को उत्पादक शारीरिक श्रम, शोषण-रहित समाज एव लोक-सेवा से ओतप्रोत सामाजिक जिम्मेदारी पर आधारित इस बुनियादी शिक्षा के द्वारा पाटा जा सकता है।

५ सभी स्तरो पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा होना चाहिये। राष्ट्रभाषा हिन्दी और अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा भी अध्ययन के उचित स्तरो पर अच्छे ढग से सिखाई जानी चाहिये।

६ 'करते हुए सीखना' पर आधारित शिक्षा में गाधीवादी मूल्यो को शहरी एव देहाती सपूर्ण क्षेत्रो मे लागू करना चाहिये। गाँवो की जनता को यह न लगे कि उनके बच्चो को कोई घटिया ढग की शिक्षा दी जा रही है।

७ स्त्री शिक्षा की, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो में, बहुत आवश्यकता है। स्त्रियो को डिग्रियो की शिक्षा के बजाय व्यावहारिक गृह-विज्ञान व गृह-उद्योगो का प्रशिक्षण अधिक उपयोगी होगा।

८ यद्यपि वर्तमान विज्ञान एव तकनीकी शिक्षा पर उचित ध्यान देना चाहिये, तथापि नवीन शिक्षा पद्धति द्वारा भारतीय सस्कृति एव परम्परा के प्रति आदर के वातावरण का निर्माण होना जरूरी है। दूसरो शब्दो में, इस पद्धति में वर्तमान और अतीत, मानव अनुभव और उपलब्धियो के वर्तमान और प्राचीन काल के परिणामो का सम्यक् सयोग होना चाहिय।

९ वर्तमान परीक्षा-पद्धति की जगह वर्ग और वर्ग के अन्दर और बाहर किये गये विद्यार्थी के अध्ययन एव कार्य के दैनिक परीक्षण-पद्धति को अमल मे लाना चाहिय। गुण देने की पद्धति की जगह केवल क्रम-निर्धारण की पद्धति लाने से कोई फायदा नही होगा। जायज या नाजायज किसी भी ढग से पदवी प्राप्त करने का पागलपन भूतकाल की चीज हो जानी चाहिये।

१० यह साफ जाहिर है कि गाधीवादी मूल्यो के समन्वय के बिना १०-२-३ की नवीन शिक्षा-पद्धति को क्रियान्वित करना निरर्थकता की एव महँगी कसरत होगी।

११ राजनीतिक दल अपने सकीर्ण स्वार्थो की सिद्धि के लिये शैक्षणिक सस्थाओ का शोषण न करें। जैसा कि महात्मा गाधी ने कई

वार दोहराया था, विद्यार्थी अन्वेषक बनें, राजनीतिज्ञ नहीं। शिक्षकों को भी दलगत राजनीति से दूर रहना चाहिये।

१२ अन्त में, शिक्षा का मूल उद्देश्य अनुशासन ईमानदारी, कार्यदक्षता एवं देश भक्ति के साथ विद्यार्थियों का चरित्र-निर्माण है। यह जीवन का चिर सत्य है कि उच्च उद्देश्यों की पूर्ति केवल शुद्ध साधनों से ही हो सकती है। सत्य एवं अहिंसा पर इसी दृष्टि से गांधीजी ने इतना बल दिया था।

१३. किसी भी शिक्षा-पद्धति में शिक्षकों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। अतः शिक्षकों के अन्तर्निहित गुणों का अच्छे ढंग से विकास होना चाहिये। शिक्षा-संस्थाओं में व्याप्त वर्तमान भ्रष्टाचार को कड़ाई से खत्म करना निहायत जरूरी है।

१४ शिक्षा में गांधी-मूल्यों को बढ़ावा देने के लिये भारत में मद्य निषेध सर्वत्र समान रूप से अमल में लाना नितान्त आवश्यक है और चित्र-पटों से यौन और हिंसा के दृश्यों को बिलकुल निकाल देना चाहिये।

१५ विद्यार्थियों और उनके माता पिताओं को देश की शिक्षा-पद्धति की पुनर्रचना में सक्रिय भाग लेना चाहिये।

१६ राष्ट्रीय संयोजन में शिक्षा सुधार योजनाओं को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिये क्योंकि मानव में निवेश (इनवेस्टमेंट) भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं में निवेश की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

* * *

सेवाग्राम आश्रम

राष्ट्रपिता गान्धीजी जहाँ-जहाँ रहे, भारतीयों के लिये वह स्थान पुण्य तीर्थ बन गया है। सेवाग्राम उन्ही में से एक है। मगनवाड़ी वर्धा शहर के पक्के मकान को छोड कर बापू गाँव में निवास करने के लिये यहाँ आ गये थे। प्रारम्भ में एक मकान बना था, जिसे 'आदि निवास' कहते हैं। जब आगतो की सख्या बढ गई, तब मीरा बहन ने अपनी कुटी बापू को रहने को दे दी और आप दूसरे स्थानपर चली गई। इसी कुटी मे बापू वर्षो तक रहे। यही कुटी अब 'बापू-कुटी' के नाम से प्रसिद्ध है। पूज्य बा और आगत अन्य बहनों की सुविधा के लिये एक छोटी-सी कुटी बना दी गई थी, जो 'बा-कुटी' कहलाती है।

इन तीनों भवनो को ठीक उसी रूप में आज भी रखा गया है, जिस रूप में बापू के समय मे थे, ताकि दर्शक यह देख-समझ सकें कि राष्ट्रपिता गाधी कैसे रहते थे।

आश्रम में पुरानी चहल-पहल का रहना तो सम्भव ही नही है, फिर भी आश्रम के तत्कालीन पवित्र वातावरण को बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है।

बापू के समकालीन आश्रमवासी श्री चिमनलालभाई, श्रीमती शकरीबाई, श्रीमती निर्मला गाधी, श्री अनन्तरामजी, श्री प्रभाकरजी, श्री शकरनजी आज भी आश्रम में रहते हैं।

प्रात. और सन्ध्या नियमित रूप से आश्रम-प्रार्थना होती है। सूत्रयज्ञ, विष्णु सहस्त्रनाम का सामूहिक पारायण, भजन-सगीत का कार्यक्रम भी रहता है।

प्रति माह सैकडो की सख्या में दर्शक सेवाग्राम आकर पावन बापू-कुटी का दर्शन कर प्रेरणा प्राप्त करते है। इनमें दर्जनो विदेशी दर्शक भी रहते है।

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी अगस्त मास में सेवाग्राम मेडीकल कालेज में प्रवेश पानेवाले विद्यार्थियो के लिये दो सप्ताह का 'सस्कार शिविर' आश्रम की ओरसे चलाया गया। सितम्बर ७५ में महिलाओ का 'मद्य-निषेद शिविर' का आयोजन हुआ। नवम्बर ७५ में गुजरात-महाराष्ट्र के ४० बालक बालिकाओ का शिविर आयोजित हुआ। गत दिसम्बर में गाधी स्मारक निधि की ओरसे भारत के ३७५ रचनात्मक कार्यकर्ताओ का चार दिवसीय सम्मेलन श्री श्रीम नारायणजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

आश्रम के निकट 'यात्री-निवास' भवन बनाने की योजना केन्द्रीय सरकार की ओरसे कार्यान्वित हो रही है। इस काम में सेवाग्राम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायणजी रस ले रहे है।

प्रतिष्ठान के मत्री श्री प्रभाकरजी गाँव वालो के साथ मद्य-निषेद पर चर्चा कर रहे है, साथ ही मकान, सडास भूमि वितरण के कार्यों में भी सहायक हो रहे है।

* * *

नयी तालीम : दिसम्बर-जनवरी '७६
रजि० सं० WDA/1 लाइसेंस नं० ५

धनुष-बाणका संयोग

वृद्धों में और नौजवानोंमें विचारोंका मल न होना तो खुशीकी बात है। नौजवानों का विचार तो वृद्धोंके विचारसे आगे चलना ही चाहिए, वर्ना प्रगति रुक जायगी। पर ज्ञान हासिल करने का सर्वोत्तम जरिया वृद्धों की सेवा है—ऐसा सनातन अनुभव रहा है। वृद्ध-सेवा के बिना ज्ञान-द्वार नहीं खुलता। पिता के विचारों से पुत्र का मत-भेद जरूर हो, पर वह पिता की सेवा के लिये व्याकुल रहे।

वृद्धों और नौजवानों का सम्बन्ध धनुष-बाण का-सा होना चाहिए। वृद्ध धनुष है और नौजवान बाण! बाण, धनुष के पास ठहरता नहीं है, आगे ही जाता है, पर आगे जाने के लिए मजबूत धनुष का सहारा चाहिए। बाण को वेग और गति धनुष से ही मिलती है।

—विनोबा

—oo—

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

नयी तालीम में स्वावलम्बन का अर्थ

आचार्यों का अनुशासन

"मैं भरोसे अपने राम के"

'आचार्यकुल' : लक्ष्य और कार्यक्रम

जनतंत्र में जनता का उत्तरदायित्व

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : १४] फरवरी–मार्च, १९७६ [अंक : ४

सम्पादक-मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष २४
अंक ४

अनुक्रम

फरवरी-मार्च, '७६

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य २ रु. है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

आचार्य सम्मेलन

दिनाक १६ १७ १८ जनवरी को पवनार आश्रम में जो अखिल भारत आचार्य सम्मेलन हुआ, वह कई दृष्टि से ऐतिहासिक रहा । यह सम्मेलन आचार्य विनोबाजी की ओर से ही आयोजित किया गया था किसी अन्य व्यक्ति या सस्था की ओरसे नही। आमत्रितो की सूची विनोबाजी की सलाह से ही तैयार की गई और उन्होने सम्मेलन के विविध कार्योंमें गहरी दिलचस्पी ली ।

वर्ष · २४
अक · ४

यह पहला ही सम्मेलन था, जिसमें निष्पक्ष आचार्यो ने भारत की वतमान स्थिति पर जिसमें राजनीतिक पहलू भी शामिल थे बिना किसी भेदभाव के चिन्तन किया । विनोबाजी चाहते थे कि देशमें एसे आचार्योका अनुशासन खडा किया जाय, जो विभिन्न समस्याओपर निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष ढग से विचार विमर्श कर सकें ।

इस सम्मेलन की व्यवस्था उसके सामयिक महत्वको देखत हुए दो सप्ताह के अन्दर ही करना जरूरी हो गया । चूकि ससद चालू है और अभी तक आपात् स्थिति तथा अगले सामान्य चुनावको स्थगित करनके सबध में कोई निणय नही हुआ है, इसलिए यह अत्यन्त

आवश्यक था कि आचार्य सम्मेलन अपनी सर्वसम्मत राय अविलम्ब देश के सम्मुख प्रकाशित करे ।

विनोबाजी के निमंत्रण को उत्साहपूर्वक स्वीकार किया गया और देश के चुने हुए छब्बीस व्यक्ति, जिसमें दस विश्वविद्यालयों के उपकुलपति, चार वरिष्ठ प्राध्यापक, तीन ख्याति-प्राप्त न्यायशास्त्री, छः प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता और तीन प्रसिद्ध साहित्यकार शामिल हुए । इन्होंने पवनार आश्रम के शान्त वातावरण में तीन दिन तक भारत की वर्तमान परिस्थिति का सिंहावलोकन किया ।

दस घण्टों की मुक्त और विस्तृत चर्चा के पश्चात् सम्मेलन ने सर्वानुमति से एक निवेदन स्वीकार किया । सभी चर्चायें बड़े मैत्री और सौहार्द के वातावरण में हुईं । यद्यपि आमंत्रित व्यक्तियों के विचारों में स्वभावत कुछ भिन्नतायें थी, फिर भी सभी ने सर्वानुमति की दृष्टि से एक-दूसरे की राय को समावेश करने का नजरिया रखा ।

मुझे खुशी है कि सम्मेलन के वक्तव्य का देश के विभिन्न क्षेत्रों में काफी अनुकूल स्वागत हुआ है । जो हो, सम्मेलन ने ऐसी कई दिशाओं की ओर इशारा किया है, जिनके द्वारा वर्तमान गतिरोध को दूर किया जा सकता है, ताकि राष्ट्रीय एकता और रचनात्मक सहयोग का वातावरण निर्मित किया जा सके ।

मुझे पूरी उम्मीद है कि सभी दल सम्मेलन की सिफारिशों को उसी भावना से देखेंगे, जिस भावना से वे प्रकाशित की गई है, ताकि देश में शान्ति, स्थायित्व और आपसी सहयोग की एक नई आबोहवा पैदा की जा सके । हमारी यही आतरिक शक्ति देशकी सुरक्षा और अखंडता के ऊपर बाहरी खतरों का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगी ।

हम आशा करते है कि विभिन्न संस्थाओं के सभी कार्यकर्ता आचार्य सम्मेलन के इस सर्वसम्मत निवेदन का जनता मे व्यापक प्रचार करने का प्रयत्न करेंगे ।

अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन :

नागरी लिपि परिषद के तत्वावधान में अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन वर्धा के निकटस्थ पवनार आश्रम में दिनाक २१, २२ फरवरी १९७६ को हुआ। इसमें देश के सभी भागों के चुने हुए शिक्षाविद्, मनीषी एव सामाजिक कार्यकर्तागण शामिल हुए। ऋषि विनोबा भावे ने २१ फरवरी को सम्मेलन का उद्घाटन किया, एवं २२ फरवरी को सम्मेलन के समापन-अधिवेशन में भी भाषण दिया। सम्मेलन द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत तथ्यो का औपचारिक विवरण इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

पवनार का यह अधिवेशन कई दृष्टियों से उपयोगी रहा। भाषायी एवं सांस्कृतिक एकात्मता को मजबूत बनाने की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के साथ-साथ एशियाई भाषाओं के लिखने में नागरी लिपि की वाछनीयता की ओर सारे देश का ध्यान आकृष्ट कर सका। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा भारत सरकार के मन्त्रिमंडलीय स्तर के अनेक मंत्रियों के संदेशों में सामाजिक सश्लेषण के सवर्धनहेतु आधुनिक भारतीय भाषाओं के सीखने के लिए सम्पर्क लिपि के रूप में नागरी लिपि के अपनाये जाने पर बल दिया गया। आशा की जाती है कि नागरी लिपि के माध्यम से सामाजिक समन्वय के सामंजस्य की यह प्रक्रिया आने वाले वर्षों में विशाल पैमाने पर और अधिक गतिशील हो जाएगी।

दूसरे, सांस्कृतिक एकता के अभियान में अधिकाधिक लोगो को शामिल करने की दृष्टि से चालू वर्ष में ही सारे प्रदेशों में 'सहयोगी मडलों' की स्थापना का भी इस अधिवेशन में निर्णय किया गया। नागरी लिपि परिषद ने इस कार्य को सेवाभाव एवं प्राथमिकता से सम्पन्न करने वाले सयोजको की नियुक्ति प्रत्येक प्रदेश में की है। प्रत्येक क्षेत्र में, कुछ महीनों के अतराल से प्रादेशिक स्तरीय नागरी लिपि सम्मेलनो का आयोजन किया जाएगा। आगामी अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन, जनवरी १९७७ में केरल में होगा। कालीकट

विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष डॉ मलिक मोहम्मद सर्वानुमति से परिषद के उपाध्यक्ष चुने गए है।

परम सतोप की बात है कि भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार श्री रमा सन्न नायक ने विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओ के मासिको के प्रकाशनों को आर्थिक मदद दिलाने की दिशा में आवश्यक प्रयत्न करनेका आश्वासन दिया। विनोबाजी के सकेत पर प्रकाशित होने वाले इस प्रकार के अनेको मासिक पत्र-पत्रिकाएँ अर्थाभाव के कारण ही गत दो वर्षों में बन्द हो गई। अब यह आशा की जाती है कि सरकार एव जनता, दोनो के सहयोग से ये फिर जीवित हो सकेंगी। केन्द्रीय भारतीय भाषा सस्थान मैसूर के निदेशक डॉ डी पी, पटनायक ने भी भारतीय भाषाओ का प्राचीन एव आधुनिक साहित्य नामक एक सौ पृष्ठो की पुस्तक नागरी लिपि में प्रकाशित करनेका अभिवचन दिया। इस प्रकार की योजनाएँ विभिन्न क्षेत्रीय साहित्य के पारस्परिक परिचयात्मक आदान प्रदान में नितान्त उपयोगी होगी। यह भी निश्चय किया गया कि दक्षिण पूर्वी एशिया एव पश्चिम एशिया की भाषाओ को सीखने के लिए नागरी लिपि में रीडरें प्रकाशित की जाएँ। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली के प्रो हरप्रसादराय ने चीनी भाषा के अध्ययन हेतु इस प्रकार की रीडर प्रकाशित की है।

यह भी निर्णय किया गया कि नागरी लिपि परिषद के आवर्तक एव अनावर्तक खर्च के लिए दस लाख रुपयो की धर्मादाय निधि इकट्ठी की जाए। आशा है कि इसमें से आधी राशि भारत सरकार एव प्रादेशिक सरकार देगी, एव बाकी आधी राशि देश के विभिन्न धर्मादायन्यासो से प्राप्त हो सकेगी।

अन्त में आचार्य विनोबा ने इस बात पर विशेष बल दिया कि नागरी लिपि के सुधार सम्बधी विवादो में पडने के बजाय सस्कृत की वर्तमान लिपि को एशियाई भाषाओ के अध्ययन के माध्यम के रूप म अपना लिया जाए। यह ठीक है कि कई नई ध्वनियो को अभिव्यक्त

करने वाले ऐसे नये चिन्ह हमें अपनाने होंगे, जो इस समय नागरी लिपि में नहीं हैं, लेकिन सभी के सहयोग एवं सदाशयता से धीरे-धीरे सहज रूप में होने वाला यह मूक सुधार भारतीय एवं एशियाई भाषाओं के लेखन हेतु अतिरिक्त लिपि के रूप में नागरी के त्वरित अपनाये जाने के मार्ग में बाधक न बने।

प्राथमिक महत्ता के कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बाकी की बातें बाद में समय पाकर अपने आप पूरी हो जाती हैं। निष्कर्ष यह कि नागरी लिपि-आन्दोलन देश के सांस्कृतिक समन्वय एवं एकता की दिशा में अत्यन्त आवश्यक कदम है और इसीमें भारत एवं एशिया ही नहीं वरन् सारे विश्व का लाभ है।

यह कोई छुपी हुई बात नहीं है कि विभिन्न लिपियोंमें अभी तक मैं नागरीको सर्वोत्तम मानता हूँ। इतना कि जब मैं दक्षिण अफ्रिकामें था, तो गुजराती अक्षर गुजराती लिपिके बजाय नागरीमें लिखना चालू कर दिया था। समयके अभावकी वजहसे यह सुधार मैं आगे जारी नहीं रख पाया। इस बातसे मुझे कोई इन्कार नहीं है कि दूसरी सभी लिपियोंके समान नागरीमें सुधार की गुंजाइश है। लेकिन वह एक अलग विषय है।

—महात्मा गान्धी
२५-१-४८

महात्मा गांधी :

नयी तालीम में स्वावलम्बन का अर्थ

[देश के विभाजन के पूर्व बिहार में व्यापक साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। उस समय राष्ट्रपिता गांधीजी कई महीने पटना में रहे थे। वहीं से २३ अप्रैल, १९४७ को उन्होंने नयी तालीम में स्वावलम्बन के संबंध में कई प्रश्नोंके उत्तर दिए थे। वे पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। ——सम्पादक]

प्रश्न——सात बरस बुनियादी तालीम के हो गए। आज भी शंका है कि उसमें से निकले हुए लड़के अपने पाँव पर खड़े हो सकेंगे कि नहीं ? कमाई अलग-अलग दस्तकारियों से अलग-अलग होती है। अभी बढ़ईगिरी में विद्यार्थी दो-तीन रुपये रोज कमा लेता है। कताई के धंधे में बहुत कम मिलता है। आज के जमाने में मिलवाला काम हाथ से करने से आमदनी मिल के मुकाबिले में बहुत कम है। चरखा संघ के रेटसे तो उन्हें छ आने या आठ आने रोज मिल जायेंगे। लेकिन अगर प्रान्त भर में बुनियादी शालाएँ चलीं, तो चरखा-संघ सारा सूत नहीं खरीद सकेगा। आज भी बहुत-सा सूत ऐसा है, जो चरखा-संघ नहीं खरीद सका और बाजार के भाव बेचने जायें, तो बहुत कम दाम मिलेंगे। चाहिए तो यह कि स्कूलों का सारा सूत सरकार खरीद ले। इस हालत में कौन-सा उद्योग अपनाया जाय ?

उत्तर——आज हम पैसे का हिसाब करते हैं। वह हमें भूल जाना चाहिये। खादी हमारा मध्य बिन्दु है, क्योंकि हम सबको कपड़े की जरुरत पड़ती है। और मेरे सामने तो हिन्दुस्तान के सात लाख

देहातों का प्रश्न है। मैंने बार-बार कहा है कि मेरी खादी की कल्पना क्या है। खादी वह चीज है, जो मिल के सारे के सारे कपड़े की जगह ले सके। मैंने यह नहीं कहा कि नई तालीम में खादी को रखना ही है। पर आप मुझे बताइए कि और कौन-सी चीज है, जो गरीबों को उठा सकती है, तो मैं अपनी गलती समझ लूंगा। मेरे सामने तो एक सादा हिसाब (Simple Equation) है कि सब हिन्दुस्तानी अगर एक घंटे कातें, तो जरूरी कपड़ा मिल जाता है। अगर हर एक को छ घंटे इसमें लगाने पड़ें, तो खादी को मरना है, क्योंकि लोगोंको दूसरे काम भी तो रहते हैं—खाना पैदा करना है, दिमागी काम करना है। और नई तालीम में तो कभी बैल-जैसे काम करना पड़े, तो वह निकम्मी बन जाती है।

आज हमें बुनकरों को लालच देकर, ज्यादा पैसे देकर, सूत बुनवाना पड़ता है। यह मेरी भूल थी कि मैंने इस बात पर जोर नहीं दिया कि जैसे हर एक को कातना चाहिये, उसी तरह बुनना भी सीखना चाहिए। लेकिन, हाँ, इसमें वक्त सिर्फ बचत के मुताबिक ही खर्च होना चाहिये। अगर इसीमें सारा समय चला जाता है, तो फिर से मुझे सोचना होगा।

नई तालीम का शिक्षक कारीगर होगा, सिर्फ तनख्वाह लेनेवाला नहीं। उसका माहवारी खर्च इसीमें से निकालना होगा। उसकी पत्नी और बच्चों को भी इसमें आना होगा। तब सच्चा सहयोग पैदा होगा। अगर सारे हिन्दुस्तान में, देहात-देहात में, नई तालीम चल सके, तो बड़ा काम होगा।

कुछ लोग पूछते हैं कि क्या खेती को मध्य बिन्दु नहीं रख सकते? उससे हाथ की कला नहीं सीखी जा सकती? खेती-फल और तरकारी उगाने के काम में काफी शिक्षण मिलता है। दूध भी पैदा करना है। यह काम परतंत्रता में नहीं हो सकता। नई तालीम का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उसे तो सारी जिन्दगी का फैसला करना है। लड़के, शिक्षक सब मिलकर काम करेंगे और अपनी जरूरतें पूरी करेंगे।

प्रश्न--सवाल तो यह है कि क्या लड़कों और उस्ताद का मतलब अपने लिये कपड़ा ही पैदा करना है या वस्त्र-स्वावलम्बन से ज्यादा भी खादी का कोई स्थान है?

उत्तर--घड़ी भर खादी को भूल जाओ। मेरे स्कूल में तो शिक्षक और विद्यार्थियों को मिलकर अपनी सब जरुरतें पूरी करनी हैं। नई तालीम का उस्ताद आला दरजे का कारीगर होगा। देहात के सब लड़के अपने आप वहाँ आयेंगे। इस तरह तालीम अपने आप मुफ्त और लाजिमी बन जाती है। आज हिन्दुस्तान की हालत ऐसी है कि देहात में जो भाजी-तरकारी पैदा होती है, वह देहाती नहीं खाते। त्रावणकोर में नारियल पैदा होता है, पर वहाँ के लोग नारियल नहीं खा सकते। वह एक जगह पर इकट्ठा होकर शहरों में चला जाता है। नई तालीम के मदरसे होंगे, तो पहले वहाँ के लोग नारियल खायेंगे, फिर बाहर जायगा। फल पहले देहाती खायेंगे और फिर दूसरे। आज हम ऐसी फसलें बोते हैं जो ज्यादा से ज्यादा पैसा लायें, जैसे--अफीम, तमाखू, कपास वगैरह। नई तालीम सीखे हुए लोग वे चीजें पैदा करेंगे, जो जीवन के लिये जरुरी होंगी।

नई तालीम कोई पेशा सिखाने के लिये नहीं है, लेकिन हाथ को कला देकर मनुष्य बनाने वाली है। उन्हें जीवन का रस दिलाना है। नई तालीम अपूर्ण इंसानों को सम्पूर्ण बनाती है।

हमारी शिक्षा-प्रणाली शुद्ध भारतीय मूल्योंपर आधारित होनी चाहिये, जो यहाँके वातावरण, संस्कृति और नवयुगकी आकांक्षाओंके अनुरूप हो। विदेशी प्रणालीका अन्धाधुन्ध अनुकरण हमारी मानसिक दासताका प्रतीक है। इससे मुक्ति पानेके लिये यह अनिवार्य है कि भावी पीढ़ीमें आत्मगौरव, स्वावलम्बन और उच्च भावनाओंका विकास किया जाय।

—मदन मोहन मालवीय

ऋषि विनोबा :

आचार्यों का अनुशासन

[आचार्य विनोबाजी द्वारा बुलाया गया अखिल भारतीय आचार्य सम्मेलन पवनार आश्रममें १६, १७ और १८ जनवरी, १९७६ को सम्पन्न हुआ। उस अवसरपर तीनों दिन ऋषि विनोबा ने भाषण दिए थे। उनका सार यहाँ दिया जा रहा है। —सम्पादक]

आचार्यों का यह छोटा-सा सम्मेलन यहाँ पर हो रहा है। जिनको बुलाया था, उनमें से कुछ लोग नहीं आ सके हैं और कहा गया कुल २४ आये हैं। तो हमको याद आ गया। हम बचपन में सध्या-उपासना करते थे—' केशवायनम, नारायणायनम, माधवायनम, गोविन्दायनम ' इस तरह भगवान् के २४ नाम बोले जाते थे। ऐसे २४ यहाँ पर उपस्थित हैं—कोई केशव है कोई माधव है, कोई गोविन्द, इत्यादि-इत्यादि। ये सारे बाबा के लिए भगवत् स्वरूप हैं।

अब यहाँ जो २४ आचार्य इकट्ठा हो गये हैं, वे सोचेंगे। अभी इमरजसी आ गई है। उससे क्या-क्या फायदे हुए, क्या-क्या हानियाँ हुई हैं—उसका लेखा-जोखा वे करेंगे। उसमे उनको एक-एक प्रान्त के लिए अलग-अलग सोचना पडेगा। महाराष्ट्र में इमरजसी से क्या लाभ हुआ और क्या हानि हुई। ऐसे ही कर्नाटक में क्या लाभ हुआ, क्या हानियाँ हुई इत्यादि-इत्यादि सोचना पडेगा। लाभ-हानि का हिसाब जब आप करते हैं, तो यह सारा काम करना होगा। वह हिसाब करके आप कुछ बात पेश करेंगे। सबकी सहमति जिसमें होगी,

वह पेश करेंगे। उसके लिए आपको एक दफा इंदिराजी से मिलना पडेगा। उनकी क्या मुश्किलें है, जानलेना होगा। वह जानलेनेके बाद फिर मिलना होगा। और फिर जितना आपका बिलकुल युनानिमस हो गया आपका विचार, उतना प्रकाशित आप करेंगे। जितनी सहमति नहीं हुई, एक भी अगर विरोधी रहा, तो आप लोग चर्चा करते रहेगें। लेकिन जितना बिलकुल समान अंश है सबका, उतना आप जाहिर करेंगे।

यहाँ दो-तीन दिन मे आप चर्चा करने वाले है। लेकिन आपको अगर ऐसी उम्मीद हो कि ६० करोड के लिए ये २४ लोग अनुशासन बतायेंगे, उस अनुशासन पर सारा भारत चलेगा --ऐसी अगर आशा आप लोगो ने रखी है, तो असमिया में जैसा कहा है, 'निराशार कृष्ण'। भगवान् कृष्ण है, वे निराशा के भगवान् हैं। निराशा जिनकी है उन सबके वे भगवान् हैं। इसका अर्थ--आपको निराश होना पडेगा। इन २४ मनुष्यो के आधार से अगर भारत में अनुशासन चले, उस अनुशासन को यहाँ तक मान्य किया जायगा कि भारत सरकार भी उसे कबूल करेगी और दूसरी सरकारे भी कबूल करेंगी और उस अनुशासन में देश चलेगा इत्यादि-इत्यादि--ऐसा अगर आपने मान लिया हो, तो इससे अधिक भ्रम कोई नही हो सकता। इसलिए प्रथम आपको करना पडेगा--आचार्यो का सगठन। हिन्दुस्तान में ६,००० प्रखड हैं। मान लीजिये हर प्रखड से एक आचार्य हो, तो ६,००० आचार्य होने चाहिए। परन्तु वह जरा दूर की बात है। तो वह दूर की बात छोड दीजिये। परन्तु जितने जिले हैं, कम-से-कम एक जिले के लिए एक आचार्य माना जाय, तो आपको ३००--३५० आचार्य ढूंढने पडेंगे और वे आचार्य मिल करके फिर जो चर्चा करके निर्णय करेंगे, वह भारत के लिये अनुशासन हो सकता है। और वह अनुशासन अगर सरकार नही मानेगी, तो यहाँ तक मैने कह दिया कि सत्याग्रह तक की नौबत आ सकती हैं। फिर मैने आशा प्रगट की कि ऐसी मूर्खता भारत सरकार नही करेगी।

आज तो सर्वत्र भय का वातावरण फैला हुआ है। ये जो आचार्य यहाँ आये है, वे निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष—तो कितने निर्भय है, मै नहीं जानता। (हँसते हुए) आशा करता हूँ, निर्भय होगे, लेकिन शायद सम्भव है डरते भी होगे, मालूम नही क्या है? क्योकि इमरजसी का इतना भय छाया हुआ है! वह व्यर्थ है, नाहक है। उसने भयकी जरूरत है नही। परन्तु इतना भय छाया हुआ कि जब यहाँ की--अपने आश्रम की ब्रह्मविद्या मदिर की चिडियाँ इधर-उधर दौडती है, तो बाबा को शका आती है कि क्या इमरजसी के भय से दौड रही है? तो उनकी तरफ से उत्तर मिलता है बाबा को, कि यह तुम्हारी इमरजसी तुम मनुष्य लोग ही जानो। हम तो चिडियाँ भगवान् की है। इस वास्ते हमको इसका कोई डर नही है। भय से हम नहीं दौडती है। ऐसा उनसे जवाब मिलता है चिडियो की तरफ से।

बाबा तो यहाँ तक आशा करता है कि आपको अगर यहाँ सफलता मिल जाय, तो आपको इसका जागतिक आन्दोलन भी करना चाहिए, क्योंकि बाबा 'जय हिन्द', 'जय भारत' बोलता नही, 'जय जगत्' बोलता है। दुनिया इतनी नजदीक आ गई है कि आपको दूसरे देशो पर भी अपने विचारो का कुछ न कुछ प्रभाव पडे--इसकी कोशिश करनी होगी। लेकिन यह जरा आगे की बात है। इस वास्ते फिलहाल मैंने भारत तक अपने को सीमित माना है।

*   *   *   *

मुझे कहा गया कि आज के उपकुलपति और उनके साथ के आचार्य बहुत सारे गुलाम-से बन गये है सरकार के। क्योकि पैसा सरकार से मिलता है। सोचने की बात है—सरकार से तो न्यायालय को भी पैसा मिलता है। वह पैसा देश का ही पैसा है। इस वास्ते शिक्षा-विभाग स्वतत्र चाहिए। तनखा भले सरकार से मिलती हो, लेकिन उस विभाग पर सरकार का कोई कट्रोल न हो। उनकी अपनी सगठना है और वह सब मिलकर एकमति से कुछ विचार जाहिर करते है। जब तक एकमति हुई नही, तब तक चर्चा करते है आपस-आपस में और ऐसे व्यक्तिगत तौर पर बोलते नही। सामूहिक तौर

पर ही बोलेंगे। इस तरह शिक्षा विभाग सरकार से मुक्त होना चाहिये। तो आचार्यो के और शिक्षकों के पास जो शक्ति है उसकी कोई तुलना सरकार की शक्ति से नही हो सकती। सरकार तो पांच साल के लिये आपकी नौकर है। उनका राज आपको ठीक लगा, तो फिर पांच साल के लिये उनका चुनाव आप करेंगे, नहीं ठीक लगा, तो नहीं करेंगे।

लेकिन शिक्षक तो २०-२५ साल तक सिखाता रहेगा और जब वह रिटायर्ड होगा, तो दूसर जो शिक्षक आयेंगे उनके स्थान पर, वह उनके पढाये हुए विद्यार्थियाम स आयेंगे। इस वास्त उनकी परम्परा चलेगी और एसी परम्परा सरकारो की हो नहीं सकती। इस वास्त अगर शिक्षा विभाग अपनी बात निश्चयपूर्वक सबकी राय से सरकार क सामने रखगा, तो सरकार को मानना पडेगा।

एक बात और सोचने की है। वह भी मैंने कई दफा कही है कि सेक्युलर का अर्थ ये लोग लेते हैं—निधर्मी राज्य। और इसलिय उत्तम से उत्तम जो ग्रन्थ है—हिन्दू-धर्म के, इस्लाम क, क्रिश्चियानिटी के, वह सार उत्तम ग्रन्थ पढाये नही जायेंगे। यह सेक्युलर का बिलकुल गलत अर्थ ह। यह ठीक है कि केवल हिन्दू धम शास्त्र न सिखाया जाय मुस्लिम, क्रिश्चियन इत्यादि सब धर्मों की शिक्षा विद्यार्थियों को मिलगी। इस वास्त बाबा ने सब धर्मों का सार निकाल रखा है। तो वह 'सार' वाली जो किताबे है, वह विद्यार्थियो को सिखानी चाहिय, ताकि उनके चित्त पर संस्कार पडेगा सर्व धर्म-समभाव का। सब धर्मो ने मिल कर जो आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा दी होगी, वह विद्यार्थियो के चित्त में स्थिर हो जायगी।

तो दो बात मैंने आपके सामने रखी। एक शिक्षा विभाग स्वतन्त्र हो। दो, सब धर्मो की शिक्षा मिले। सक्युलर है, इसलिए धर्म-ग्रन्थ का अध्ययन ही न रखना बिलकुल गलत है। और विशेष बात तो यह है कि सरकार के शिक्षा मत्री होते है, उनके हाथ में सत्ता है। व जो टेक्सट्-बुक निश्चित करेंगे, वह सब विद्यार्थियो को

पढना पडेगा। उसमें उनकी परीक्षा ली जायगी। जो परीक्षा में फेल होंगे, वे आगे नही वढेंगे। तो शिक्षाधिकारी के हाथ में ऐसी सत्ता आ गई, जो आपने न शकराचार्य को दी, न कबीर को दी, न तुलसीदास को दी। फिर तुलसीदास वगैरह के ग्रन्थ हम पढते तो है लेकिन यह वे नही कर सके कि आपको 'रामचरित-मानस' पढना ही चाहिये। आप पढिये, आपकी मर्जी की बात है। परन्तु आपको पढना ही पडेगा—इस प्रकार की सत्ता आपने शिक्षाधिकारी के हाथ में दे रखी है। बिलकुल गलत है उसका वह अधिकार। आचार्यों की जो सस्था होगी, उसीके द्वारा निर्णय होगा। उनके जो शिक्षाधिकारी होंगे, वह ठीक है उनके पास। वे आपके पास आ जायें। आपकी बातें समझ लें और तदनुकूल जो करना होगा, वह करें। परन्तु उनके अनुकूल आप करें, यह मामला उलटा हो गया। आपके अनुकूल वे करें। उनके हाथ में सत्ता है। सत्ता के द्वारा भी कुछ चला सकते है। तो आपकी सुन करके वैसा टेक्सट्-बुक वे तैयार करे। यह खास करके शिक्षा-विभाग के बारे में दो बातें मैंने आपके सामने रखी।

*　　*　　*　　*

यहाँ पर देश के कुछ गणमान्य आचार्यों और विद्वानो ने इकट्ठा होकर अभी देश की परिस्थिति पर सब तरह सोचते हुए एक सर्वसम्मत निवेदन पेश किया है। यह तो आप जानते ही है, बाबा ने कहा भी है कि यह पहला कदम है। आखिर में आपको आचार्यों की बहुत उत्तम सगठना सारे भारत के लिये करनी होगी, तो वह आप धीरे-धीरे करेंगे।

आज मै आपके सामने क्या कहूँगा—इस बारे में कुछ भी सोच करके नही आया। लेकिन एक दफा मैंने जिक्र किया था कि मेरी एक 'स्वराज्य-शास्त्र' नाम की किताब है। उसमें राज्यशास्त्र के बारे में अनेक पद्धतियाँ सूचित की है और सर्वश्रेष्ठ पद्धति कौन-सी है, इसका निर्देश भी है। एक है एकायतन, दूसरी है अल्पसख्या-यतन, तीसरी है बहुसख्यायतन, और चौथी है सकलायतन। एकायतन पद्धति जो होती है, उसमें अत्यन्त उत्तम राज्य चल सकता है या

अत्यन्त खराब। दो ही सिरे हो सकते हैं। 'राम-राज्य, अगर रहा, तो उत्तम; 'रावण-राज्य' मगर रहा, तो अधम। उत्तम और अधम दो ही सिरे उसके हो सकते हैं। और अल्पसंख्यायतन—यानी सरदारों का। उसमें से कुछ निकलता नहीं। सरदार आपस-आपस में झगडते रहते हैं। उनका झगडा जब मिटेगा, तब देश के लिये कुछ मार्गदर्शन करेंगे। और झगडा मिटानेके पहले वे आपस आपस में लडते भी रहेंगे। इसलिये उस अल्पसंख्यायतन में से कुछ निकलता नहीं। वह प्रयोग अनेक राष्ट्रों में हो चुका है और उसमें से केवल हिंसा ही हिंसा फैली है। फिर यह बहुसंख्यायतन पद्धति, जो आज चल रही है, जो हमने इग्लंड के मॉडल पर बनाई है, यहाँ पर आज चल रही है। और सर्वश्रेष्ठ जो बाबाने मान ली है, वह सकलायतन। वह कैसे हमको स्थापित करना—इस बारे में सोचना होगा। आचार्यों को उसका चिन्तन-मनन करके सकलायतन पद्धति भारत में लाने की कोशिश करनी होगी।

आज यह जो चल रही है, जिसको आप डेमोक्रेसी कहते हैं, यानी बहुसंख्यायतन, वह भारत की पद्धति नहीं है, वह हमने पश्चिम के मॉडल से ली है, खासकरके इग्लैंड से।

इग्लैंड में जहाँ तक आज परिस्थिति है, इग्लिश भाषा चलती है कुल राष्ट्र में। और एक ही धर्म है क्रिश्चियानिटी। हिन्दुस्तान में जैसे रवीन्द्रनाथ ने कहा था, 'भारतेर महामानवेर सागरतीरे', तो मानवों का समुद्र है। हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन, पारसी, मुसलमान, खिस्तानी, और मैंने जोड दिया यहूदी। इतने सारे धर्म और इतनी ५-१५ विकसित भाषायें। ऐसे देशमें हमने इग्लंड से वहाँ के कान्स्टीटयूशन का अभ्यास करके तदनुसार हमने डेमोक्रेसी यहाँ बनाई, जो बहुसंख्या की राय पर चलती है। हिन्दुस्तान में वैदिक काल से लेकर सन्तों के जमाने तक, जो पद्धति मान्य की है, उसे कहते हैं 'पंच परमेश्वर'। मराठी में बोलते हैं 'पाचामुखी परमेश्वर'। वेद में आया है, 'पंचजना मम होत्रं जुषन्ताम्'। एक ऋषि ने यज्ञ किया था, तो पाँचों जनों को बुला करके, गाँव के पंचजनों को बुला करके कहता है—हे पंचजना

मैंने यह यज्ञ किया है उसको आप स्वीकार करियेगा। पंचजना मम होत्र जुषन्ताम्। यह वेद में आया। उपनिषद् मे भी 'पच पच जना.' कई दफा आया है। गीता में भगवान् कृष्ण का जो शख है वह पाँचजन्य कहलाया है। पांचजन्य शख यानी पांच जनोके लिये जिसकी ध्वनि पहुँचनी चाहिये और पहुँचती है। इस प्रकार से हमने हमेशा 'पच परमेश्वर' माना था। लेकिन अब यह जो हम लाये हैं डेमोक्रेसी, जिसका नाम है, वह है तीन बोले परमेश्वर। तीन विरुद्ध दो, प्रस्ताव पास। ऐसा उसमें है। यह इग्लेंड से हमने ले लिया। इग्लंड में केवल एकही धर्म है और एक ही भाषा है। लेकिन उनकी हालत क्या है? भाषा तो उन्होंने सब दूर फैलाई है सारी दुनिया में, अपने पराक्रम से। उसके लिये मुझे आदर है। और धर्म भी उन्होंने फैला दिया है चारो ओर क्रिश्चियन धर्म। बहुत सारे युरोप के लोग क्रिश्चियन हैं। अमरीका में क्रिश्चियन है। यहाँ भी भारत भर में कई क्रिश्चियन हैं। तो उन्होंने सब दूर क्रिश्चियानिटी को फैलाया। आज भी उनकी कोशिश है, यहाँ के आदिवासियों में जाकर उनको क्रिस्ती धर्म की दीक्षा दें। मुझे जीसस क्राइस्ट के लिये अत्यन्त आदर है। अगर कोई सचमुच क्रिस्ती बनता है, तो मेरे मन में उसके लिये आदर है। लेकिन यह जो आज क्रिश्चियन लोग हैं अद्भुत बात है उनकी। उन्होंने एक हजार भाषाओं में बाइबिल छाप दी है और उसमें क्या लिखा है बाइबिल में? 'लव दाइ एनिमी', अपने दुश्मनो पर प्यार करो—जीसस क्राइस्ट की शिक्षा फैलाई जाती है सब दूर। और परस्पर लडाई अगर कोई लडे हैं, तो ये क्रिश्चियन लोग लडे हैं। इधर इग्लंड, उधर जर्मन। इग्लंड के साथी, जर्मनी के साथी, आपस-आपस मे लडते रहते है और भगवान् से प्रार्थना करते है कि 'हे ईसा! ईसा के पिता! जर्मनी की जय हो।' और दूसरी बाजू इग्लड वाले क्रिश्चियन प्रार्थना करते हैं 'हे ईसा! अरे ईसा के परमपिता! इग्लेंड की जय हो।' अब बिचारा ईसा और बिचारा ईसा का पिता! क्या हो गई होगी उसकी हालत, मालूम नहीं। कितनी मुश्किल हुई होगी। इसकी सुनेंगे, तो उसका शाप मिलेगा। उसकी सुनेंगे, तो इसका शाप मिलेगा। ऐसे दुनिया भरमे अधिक से

अधिक लड़ने वाले कोई हैं, तो वे क्रिश्चियनस् हैं। मैं विनोद में कहता हूं, लेकिन वह उनकी अपनी वृत्ति है। एक हाथ में बम, एक हाथ में बाइबिल। जहाँ भी जाते है बम और बाइबिल दो लेके जाते हैं।

अब जिस देश में इतने सारे धर्म हैं, दुनिया भरके सब धर्म यहाँ मौजूद हैं, उस देश में हमने डेमोक्रेसी ली है, वह इस देश के लिये बहुत अनुकूल नही है। मैंने उसे नाम दिया है 'डिमोनाक्रेसी'। यह जो डेमोक्रेसी कहलाती है वह डिमोनाक्रेसी है। यह 'तीन बोले परमेश्वर' अत्यन्त घातक है।

आचार्यों को देखना है कि यह सकलायतन पद्धति, 'पाँच बोले परमेश्वर' यह हिंदुस्तान के गाँव-गाँव मे किस प्रकार रूढ होगी? यह सब आचार्यों को करना है। इतना सारा काम आचार्यों के जिम्मे है। मुझे याद आता है विनोद, उदाहरण है। बिहारमें मैं घूमता था, वैद्यनाथधाम की यात्रा मे यात्री चले जा रहे थे। रास्ते में वे बोलते जाते थे—'बमोलानाथ', 'बमोलानाथ' 'बभोलानाथ' भगवान शंकर का नाम है। तो मैंने उनको रोका और कहा जरा रुकिये। वे बाबा को जानते थे, तो रुक गये। मैंने पूछा आप क्या बोलते है समझ में आता है? बोले—'आप समझाइये'। मैंने कहा 'बम है अमरीका में और भोलानाथ हो आप।' यह बभोलानाथ का अर्थ है। तो दुनिया को अगर शस्त्र-संभार मे से बचाना हो, तो मैंने २५ तारीख को कहा था 'आचार्यों का अनुशासन' सब दूर स्थापित होना चाहिये। उसका आरम्भ मात्र केवल हिन्दुस्तान से हम लोग कर रहे है।

मैंने आप लोगों के सामने रखा ही था कि हर जिले में एक-एक आचार्य निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष खडा करना चाहिये। कैसे किया जाय? वह तो एक एक प्रान्त के आचार्यों की बैठक बुलानी पड़ेगी और उनके द्वारा उस प्रान्त के लिये, उसमें जितने जिले होंगे, उतने जिलो के लिये आचार्यों या वे लोग चयन करेंगे।

श्रीमन्नारायण :

"मैं भरोसे अपने राम के"

छुटपन में धार्मिक पुरुषों को हम 'साधू', 'स्वामी' व 'आचार्य' आदि नामोंसे पहचानते थे। कभी कोई बहुत बड़े सन्यासी आते, तो उनका 'श्री १०८' कहकर आदर-सम्मान किया जाता था। मुझे स्मरण है कि बाद में धीरे-धीरे इन प्रतिष्ठित धर्मगुरुओं को 'श्री १००८' की प्रतिष्ठा दी जाने लगी। किन्तु अब तो 'महर्षि' या 'जगद्गुरु' की उपाधियाँ भी पर्याप्त नहीं मानी जातीं। इन दिनों कई आचार्य 'भगवान्' बन गये हैं। भविष्य में शायद उन्हें 'परब्रह्म' उपाधि से भी संतोष न मिले।

सच तो यह है कि विनोबाजीके अनुसार यह जमाना अब विज्ञान व आध्यात्म का है, धर्म और राजनीति के दिन लद चुके हैं। भारतीय परम्परा में धर्म का असली अर्थ तो बहुत ऊँचा है, लेकिन वर्तमान युग में मजहब के नाम पर व्यापार चलने लगा है और बहुत-से व्यक्ति 'मठाधीश' बन गये हैं। उनके विशाल आश्रम व मन्दिर कई प्रकार की बुराइयों के केन्द्र बनते जा रहे हैं। पारस्परिक द्वेष व ईर्ष्या के कारण इन धार्मिक केन्द्रों का परिवेश कलुषित व तामसिक बन गया है। जो खुद को 'भगवान्' कहलाने लगे हैं, उन्हें मैं प्रथम श्रेणी का नास्तिक मानता हूँ। उनके प्रति मेरे मन में तनिक भी आदर नहीं है, और न किसी को होना चाहिये। यह तो अहम्-भाव की चरम सीमा है न!

इसी दृष्टि से महाकवि तुलसीदास न केवल 'राम' का ही भरोसा रखा। सिर्फ दो अक्षरों के बल पर उन्होंने अपने जीवन में परम शान्ति का अनुभव किया।

"और नहीं यछु वाम के,
मैं भरोसे अपने राम के।
दोऊ अक्षर सब कुल तारे,
वारी जाऊँ उस नाम पे।
तुलसीदास प्रभु राम दयाधन,
और देव सब दामके।"

* * * *

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी 'राम नाम' का सहारा लिया और अपने सार्वजनिक जीवन की अत्यन्त कठिन घड़ियोंमें इसी नाम की शरण गये। अन्त में उनकी पावन स्मृति 'हे राम' में ही समा गई।

इन दिनों विनोबा अपने मौन-काल में 'राम हरि' लिखकर ही अपने हस्ताक्षर करने लगे हैं। सूक्ष्म-चिन्तन के परिणाम स्वरूप उन्होंने अपने व्यक्तित्व को शून्यवत् बनाकर 'राम' के हवाले कर दिया है।

यह 'राम' केवल दशरथ नन्दन राम नहीं है, वह तो अखिल विश्व में समाया हुआ भगवान् है। अपने हस्तलिखित 'विष्णु-सहस्रनाम' मे विनोबा ने 'हविर्-हरि' की व्याख्या इस प्रकार की है—"जो भक्त भगवान् को नित्य आहुति देते हैं, उनके सब पापों को भगवान् दूर करते हैं। इसलिये आहुति के तौर पर कुछ न कुछ सेवा समाज की करते रहना चाहिये, ईश्वरार्पण भाव से।" यही है ऋषि विनोबा की जीवन-दृष्टि का सार।

* * * *

जब मै नेपाल में भारत का राजदूत था, काठमाडू की सांस्कृतिक संस्था में कार्य करनेवाली एक बहन बड़े ही मीठे स्वर में यह भजन अकसर गाती थी

"कलियों में राम मेरा, किरणों मे राम है,
धरती गगन मे मेरे प्रभुजी का धाम है।
कहाँ नहीं राम है?"

और अन्त में—

"वही फूल-फूल में, वही पात-पात में,
रहता है राम मेरा प्रभुजी के पास में,
मेरा रोम-रोम जिसको करता प्रणाम है,
धरती गगन में मेरे प्रभुजी का धाम है।"

मुझे पता नही कि इस मर्म-स्पर्शी काव्य का कौन रचयिता है। लेकिन इस गीत को सुनकर किसका हृदय स्पन्दित न होगा? इसमें वेदान्त-दर्शन का सत्य कितनी सरलता से झलकता है!

इसी 'राम' में भक्त हृदय मीरा ने अपना 'रतन-धन' पा लिया—

"खरचै न खूटे, वाको चोर न लूटे, दिन-दिन बढत सवायो।"

जीवन-मुक्त कबीर ने आखिर रामनाम का ही आश्रय लिया—

"नहीं छोड़ूं रे बाबा रामनाम,
मेरो और पढन सो नहीं काम।"

और 'नानक' ने भी हमें यही सलाह दी

'रे मन! राम सो कर प्रीत,
श्रवण गोविन्द गुण सुनो
अरु गाउ रसना गीत।"

* * * *

वाल्मीकि रामायण के अन्त म एक बडी दिलचस्प कथा का जिक्र किया गया है। अयोध्या लौटने पर राज्याभिषेक के बाद भगवान् राम रोज सुबह नियमित रूप से अपने दरबार में विराजमान होते थे। उनकी आज्ञा थी कि उनके समीप आने से किसी को न रोका जाय। एक दिन सिर्फ एक कुत्ता भोकता हुआ महल के सामने खडा था। दरबान ने भगवान् की अनुमति पाकर उस कुत्ते को दरबार में जाने दिया। पूछने पर कुत्ते ने एक ब्राह्मण की शिकायत की, जिसने उसे रास्ते में बिना कारण ही लाठी से मारा था। उसके सिर में काफी चोट लगने से खून बह रहा था।

मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी का आदेश पाने पर उस ब्राह्मण को दरबार में पेश किया गया। उसने हाथ जोड़कर कहा "महाराज, मैं कई दिन से भूखा हूँ। रास्ते में यह कुत्ता बैठा था। आवाज देने पर भी वह उठा नहीं। मुझे गुस्सा आ गया और मैंने इसके सिर पर लाठी मार दी। मुझ से गलती हुई। क्षमा कीजिये!"

भगवान् ने फिर कुत्ते से पूछा कि ब्राह्मण को क्या सजा दी जाय? उत्तर मिला "महाराज, इसे मठाधीश बना दीजिये!" रामचन्द्रजी ने आश्चर्य से पूछा "क्या यह सजा हुई?" कुत्ते ने बड़ी नम्रता से कहा "भगवन्, मैं भी पिछले जन्म में एक मठाधीश था। बहुत से पाप करने के कारण मैंने इस जन्म में कुत्ते की योनि पाई है।"

कितनी मार्मिक कथा है यह! काश, हमारे मंदिरों व आश्रमों के सभी धर्मगुरु इस प्रकरण को ध्यान से पढ़ कर अपना जीवन सुधारने की कोशिश करें! यह हाल सिर्फ हिन्दू मठाधीशों का नहीं है, दूसरे मजहबों के धर्माध्यक्षों की भी लगभग यही दशा है। धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण की कहानियाँ सचमुच बड़ी दुखद व दयनीय हैं।

लेकिन ताज्जुब तो यह है कि बहुत-से लोग इस तरह अपना शोषण क्यों होने देते हैं? शायद अमीर भक्तों की तो यही धारणा रहती है कि इन 'धर्मात्माओं' की कृपा से वे स्वर्ग में अपने लिये एक कक्ष रिजर्व करा लेंगे। उनका ख्याल है कि धन द्वारा इहलोक व परलोक—दोनों ही सुरक्षित बन सकते हैं। गरीब जनता भी अपने भोलेपन के कारण इन 'दाम के देवों' की पूजा करती है, इस आशा से कि शायद उनका जीवन अधिक स्वस्थ, सुखी व समृद्ध बन सके।

हाँ, कुछ धार्मिक व्यक्तियों में बीमारियों आदि को दूर करने की क्षमता पाई जाती है। लेकिन यह शक्ति उनमें ऋद्धि-सिद्धि के रूप में आ जाती है। यदि कोई उसका दुरुपयोग करे और धन व प्रतिष्ठा को प्राप्त करने का साधन बना ले, तो यह आध्यात्मिक शक्ति तुरन्त लुप्त भी हो जाती है। इस तरह के व्यवहार से आध्यात्म के विकास

में बाधायें आती हैं । हमारे पुराणों में योगियों के भ्रष्ट हो जाने की कथायें हैं। मैं तो जब कभी किसी 'महापुरुष' को इस तरह के नाटक करते देखता हूँ, तो क्रोध के बजाय दया आती है। 'भगवान' बनकर उन्हें माया भले ही मिल जावे, किन्तु राम तो कदापि नहीं मिलेंगे।

* * * *

यह आश्चर्य का विषय है कि भारत के कई 'भगवानों' ने अपना सिक्का अमरीका, योरप व एशिया के काफी देशों में जमा रखा है। विदेशों में उनके हजारों शिष्य बन गये हैं और सैंकड़ों मन्दिरों का निर्माण हो चुका है। धन तो मानो इन धर्म-गुरुओं के ऊपर बरसता है। एक महर्षि ने तो अमरीकी हिप्पियों पर भी अपना गहरा प्रभाव स्थापित कर लिया था। 'योग' का शिक्षण देने के लिये न जाने कितने 'स्वामी' विदेशों में भ्रमण करते रहते हैं। साधारणतः यह माना जाता है कि पाश्चात्य देशों की जनता विज्ञान के इस युग में अंध-श्रद्धा की शिकार नहीं बनती है। किन्तु इस दिशा में जो अनुभव मिल रहा है, उससे प्रतीत होता है कि धर्म के नाम पर लुट जाना सिर्फ भारत की विशेषता नहीं है। यह मानव का स्वभाव बन गया है कि वह भौतिक व्याधियों को भूलने के हेतु 'मजहबी' लोगों का आश्रय लेने को लालायित रहे।

इसका यह मतलब न लगाया जाय कि सच्चे 'धर्म' की ओर मुड़ना कोई बुरी वस्तु है। दिन रात दवाई व नशे की गोलियाँ खाने की अपेक्षा भजन-ध्यान-कीर्तन कहीं अच्छा है। डाक्टरों और 'साइ-कियेट्रिस्टों' के पास दौड़ने के बजाय 'योग' का अभ्यास अधिक हितकर है। प्रश्न इतना ही है कि क्या आध्यात्म को इस तरह बेचना और शोषण का साधन बनाना उचित है? धर्म को बाजारु चीज बना डालना अत्यन्त अशोभनीय है। मजहब का यह व्यापार अब बन्द हो ही जाना चाहिये। सच्चा धर्म आन्तरिक साधना व चिन्तन का विषय है, बाहरी दिखावे का नहीं। हमारे देश में इस वक्त भी कुछ ऐसी विभूतियाँ हैं, जो सच्चे अर्थ में पूजनीय हैं और जिनकी अविरत साधना द्वारा मनुष्य मात्र का कल्याण हो रहा है।

किन्तु इनकी सख्या तेजी से घट रही है, क्योंकि भौतिकवाद का तूफान दिनोंदिन जोर पकडता जा रहा है।

* * * *

मेरे पिताश्री एक प्रमुख 'थियोसोफिस्ट' थे, जिन्होंने करीब सभी मजहबों का गहरा अध्ययन किया था। वे हमसे अक्सर कहा करते थे कि धर्म-गुरु हमें केवल मार्ग दिखा सकते हैं, उस रास्ते पर चलना तो हमें ही पड़ेगा। मुमुक्ष-मार्ग पर चलने के लिये सयम, ध्यान व तपस्या की निरन्तर आवश्यकता होती है। किसी जादू या 'शॉर्ट कट' से काम नही चल सकता। उपनिषदों में इसे 'छुरे की धार' की उपमा दी गई है

"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस् तत् कवयो वदन्ति।"

आजकल तो इस तरह की साधनाओं के लिये पेशेवार पंडितों को रख लिया जाता है, जो 'यजमानों' की मनोकामनाओं के हेतु विभिन्न प्रकार के 'जप' करते रहते हैं। गुरु के आदेशानुसार यदि किसी नाम का दस लाख बार जप करना है, तो पंडितजी ही अपने 'सेठ' की ओर से यह शुभ कार्य सम्पन्न कर देंगे। यह तो सच ही धर्म का बडा मजाक है। हां, यदि किसी के पास जरूरत से ज्यादा धन है, तो उसे मदिरा व अन्य व्यसनों पर बहाने के बजाय भजन-कीर्तन के आयोजनों पर व्यय करना अधिक श्रेयस्कर है ही।

* * * *

गीता में भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हम अपने ही मित्र हैं और अपने ही शत्रु हैं "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन."। जैन धर्म के तीर्थंकरों ने भी इसी बात पर बहुत जोर दिया है कि बाहरी युद्ध व सघर्ष के बजाय हमें स्वय पर ही विजय प्राप्त करनी चाहिये।

'धम्मपद' में भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को इसी प्रकार के उपदेश दिये हैं। उनके प्रवचनों को सुनते समय अक्सर शिष्यों का ध्यान विचलित हो जाता था। वे एकाग्र मन से उनके सद्विचारों का चिन्तन-मनन न कर पाते थे। एक दिन भगवान् ने उन्हें समझाया—

"न परेस विलोमानि न परेस कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च।।"

अर्थात, न तो दूसरों के विरोधी वचन पर ध्यान दो, न दूसरों के कृत्याकृत्यों को देखो, केवल अपने ही कृत्यों का अवलोकन करो।

किसी दूसरे अवसर पर भगवान् ने भिक्षुओं से कहा "दूसरों को उपदेश देने वाले को पहले अपना दमन करना चाहिये। वस्तुत अपना दमन व इन्द्रिय निग्रह करना ही कठिन है।"

महात्मा गाधी का भी यही सन्देश था "दूसरों के दोष देखने के बजाय हम उनके गुणों को ग्रहण करें। अपने ही अवगुणों को देखें और उन्हें सुधार लें।" यह दृष्टि रखने से बहुत-सी परेशानियाँ अपने आप गायब हो जाती हैं।

मेरे छोटे चाचाजी प्रोफेसर बद्रीनारायणजी काफी अर्से से बीमार रहे। लेकिन फिर भी उनकी मानसिक शान्ति गजब की थी। जब मैं उनसे मिलने गया और स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की, तो उन्होंने मुझे कबीर का एक दोहा सुनाया

"देह धरन को दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख भुगते रोय।।"

यहाँ ज्ञानी का अर्थ है आत्मज्ञान का साधक, जो अपनी आत्मा को परमात्मा राम के अंश के रूप में परखता है। तुलसीदास के शब्दों में—

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन, अमल, सहज सुखराशी।"

जब हमें आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति होने लगती है, तब हम दुनिया को 'सिया-राम-मय' देखते हैं और परमानन्द का अनुभव करते हैं। फिर हमारी आत्मा ही हमारी इष्टदेव बन जाती है और 'दाम के देवो' की आवश्यकता नहीं रहती। इस सम्बध में मशहूर शायर इकबाल ने कमाल की गजल लिखी है

"अपने मन में डूब कर पा जा सुरागे जिन्दगी।
तू अगर मेरा नहीं बनता, न बन, अपना तो बन।।"

वंशीधर श्रीवास्तव :

'आचार्यकुल' : लक्ष्य और कार्यक्रम

[शिवरात्रि के पुण्य-पर्व पर तारीख २८ फरवरी को केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की एक विशेष बैठक ऋषि विनोबा के सान्निध्य में पवनार आश्रम में हुई थी। उस बैठक में यह निश्चय किया गया कि देशमें आचार्यों के अनुशासन को सुदृढ़ करने की दृष्टि से 'आचार्यकुल' को अधिक व्यापक और मजबूत बनाया जाय। केन्द्रीय समिति ने श्री श्रीमन्नारायणजी को सर्वानुमति से 'आचार्यकुल' का अध्यक्ष मनोनीत किया। केन्द्रीय समिति के आग्रह पर पूज्य विनोबाजी ने भी आचार्यकुल के 'प्रधान संरक्षक' के रूपमें मार्गदर्शन देना स्वीकार किया।

यह भी निश्चय हुआ कि केन्द्रीय आचार्यकुल का मुख्य कार्यालय पवनार में रखा जाय और एक वर्ष के अन्दर भारत के सभी राज्यों में उसकी प्रादेशिक शाखाओं को सुसगठित बनाया जाय।

प्रारम्भ से ही श्री वंशीधर श्रीवास्तव 'आचार्यकुल' के संयोजक रहे और इतने वर्षों तक उन्होंने बड़ी लगन से कार्य किया। उन्हीके शब्दों में आचार्यकुल सम्बन्धी यह लेख प्रकाशित किया जा रहा है।

जो शिक्षक, लेखक या विचारक 'आचार्यकुल' के सदस्य बनना चाहें, वे नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें "श्री कालिन्दी बहन, संयुक्त मंत्री, केन्द्रीय आचार्यकुल, परंधाम आश्रम, पवनार (वर्धा)"।]

पृष्ठभूमि

जब स्वराज्य हो गया, तो गांधीजी ने यह नहीं कहा कि हमारा काम पूरा हो गया। उन्होंने तो यह कहा था कि हमारा काम अब शुरु हुआ है। वह काम एक ऐसे समाज का निर्माण करना था, जिसमें सबका उदय हो, सबका विकास हो। ऐसी समाज-व्यवस्था को गांधीजी ने 'सर्वोदय' नाम दिया था।

सर्वोदय समाज के निर्माण के विषय में गाधीजी ने एक अत्यन्त महत्व की बात स्पष्ट तौर पर यह कही थी कि यह काम सत्ता के माध्यम से नही होगा। इसीलिये वह एक ऐसी जमात खडा करना चाहते थे, जो राजनीति से अलग रहकर लोक-सेवा का काम करे। उन्होंने कांग्रेस से कहा भी था कि वह सत्ता की राजनीति में न पडकर 'लोकसेवक-सघ' में बदल जाय और लोकसेवा का काम करे। और जो बात उस समय गाधीजी ने कांग्रेस से कही थी, वही बात आज विनोबा शिक्षकों से कह रहे हैं—सत्ता की राजनीति से अलग रहकर लोकसेवा और लोकनीति के मार्गदर्शन की बात।

सन् १९६७–६८ में जब विनोबाजी बिहार की यात्रा पर थे, तो स्व डा जाकिर हुसेन उनसे वहाँ मिले और उन्होंने विनोबाजी से शिक्षा की समस्याओ पर विचार-विनिमय किया। उन्होने उत्तर स्वातत्र्यकाल में सरकार द्वारा शिक्षण सस्थाओ की स्वायत्तता में हस्तक्षेप की बढती हुई प्रवृत्ति, शिक्षण सस्थाओ और शिक्षक-सघ द्वारा शिक्षा के सरकारीकरण की माँग, शिक्षण-सघो में दलगत राजनीति का प्रवेश और छात्र-सगठनो की बढती हुई हिंसात्मक प्रवृति आदि समस्याओ की चर्चा की और विनोबाजी से मार्गदर्शन की अपेक्षा की। आचार्यकुल के विचार का उदय वही से हुआ।

दिसम्बर १९६७ में विनोबाजी के सान्निध्य में बिहार में वहाँ के तत्कालीन शिक्षा-मत्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने पूसारोड में एक शिक्षा-परिषद बुलाई। इस परिषद् में तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा-मत्री श्री त्रिगुण सेन, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री धीरेन्द्र मजुमदार जैसे मनीषी, और चिन्तक भी उपस्थित थे। विनोबाजी ने देश की वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ में शिक्षा की समस्याओ पर अपने विचार प्रकट किये और शिक्षको की सामाजिक हैसियत के उन्नयन के लिये और उनकी नैतिक शक्ति जगाने और बढाने के लिये उनकी एक स्वतत्र सत्ता खडी करने की कल्पना की। उन्होने कहा कि उनकी कल्पना के शिक्षक-सगठन में प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयो तक के सभी ऐसे शिक्षक रहेंगे, जो इस बात का सकल्प करें कि दलगत

राजनीति से अलग रहकर वे हिंसा की विरोधी लोकनीति के निर्माण में उनकी सहायता करेंगे, जिससे लोगोंमें समस्याओं को अहिंसात्मक ढंग से हल करने की आदत पड़े और विश्व-शान्ति के लिये आवश्यक मानस तैयार हो सके। विनोबा ने शिक्षकों के इस नये संगठन का नाम रखा—'आचार्यकुल'।

'आचार्यकुल' नाम :

आचार्यकुल नाम के सम्बंध में विनोबा कहते है—" आचार्यकुल अर्थात् आचार्यों का कुल। कुल शब्द परिवार वाचक है, और हम सभी आचार्यों का एक ही परिवार है। ज्ञान की उपासना करना, चित्त-शुद्धि के लिये प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य भाव रख कर उनके विकास के लिये सतत् प्रयत्न करते रहना, सारे समाज के सामने जो समस्याएँ आती है, उनका तटस्थ भाव से चिन्तन करके सर्वसम्मति का निष्पक्ष निर्णय समाज के सामने रखना और उनके अहिंसक निराकरण के लिए समाज का मार्गदर्शन करना इत्यादि कार्य। जो हम करने जा रहे है, वह एक परिवार की स्थापना का काम है। इस वास्ते मैंने इसका नाम ' आचार्यकुल' रखा है। इसके अलावा अरबी भाषा के साथ भी इसका मेल है (संस्कृत के साथ तो है ही)। आचार्यकुल यानी कुल के कुल आचार्य। आचार्यों के कुल का मतलब होता है कि इस परिवार में ऊँचा-नीचा, छोटा-बड़ा का सवाल ही नहीं उठता। इसलिए जितने भी शिक्षक है, वे सब आचार्य है, समान रूप से आदरणीय है।" आचार्यकुल की निष्ठाओं में विश्वास रखने वाले साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार और समाज-सेवक भी इसके सदस्य हो सकते है।

कर्तव्य के प्रति जागृति :

इस आचार्यकुल का लक्ष्य क्या होगा, इसके विषय में विनोबा कहते हैं—" यह जो आचार्यकुल स्थापित होने जा रहा है, वह शिक्षकों का हक या अधिकार प्राप्त करने के लिये नहीं है। अधिकार प्राप्त करने के लिये तो दूसरी संस्थाएँ भी है। यह तो अपने कर्तव्य के प्रति

जागृति और प्रयत्न के लिये है। इससे सारे शिक्षक अपनी वास्तविक हैसियत पायेंगे, जिसे वे आज खोये हुए हैं।"

शिक्षा की स्वायत्तता :

भारत की परम्परा में राज्य की सत्ता गुरु पर नहीं थी। गुरु उससे परे था। शिक्षा शासन-मुक्त थी। गुरुकुलों पर कुलपतियों का ही अधिकार था। और यद्यपि गुरुकुलों को राज्य की ओरसे आर्थिक सहायता मिलती थी, जमीन मिलती थी, गौएँ मिलती थी, फिर भी गुरुकुलों में किन विषयों का अध्यापन हो, किस पद्धति से अध्यापन हो, कौन अध्यापन करे, इस विषय के निर्णायक कुलपति ही थे। 'गुरुकुल' की व्यवस्था में राज्य किसी प्रकार का दखल नहीं देता था। "आज भी न्याय-विभाग शासन से ऊपर है और जहाँ ठीक लगे वहाँ वह शासन के खिलाफ भी फैसला दे सकता है और शासन को उस पर अमल करना पडता है, यद्पि जजो को तनख्वाह सरकार की तरफ से ही मिलती है। इसीलिये न्याय-विभाग की अपनी प्रतिष्ठा है। वैसे ही शिक्षकों की, भले ही उन्हें सरकार की ओरसे तनख्वाह मिल, क्योंकि सरकार तो लोगा स लकर ही देती है, अपनी स्वतन्त्र हस्ती होनी चाहिय। शिक्षा शासन-मुक्त, स्वायत्त होनी चाहिये। यह आचार्यकुल का एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये। उसकी योजना आचार्य-कुल को करनी है।"

सत्ता की राजनीति से अलग रहना :

कर्तव्य के प्रति जागृति और शिक्षा को शासन-मुक्त रखने के लिये आवश्यक है कि आचार्यकुल सत्ता के पीछे न भागकर अपनी शक्ति का विकास करे। दलगत राजनीति से अलग हुए बिना आचार्य राजनीति पर असर नहीं डाल सकते। जैसे न्यायाधीश पक्षपातरहित होकर ही न्याय कर सकता है, वैसे ही आचार्य दलगत राजनीति से अलग रहकर ही राजनीतिका निर्देशन कर सकता है। इस सम्बन्ध में विनोबा कहते हैं—"आचार्यकुल राजनीति का अध्ययन करेगा, परन्तु सत्ता की राजनीति (पावर-पालिटिक्स) और दलगत राज-

नीति (पार्टी-पालिटिक्स) से वह अलग रहेगा । अगर आचार्य सत्ता की राजनीति और दलगत राजनीति में पड़ता है, तो उसका गौरव क्षीण होता है । इसलिये आचार्य को सत्ता-संघर्ष की दलगत राजनीति से ऊँचा उठकर विश्वव्यापक मानवीय राजनीति अपनानी चाहिये ।" अगर आचार्य को अपनी खोयी हुई हैसियत वापस पानी है, तो उसे इतना त्याग करना पड़ेगा ।

पक्ष-मुक्तता :

आज देश की राजनीति पक्ष-ग्रस्त है । हर एक दल अपने दल की ही बात को सत्य मानता है । 'मेरा सत्य' और 'तेरा सत्य' के आग्रह में 'सार्वत्रिक सत्य' खो गया । सत्ता के भय और सम्पत्ति के लोभ से ऊपर उठकर सार्वत्रिक सत्य की बात कहने वाले नहीं रह गये हैं । अत. यह काम आचार्यकुल करे, ऐसी आशा विनोबा करते हैं । जब तक दलगत सत्य से, खंडित सत्य से, ऊपर नहीं उठा जायगा, पूर्ण सत्य हाथ नहीं लगेगा । इसलिये विनोबा का आग्रह है कि आचार्यकुल पार्टी-पालिटिक्स से अलग रहे और खंडित सत्य का माध्यम न बने । आचार्यकुल सत्य की वाणी बने—पूर्ण सत्य की ।

लोकनीति और ग्राम-स्वराज्य

विनोबा कहते हैं—"अगर शिक्षक यह मानते हैं कि कक्षा में बच्चों को पढ़ा दिया, तो हो गया और समाज के प्रति उनका दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है, तो शिक्षक राजनीति पर असर नहीं डाल सकते । अत. आचार्यकुल के सदस्य राजनीति से अलग रहें, परन्तु लोकनीति से जुड़े रहें।" आचार्य अगर लोक-सेवा का कार्य नहीं करेंगे, तो लोक-मानस से उनका परिचय नहीं होगा और वे लोकनीतिका निर्देशन नहीं कर सकेंगे ।

तीसरी शक्ति का निर्माण

प्रेम से विचार समझ-समझा कर सेवा और त्याग का मार्ग लोकनीति का मार्ग है। विनोबा कहते हैं कि "लोकनीति तीसरी

शक्ति है; जो हिंसा की शक्ति की विरोधी है, अर्थात् हिंसा की शक्ति भी नहीं है और जो दंड-शक्ति से भी भिन्न है अर्थात् दंड की शक्ति भी नहीं है।"

अहिंसा लोकनीति का प्रमुख तत्व है और विचार द्वारा अशांति का शमन उसका प्रमुख अंग। 'लोकनीति,' दंड-निरपेक्ष होती है। वह मानती है कि हिंसा से और राजनीति की दंड-शक्ति से किसी समस्या का हल नहीं हो सकता। वह यह भी मानती है कि समाज की प्रगति रुक न जाय और समाज नीचे न गिर जाय, इसलिये एक बड़ी जमात समाज में ऐसी होनी चाहिये, जो निरन्तर समाज-सेवा में लगी रहे और जागरूकता के साथ सेवा करती रहे। वह सत्ता से अलग रहकर तटस्थ बुद्धि से अपने विचार जाहिर करे, जिसका नैतिक असर सरकार पर और लोगों पर पड़े।" आचार्यकुल का लक्ष्य इस लोकनीति का निर्माण होना चाहिये।

आचार्यकुल और ग्राम-स्वराज्य :

विनोबा ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य द्वारा जिस लोकशक्ति का निर्माण कर रहे हैं, उस कार्य में वे आचार्यों से सहायता चाहते हैं। करुणा के बिना विद्या का उपयोग नहीं है। इसलिये विनोबा जो करुणा का कार्य कर रहे हैं, उसमें आचार्यकुल का पूरा सहयोग मिलना चाहिये। विनोबा कहते हैं, "आज स्थिति लगभग यह है कि गाँव-गाँव में शिक्षक हैं। अगर वे ग्रामदान-प्राप्ति में, ग्रामसभा बनाने में, और उसके संचालन में, जमीन का बँटवारा करने में और ग्राम-कोष का विनियोग कैसे हो, यह समझाने में, ग्राम-स्वराज्य के विचार-शिक्षण में और प्रेम की बात ठीक से अमल में लाने में गाँव का नेतृत्व करें, तो शिक्षकों द्वारा बहुत बड़ा काम होगा। अगर देखा जाय तो भारत को आचार्यों ने बनाया है। भारत का जितना धर्म-विचार है, अर्थ-विचार है, समाज-विचार है, वह सबका सब आचार्यों के विचार के कारण बना है। इसलिये अगर ग्रामदान आन्दोलन को अपना आन्दोलन समझकर आचार्य अपना थोड़ा-सा समय दें, तो बहुत बड़ा काम होगा।"

एक-एक गाँव को सलाह देने वाला एक-एक शिक्षक मित्र बन जाय और गाँव की गरीबी और अज्ञान को मिटाने में वह करुणामूलक सहकार करे, तो लोकशक्ति के निर्माण में तो प्रगति होगी ही, समाज में शिक्षक की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और वह अपनी खोयी हुई हैसियत फिर प्राप्त कर सकेगा।

आचार्यकुल के तीन संकल्प :

आचार्यकुल के ये लक्ष्य पूरे हों, इसके लिये आचार्यकुल के सदस्य को तीन संकल्प करने पड़ते हैं (१) वह सत्ता की राजनीति में नहीं पड़ेगा, दलगत राजनीति से अलग रहेगा और न तो किसी भी राजनैतिक पार्टी का सदस्य बनेगा और न किसी गुटबन्दी में शामिल होगा। (२) वह किसी भी समस्या के समाधान के लिए न तो हिंसात्मक मार्ग अपनायेगा, न उसका समर्थन करेगा। (३) वह लोकसेवा का कुछ कार्य अवश्य करेगा, जिससे लोक-मानस से उसका सम्पर्क बना रहे और उससे लोकनीति को दिशा मिले।

'आचार्य' अगर ऊपर के तीन संकल्प करता है तो उससे शिक्षा की समस्याएँ ही नहीं हल होंगी, वह लोकनीति के निर्माण में भी सहायक हो सकेगा और देश में सरकार की शक्ति के स्थान पर लोक-शक्ति खड़ी हो सकेगी। ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य द्वारा जिस लोकशक्ति और लोकनीति का निर्माण हो रहा है, विद्वत्-शक्ति से उसे निर्देशन मिले, तो लोकनीति की प्रगति में तेजी आयेगी।

संघर्ष-मुक्त क्रान्ति के लिये :

विनोबा की संकल्पना का यह आचार्यकुल युग-सापेक्ष है। आज के अणुयुग में यह बात साफ हो गई है कि शस्त्र का प्रतिकार अगर शस्त्र से किया गया, तो प्रलय हो जायगी। परन्तु आज तक का ऐतिहासिक सत्य यही रहा है कि हिंसा-शक्ति और दंड-शक्ति ही (और दंड-शक्ति भी प्रच्छन्न, मर्यादित, समाज-सम्मत हिंसा-शक्ति ही है) मानव-समाज को शासित करती रही है। मानव-समाज के निर्माण,

धारण और परिवर्तन के लिये ये दोनों शक्तियाँ ही जिम्मेदार रही हैं।

मनुष्य के जीवन मे पहली क्रान्ति उस समय हुई थी, जिस समय मनुष्य ने 'जगल के कानून' से बचने के लिये उन्मुक्त हिंसा के स्थान पर हिंसा को मर्यादित कर उसे राज्य के हाथ मे 'दड-शक्ति' के रूप में सौंपा था। यह परिवर्तन शासन-तन्त्र में ही एक प्रकार का परिवर्तन था। उन्मुक्त हिंसा का स्थान दंड-शक्ति ने लिया था। परन्तु इसके बाद मनुष्य के जीवन में जितनी भी क्रान्तियाँ हुई, चाहे वह फ्रान्स की प्रजातान्त्रिक क्रान्ति रही हो, चाहे रूस की साम्यवादी क्रान्ति रही हो, तन्त्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लोकतन्त्र को चलाने के लिये राजतन्त्र द्वारा विकसित तन्त्र को हूबहू अपना लिया गया और इस सारे तन्त्र के पीछे पुलिस और सेना झांकती रही। लोकतन्त्र के सचालन के लिये लोक-मूलक पद्धति नही बनी। लक्ष्य 'सिर काटने' के स्थान पर 'सिर गिनने' का हुआ, दबाव (कोअर्सन) के स्थान पर (कान्सेन्ट) का हुआ, परन्तु तन्त्र जिनके हाथ में रहा, उनकी नीति सिर काटने की, हिंसा की, दण्ड की ही बनी रही। इस विसगति का परिणाम यह हुआ कि लोकतन्त्र या तो शोषण का साधन बन गया (पूँजीवादी लोकतान्त्रिक देशों मे) अथवा दमन का (साम्यवादी सर्वाधिकारी देशों में)। राज्य 'लोक' का नही, 'तानाशाह' का रहा या 'पूँजीपति' का। नाम 'लोकशाही' का रहा, राज्य अमलाशाही (ब्यूरियोक्रेसी) का। श्री धीरेन्द्र मजूमदार के शब्दों में—'लोक' 'तन्त्र' में खो गया।

गांधीजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस विसगति को दूर करने की बात कही। उन्होनें कहा कि अगर साध्य शुद्ध है, तो साधन भी शुद्ध होना चाहिये, नही तो अशुद्ध साधन साध्य को भी दूषित कर देगा। यही अब तक होता रहा है। अत. अगर लोकतन्त्र की प्रक्रिया को अहिंसक रखना है, तो लोकतन्त्र का संचालन-तन्त्र भी अहिंसक होना चाहिये। "हिंसक क्रान्ति हिंसा से होती है और उससे बडी हिंसा से टिकती है। हिंसा का अन्त नही होता है। ..संघर्ष से मेल

न विज्ञान का है और न लोकमत से चलनेवाले लोकतन्त्र का, जिसे गांधीजी ने अहिंसा की विशुद्ध प्रक्रिया कहा है। अतः अगर विज्ञान और लोकतन्त्र की रक्षा करते हुए सामाजिक-क्रान्ति करनी है, तो संघर्ष-मुक्त क्रान्ति की पद्धति विकसित करनी होगी।"

विनोबा के 'ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य आन्दोलन' या 'आचार्यकुल-आन्दोलन' से संयोग इसी पद्धति के विकास के लिये हैं। संघर्ष-मुक्त क्रान्ति की प्रक्रिया विचार-परिवर्तन की, शिक्षण की प्रक्रिया ही हो सकती है। इस प्रक्रिया में हिंसा का स्थान अहिंसा, दंडनीति का स्थान लोकनीति और सेना का स्थान शिक्षक लेगा। अगर समाज-निर्माण, समाज-परिवर्तन और समाज-धारण के लिये हिंसा को अपदस्थ कर अहिंसा को प्रतिष्ठित करना है, तो दंड-शक्ति के स्थान पर शिक्षण-शक्ति और सेना के स्थान पर विनोबा की संकल्पना के आचार्यकुल को प्रतिस्थापित करना होगा। अहिंसा और हृदय-परिवर्तन की नीति में निष्ठा रखने वाला आचार्यकुल युग-सापेक्ष आन्दोलन है।

युवा-शक्ति को रचनात्मक दिशा देने के लिये :

सामाजिक परिवर्तन की किसी भी क्रांतिकारी प्रक्रियामें युवा-शक्ति का निर्णायक हाथ रहता है। आज यह शक्ति दिशाहीन होकर विघटनकारी बन रही है। यही आज की शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है।

छात्रों की अनुशासनहीनता और छात्र-विद्रोह आज इस देश की ही नहीं, सारे संसार की समस्या है। अनुशासन का अर्थ है–शासन के पीछे चलना। 'शासन' यथा-स्थिति (स्टेटस-को) का प्रतिनिधित्व करता है, और पुराने मूल्यों का एवं निहित स्वार्थों का संरक्षक होता है। अतः युवक छात्र सबसे पहले उसीको बदलना चाहता है, उसी पर हमला करता है। विक्षुब्ध होकर वह विद्रोह करता है। यह विद्रोह जागतिक समस्या है, जागतिक लक्षण है।

अतः समस्या का समाधान छात्र-विद्रोह को दबाने का नहीं है–छात्र-विद्रोह को विधायक, रचनात्मक दिशा देने का है। आज के

अणु-युग में किसी भी समस्या का हल हिंसा से नहीं हो सकता। आज के युग में हिंसक-क्रांति सम्भव ही नहीं है, क्योंकि हिंसा का अर्थ है प्रलय। अत आज क्रांति अस्त्र से नहीं विचारो से होगी। छात्र को समझना है कि वह यदि समाज के मूल्यो को बदलना चाहता है, तो सबसे पहले उसे उस मूल्य को बदलना है, जो सबसे पुराना है—और वह मूल्य 'हिंसा' है। 'हिंसा' के इस मूल्य को बदले बिना समाज में वास्तविक मूल्य परिवर्तन नहीं होगा। हिंसा के मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया शिक्षण, नियमन और विचार की प्रक्रिया है। विचार की इस प्रक्रिया का सचालन आचार्य ही कर सकता है क्योंकि विचार-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन का पेशा उसीका पेशा है अथवा जो यह धन्धा करे, वही आचार्य है। इसलिये विनोबा ने विचारशील विद्वानो को आचार्यकुल में लेने की इजाजत दी है।

परन्तु छात्र-विद्रोह को विधायक दिशा देने का कार्य वही आचार्य कर सकता है, जिसका दडशक्ति में विश्वास नहीं है और जिसकी लोकनीति में निष्ठा रखनेवाला आचार्य स्वय में 'यथास्थिति के विरोध का प्रतीक' है। विद्यार्थी मौजूदा समाज के मूल्यो को बदलना चाहता है और अगर मौजूदा समाज के मूल्यो को बदलने के लिये शिक्षक भी आगे आता है, और दोनों साथ मिलकर 'यथास्थिति' को बदलने की कोशिश करते है, तो आज जो अन्तर शिक्षक और विद्यार्थी के बीच में आ गया है, वह मिट जाएगा और दोनो का समाज के निहित स्वार्थो से लडनेवाले सिपाही के रूप में मिलन होगा।

सत्ता से अलग रहने वाले लोकनीति के पोषक आचार्यकुल और अहिंसामूलक रचनात्मक छात्र-शक्ति से ही आज की समस्याओ का हल होगा। आचार्यकुल का सगठन युग सापेक्ष सगठन है और निष्ठा-पूर्वक काम किया गया, तो उससे युग की इस समस्या का हल निकल सकेगा।

●

मदालसा नारायण :

जनतन्त्र में जनता का उत्तरदायित्व

[जनसाधारण के लिये थोडे में भारतीय संविधान का सार निकालकर सौ मदालसा नारायण ने सचमुच एक मौलिक कार्य किया है। और बहुत खुशी की बात है कि श्रीमदाद्यशंकराचार्य के अनुसार ही सौ मदालसाबहन ने सदविद्या को ही सबसे प्रमुख स्थान दिया है।

हमें बहुत समाधान और संतोष है कि यह मौलिक और आवश्यक कार्य अब जनता के सामने आयेगा और जनता प्रगति-पथ में उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में अग्रसर होगी।

—शिवाजी भावे, ब्रह्म विद्या मंदिर, पवनार]

युग-युगो से हमारे देश में राजतन्त्र की परम्परा चली आ रही थी। अब तक अगणित राजाओ का उदय और अस्त इस धरातल पर होता रहा। उसमें से जिन्होंने सच्चाई और प्रेम से राज चलाया, उन्हींका नाम दुनिया में रोशन हुआ और इतिहास में उन्होंने अमरता पाई। पर जमाना बदल गया है। अब समय आ गया है, जब कि अपने देश और दुनिया में जनतन्त्र की परम्परा ही चलने वाली है। अत उसका सुचारु रूप से संचालन होने के लिये जन-जन को जाग्रत होना ही चाहिये। यह इस युग का आवाहन है।

"अनुशासन और विवेकयुक्त जनतन्त्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है।" इन शब्दों में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जनतंत्र का अद्भुत गौरव सन् १९३१ में ही किया था। इसे ध्यान में लेकर गहरा विचार, चर्चा और चिन्तन करते हुए 'दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु' का दर्शन हमें प्राप्त करना है। उसके लिये मन में, घर में, समाज और राष्ट्र में चारो ओर अनुशासन और विवेक का वातावरण जगाना होगा।

राष्ट्रपिता बापू के दिवगत हो जाने के बाद उनका राष्ट्रीय उत्तरदायित्व आज जन्मदाता माता-पिता के रूप में सर्वसाधारण जन-

समाज के ऊपर अपने आप आ गया है। यह ध्यान में लेते हुए हमें पारिवारिक रूप से अपने सद्गुणों और शुभ्र-शक्तियों का विकास करना है तथा राष्ट्रीय रूप से हमें अपने समाज में विशुद्ध सांस्कृतिक परम्परा को प्रचलित करना ही चाहिये। उसीके द्वारा स्वतंत्र भारत में संस्थापित अपना जनतंत्र प्रतिष्ठित हो सकेगा। इस दृष्टि से हमें अपने भारतीय संविधान को भलीभाँति समझ लेना होगा। राष्ट्रपिता के बलिदान के फलस्वरूप भारतमाता के वरदान के रूप में हमें अपना भारतीय संविधान प्राप्त हुआ है।

संविधान, ध्वज और राष्ट्रीय गान—तीनों मिल कर राष्ट्र की आत्मा का निर्माण करते हैं। संविधान राष्ट्र का सर्वोच्च एवं मौलिक आधार होता है और वही 'राजनीति' की जगह 'राष्ट्रनीति' को निर्धारित करता है। इसलिये संविधान की जानकारी प्राप्त करना हम सभी के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

'भारतीय संविधान' का स्वरूप मुख्य रूपसे लोकतंत्रीय तथा गणराज्यात्मक है। इसके द्वारा भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्री गणराज्य घोषित किया गया है। तदनुसार इसके संगठक भागोंके तथा सरकारी तंत्रों के सम्पूर्ण अधिकार तथा सत्ता जनता में निहित है। यह हम सर्वसाधारणजनों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार-परिवर्तन और जीवन-परिवर्तन की बात है, क्योंकि 'आधुनिक भारत के इतिहास में संविधान ने उन सभी वयस्क व्यक्तियों को यह अधिकार सर्वप्रथम प्रदान किया है, जो २१ वर्ष के हो गये हों। इस तरह संवैधानिक मौलिक अधिकारों से विभूषित तीन पीढ़ियाँ आज हमारे घर-घर में विद्यमान हैं। इन सभी को मिलकर के अब अपने जनतंत्र का सुचारु रूपसे संचालन करना है।

किसी भी राज्य या तंत्रके संचालन का आधार अधिकार होते हैं। अधिकार ही वह गुण है, जो राज्य को अपनी शक्ति का उपयोग करने में नैतिक बल देता है। ये अधिकार इस अर्थ में नैसर्गिक अधिकार माने जाते हैं कि अच्छे जीवन के लिये ये अनिवार्य होते हैं।

भारतीय सविधान सब नागरिको को व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूपसे लोकतत्र के सर्वोत्तम लाभ और जीवन की वे आधारभूत स्वतत्रताये तथा सुविधायें प्रदान करता है, जो जीवन को विशिष्ट और रचनात्मक बनाती है। ये मौलिक अधिकार निम्न लिखित हैं.

समता, स्वतत्रता, शोषण से सरक्षण, धर्म-स्वातत्र्य, सास्कृतिक तथा शिक्षा सम्बधी सुविधाय, सम्पत्ति का रक्षणाधिकार तथा सवैधानिक उपचारो का अधिकार।

भारतीय सविधान में नागरिक तथा सामाजिक समता को भारतीय शासन-पद्धति की आधारशिला माना गया है। भारतीय सविधान ने महात्मा गाधी द्वारा प्रतिपादित अस्पृश्यता-उन्मूलन की महान् सामाजिक क्राति पर वैधानिकता की मुहर लगा दी है।

लोकतत्री उद्देश्यो के अनुरूप भारतीय सविधान में सभी नागरिको को स्वतत्रता के मौलिक अधिकार प्रदान करने की सुनिश्चित व्यवस्था रखी गई है।

भारतीय सविधान में व्यक्तिगत स्वतनता तथा शासन में कानून की सर्वोपरिता को भी स्थान दिया गया है।

सवैधानिक उपचार वाली व्यवस्था सम्पूर्ण सविधान का प्राण तथा आत्मा है। अधिकारो को यदि सवैधानिक तरीको से लागू तथा सुरक्षित न किया जाय, तो उनका कोई मूल्य नही है। प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार लागू कराने के लिये सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार है।

हमारी तत्र-नीति अर्थात् राष्ट्रनीति के 'निर्देशक सिद्धान्त' सम्बधी अध्याय भारत के सविधान की एक अनोखी विशेषता है। इनके द्वारा जनता के आर्थिक अधिकारो तथा समाज-सुरक्षा के सिद्धान्तो के परिपालन की पूरी पूरी व्यवस्था की गई हैं। देश में व्याप्त दरिद्रता तथा असमानता का उन्मूलन इन सिद्धान्तो का उद्देश्य है। उसीमें अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सद्भावना को प्रोत्साहन देना भी सन्निहित है।

- हमारी सवैधानिक प्रतिज्ञा का प्रथम मौलिक अश यह है कि 'भारत के प्रति और कानून द्वारा स्थापित भारत के सविधान के प्रति हम वफादार और निष्ठावान रहेंगे।' एसी हम सबको सन्मति दे भगवान्। यही प्रार्थना, प्रयत्न और पुरुषार्थ हमें करना है।

सवैधानिक रूपमें अखिल विश्व के अन्तर्गत हमारा देश एक महान राष्ट्रीय इकाई है। किन्तु जनहितकारी दृष्टि से व्यवस्थित कार्य सचालन के लिये यह विभिन्न प्रदेशो में विभाजित है। उन राज्यो या प्रदेशो की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होती है। केन्द्र की भांति राज्यपाल को उसके कर्तव्य-पालन में सहायता तथा परामर्श देने के लिये एक मन्त्रि-परिषद् होती है।

न्यायालय :

सुसगठित, सक्षम तथा स्वतन्त्र न्यायपालिका लोकतन्त्र की सरक्षिका होती है। यह जनता के अधिकारो तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करती है। भारतीय न्याय-व्यवस्था के शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय है। सविधान के अनुसार भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिका सहित अन्य किसी भी राज्य सघ के उच्चतम न्यायालय से अधिक व्यापक अधिकार प्राप्त है।

प्रत्येक राज्य या प्रदेश के लिये एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था रखी गई है। वहां के न्यायाधीशो की नियुक्ति राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधिपति, राज्य के राज्यपाल के परमर्श से करते हैं। तथा किसी भी राज्य में जिला न्यायाधीशो की नियुक्ति, पदस्थापना तथा पदोन्नति राज्यपाल उस राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श से करते हैं।

सार्वजनिक सेवायें :

किसी भी देश में प्रशासन का मानदण्ड तथा उसकी कार्य-कुशलता अततोगत्वा उसकी सार्वजनिक सेवाओ में नियुक्त कर्मचारियो की क्षमता, प्रशिक्षण तथा लगन पर निर्भर रहती है। भारतीय सविधान में लोकहितकारी राज्य के प्रशासन तन्त्र के सचालन के लिये दूरदर्शी, योग्य तथा ईमानदार व्यक्तियो को ही आकर्षित करने का

प्रयास किया गया है। लोकतंत्री राज्यों (प्रदेशों) के अन्तर्गत सार्वजनिक सेवाओ में 'लोक सेवा आयोग' के माध्यम से नियुक्तियाँ करना एक सर्वविदित सिद्धान्त है। भारतीय सविधान में केन्द्र तथा सभी प्रदेशो के लिये एक-एक 'लोक सेवा आयोग' की व्यवस्था की गई है।

विश्वविद्यालयों का योगदान :

सार्वजनिक सेवाओं के लिये अर्पित किये जाने वाले व्यक्तियों में कार्यक्षमता, प्रशिक्षण, लगन, दूरदर्शिता, योग्यता तथा ईमानदारी जगाने का और बढाने का कार्य एव वातावरण शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत विश्वविद्यालयो के माध्यम से हो सकता है। कारण, सार्वजनिक सेवाओ की तथा समाज-विकास के कार्यों की सुविधा की दृष्टि से अपना राष्ट्र विभिन्न प्रदेशो में बँटा है। ऐसे हर प्रदेश या राज्य के प्रमुख राज्यपाल ही विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति होते हैं। वे प्रादेशिक जनता के कुल-कुटुम्ब-परिवार के सर्वेसर्वा अधिपति हैं।

इस दृष्टि से प्रादेशिक स्तर पर जनता को जाग्रत, सुशिक्षित-प्रशिक्षित एव हर प्रकार से सक्षम बनाने का प्रयास, कुलाधिपति की उच्चतम भूमिका से, विभिन्न प्रशासनिक विभागो एवं सार्वजनिक सेवामय सगठनो में पारस्परिक सहयोग बढाकर, सहज रूप से सध सकता है। ऐसे व्यापक शिक्षण-प्रशिक्षण, आचार-विचार एवं संस्कार-व्यवहार का श्रेष्ठतम उत्तरदायित्व प्रदेश के अन्तर्गत सस्थापित एवं प्रतिष्ठित 'विश्वविद्यालयों' के द्वारा भलीभाँति निभाया जा सकता है।

अखिल विश्व के अतराल में पुण्यभूमि भारतवर्ष परम्परागत रूप से प्रतिष्ठित एक महान राष्ट्र है। उतना ही विशाल उसका महान 'व्यवस्था-तंत्र' है। उसके चार महत्वपूर्ण अग है, जिन पर यह महान तंत्र आधारित है।

१. संचालन-तंत्र
२. विधि-तंत्र
३. न्यायालय
४. विश्वविद्यालय

समाज-कल्याण एव जन सेवा की दृष्टि से ये सभी महत्वपूर्ण है। फिर भी इन सब में नई वशिवा-(नई जनरेशन) को प्रशिक्षित एव प्रमाणित करने का महानतम उत्तरदायित्व हमारे सम्माननीय जन-समाज में प्रतिष्ठिन 'विश्वविद्यालयो' का ही है। इसलिये भारतीय शासन-तन्त्र या व्यवस्था तन्त्र के अन्तर्गत विश्वविद्यालयो के कुलाधिपति के नाते 'हेड ऑफ द स्टेट' याने प्रदेश प्रमुख या राज्यपाल की भूमिका राष्ट्र के नव निर्माण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

सचालन-तन्त्र :

यह जनहितकारी सुख-सुविधा और जन जीवन की विविध सेवा के लिये सक्षम, विभिन्न विभागो दवारा सचालित होना है। इसीलिये केन्द्रीय एव प्रादेशिक मन्त्रिमडल के सभी मन्त्रीगण जन सेवा के विशिष्ट विभागो का सचालन करने में दिन रात लगे रहते हैं। उसी तरह भारत के उच्चतम पद पर अधिष्ठित भारत के प्रधान मन्त्री को भी अपना विभाग उतनी ही जिम्मेवारी से सभालना पडता है। यही भारतीय जनतन्त्र की विशेषता है। एक प्रकार से राष्ट्र के ये सभी उच्च पदाधिकारीगण विशिष्ट विभागाधिकारी है और विभिन्न विभाग जनता की सेवा के लिये या समाज कल्याण के लिये ही सुगठित होते है। इसलिये समूचा मन्त्रिमडल ही 'जन-सेवाधिकारी' माना जा सकता है।

भारतीय 'व्यवस्था-तन्त्र' के अन्तर्गत यह 'सचालन तन्त्र' ठीक से जमा हुआ है। इसमें महामहिम राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, केन्द्रीय मन्त्रिमडल, प्रादेशिक मन्त्रीगण, जिलाधिकारीगण—ये सभी उच्चतम जन सेवाधिकारीगण ही है। इन सबके लिये सेव्य है—भारतीय जनता।

इस सचालन-तन्त्र के सचालकगण जितने कुशल, कर्तबगार और सेवापरायण होगे उतना तन्त्र-सचालन बढिया होगा। इसलिये इडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस याने भारतीय व्यवस्थात्मक सेवा का प्रशिक्षण भारतीय सविधान के बुनियादी तत्वो के अनुरूप कर्तव्यपरायणता से अपने मौलिक अधिकारो का महत्व समझते हुए उत्तम प्रकार से होना

चाहिये। साथ ही इन सभी राष्ट्रीय-सेवा के अधिकारी प्रशिक्षणार्थियों के हृदय राष्ट्रीय उत्थान की भावना से ओतप्रोत भी होने ही चाहिये।

प्रशिक्षण पूरा हो जाने पर 'भारत दर्शन' करते हुए राष्ट्रपिता बापूजी के राष्ट्रीय-सेवा-साधना के धाम सेवाग्राम में भी उन्हें कम-से-कम हफ्ते-दो-हफ्ते मुक्त मन से रहने का सुअवसर मिलना चाहिये, जिससे अपनी राष्ट्रीय संस्कार परम्परा को वे अच्छी तरह समझ कर ग्रहण कर सके।

विधि-तन्त्र :

इसी तरह भारतीय व्यवस्था-तन्त्र के अन्तर्गत अपने संवैधानिक विधि-तन्त्र का विशेष महत्व है। यह हमारी 'लेजिस्लेटिव साइड' है। सवैधानिक कायदे, कानून और विधि-विधान की समझने-समझाने की यह अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा है। 'जनतन्त्र' के संचालन में इसीका उत्तरदायित्व बड़ा भारी है।

इसमें महामना राष्ट्रपति की भूमिका राष्ट्र के बहुजनमान्य अधिपति की है। प्रधान मंत्री राष्ट्र के बहुमत-आधारित सत्ताधारी दल का नेता है।

लोक सभा—राष्ट्रीय जनों के बहुमत से निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों की सभा है।

राज्य सभा—राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों के अथवा संघटक भागों के प्रतिनिधियों की सभा है। उनमें विद्वद्जनों का समावेश होता है।

विधान सभा—प्रादेशिक जन-प्रतिनिधियों की सभा।

विधान परिषद्—प्रदेश के सामाजिक प्रतिनिधियों की सभा। इसमें उनका भी समावेश होता है, जिन्हे साहित्य, विज्ञान, कला सहकारी आन्दोलन तथा समाज का विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव हो।

संसदीय सदस्यगण—ये सभी उपरोक्त सभाओं के सदस्य अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्रों की मतदाता-जनता के विश्वसनीय एवं सम्माननीय चुने-प्रतिनिधि होते हैं।

ऐसा यह हमारा सार्वभौम प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के सचालन का सवैधानिक महान विधि-तन्त्र है। इसके सुव्यवस्थित सचालन के लिये अत्यन्त आवश्यक है--जनता एव जनप्रतिनिधियो के बीच निरन्तर सीधा सम्पर्क बने रहने की। उसके लिये हर ससदीय निर्वाचन क्षेत्र में एक ऐसा विशेष स्थान, भवन या *कार्यालय अवश्य होना चाहिये, जहाँ जनता के जन सेवको, जन*-सेवाधिकारीगणो एव जन-प्रतिनिधिगणो का सहज स्वाभाविक रूप से परस्पर मिलना-जुलना होता रहे। उनमें सतत सीधा सम्पर्क बना रहे, बातचीत होती रहे, विचार-विनिमय होता रहे। तभी तो सरकारी अधिकारी, व्यापारी, समाज-सेवाधिकारी आदि सभी के साथ अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रीय विकास-कार्यों में जनता का उत्तम सहयोग सध सकेगा।

'जन-जाग्रत मंडल' :

स्वतत्र भारत के सभी राजनैतिक दलो का गठन लोकतत्रात्मक निर्वाचन-पद्धति के अनुसार, वयस्क मताधिकार के द्वारा, सर्वसाधारण जनता की बहुमति के अनुरूप होता है। लोकसभा या विधानसभा के लिये निर्धारित निर्वाचन-क्षेत्रो से चुने जाने वाले ये सभी राजनैतिक दलों के सदस्यगण, अपने-अपने क्षेत्रो में जनता की बहुमति पर चुने जाते हैं। इसलिये वे *वास्तव में जन-प्रतिनिधि हैं। यह बडा भारी* उत्तरदायित्व है। इसे भलीभाँति निभाने के लिये छोटे बडे हर निर्वाचन-क्षेत्र में एक एक 'जन-जाग्रत मडल' होना आवश्यक है। उसका एक अत्यन्त सुव्यवस्थित स्वतत्र कार्यालय भी होना ही चाहिये, जहाँ स्थानीय विचारको का और जन सेवको का अखण्ड सम्पर्क, वहाँ के उनके अपने जन प्रतिनिधियो के साथ बना रहे। जन-जाग्रत मडल के उस कार्यालय को 'जन भवन' कहा जा सकता है।

'जन-भवन' की उपयुक्तता :

जन-भवनो में राष्ट्र के उत्थान की हर प्रकार की गति विधियो की जानकारी, नक्शे, चार्ट, अहवाल आदि होने चाहियें। समाज कल्याण के सभी प्रकार के कार्यों की ओर प्रगति की तालिका होनी चाहिये। भारतीय जनतत्र के सचालन का समग्र दर्शन जन जन को वहाँ से सतत् मिलता रहना चाहिये। विशेषत केन्द्रीय सरकार की योजनाओ के अनुसार,

प्रादेशिक सरकार की योजनाओ के अनुरूप वहाँ के हर निर्वाचन क्षेत्र क लोगो की जीवनोपयोगी हर बातो में अब तक कितना लाभ पहुँचा है, वहाँ का जन-जीवन, केन्द्र और प्रदेश के अनुपात में क्रमश किस तरह उन्नत हो रहा है, वहाँ के बालको और युवको का सर्वतोमुखी विकास जितना अब तक हुआ है और हो रहा है, उससे अधिक हमारी इस उदीयमान युवा पीढ़ी का विकास किस तरह हो सकता है--इसकी जानकारी और सुझाव भी वहाँ उपलब्ध होने चाहिये। इसी तरह हर निर्वाचन क्षेत्र का सर्वांगीण विकास अधिक उत्तमता से किस तरह हो सकता है, इसका दिन-रात चिन्तन और चर्चा 'जन-भवन' में होती रहे। वहाँ के जन प्रतिनिधि एम एल ए और एम पी गणो का वह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यालय या सभा-गृह होना चाहिये। इन जन-भवनो में एक-एक स्वतत्र और अत्यन्त सेवाभावी कुशल सयोजक होना आवश्यक है, जो वहाँ का उत्तम सचालन कर सके।

भारत वर्तमान लोकतन्त्री देशो में सबसे बडा लोकतत्र बन गया है। इसमें एक ऐसे निर्वाचक मडल की व्यवस्था की गई है, जिसके अन्तर्गत ससार की सम्पूर्ण जनसख्या का द्वादशाश आ जाता है। इसके द्वारा समाजवादी समाज की श्रेष्ठ कल्पना को कार्यरूप में परिणित करने का प्रयास किया गया है। इसमें मानव अधिकार सम्बधी एक ऐसी घोषणा सम्मिलित है, जो अभी तक किसी भी अन्य देश में उद्घोषित नही की गई है। भारत के इतिहास में यह देश एक सगठित राज्य के रूपमें पहली बार प्रगट हुआ है।

वास्तव में अखिल विश्व के धरातल पर भारतवर्ष एक ऐसा महान सार्वभौम प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र है, जहाँ मानव धर्म की परम्परायें अनादिकाल से अखण्ड चली आ रही है। मानव-जीवन के शाश्वत मूल्य और सिद्धान्तो के आधार पर आज दुनिया में प्रजातत्र सक्रिय रुप से कहीं सचालित हो सकता है, तो वह भारत में ही हो सकता है। ऐसा अपना गौरवशाली राष्ट्र सब प्रकार से समृद्धशाली हो प्रजातत्र सच्चरित्रवान और बलशाली हो, राष्ट्र में कही कोई दुखी न हो, किसी प्रकार के अन्याय से पीडित न हो, इसके लिये हम सबको गहरा चिन्तन और प्रयत्न करना है।

●

अखिल भारत आचार्य सम्मेलन, वर्धा

सर्वसम्मत निवेदन

आचार्य विनोबाजी द्वारा बुलाया गया अखिल भारतीय आचार्य सम्मेलन पवनार आश्रम मे १६, १७ और १८ जनवरी, १९७६ को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में राजनैतिक दलों से सम्बंध न रखनेवाले २६ आमन्त्रितो ने भाग लिया, जिनमें कई उपकुलपति, वरिष्ठ प्राध्यापक, ख्याति-प्राप्त न्यायशास्त्री, विशिष्ट रचनात्मक कार्यकर्ता एव प्रसिद्ध साहित्यकार शामिल हुए। विचार-विमर्श के दौरान विभिन्न अवसरो पर सम्मेलन को आचार्य विनोबा की बहुमूल्य सलाह और मार्गदर्शन पानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

देशके अल्पकालीन एव दीर्घकालीन हितो को ध्यान में रखते हुए सम्मेलन ने भारत की वर्तमान स्थिति के विभिन्न पहलुओ पर निष्पक्ष ढंग से एव सतर्कता से विचार किया। सर्वसम्मति से निम्न-लिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

१ विगत घटनाओ के लिए किसी पर दोषारोपण न करते हुए सम्मेलन मानता है कि अब देश के अन्दर की स्थिति को सामान्य रूप देने की प्रक्रिया का आरम्भ करना एव एकता और परस्पर सहयोग के वातावरण का निर्माण करना अति आवश्यक है, ताकि प्रधान मन्त्री के शब्दो मे 'प्रजातन्त्र की गाडी पुन पटरी पर लाई जा सके।' वर्तमान गतिरोध का उचित, सम्मानयुक्त एवं शीघ्र हल प्राप्त करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न किये जाने चाहिये। प्रजातान्त्रिक मूल्यो, तरीको एव सस्थाओ से ही हमारे देशवासियो के सही हितो का सरक्षण हो सकता है और वे ही सम्भाव्य बाह्य खतरो का मुकाबला करने के लिये बडे पक्के साधन है। समय अति महत्वपूर्ण है, क्योकि अनुचित विलम्ब से स्थिति बिगड सकती है और अनिष्ट परिणाम आ सकते हैं। वर्तमान स्थिति के चालू रहने से युवा-पीढी पर होने वाले परिणामो के विषय में सम्मेलन ने विशेष रुप से चिन्ता व्यक्त की।

२ विचार-विमर्श के दौरान सकटकालीन स्थिति की घोषणा के बाद जन-संख्या के गरीब-वर्ग की आवश्यकताओ के प्रति विशेष चिन्ता,

शिक्षा-संस्थाओ में शान्ति, औद्योगिक सम्बधो में सुधार, मुद्रास्फीति पर रोक, तस्करी, जमाखोरी एव काले धन के विरुद्ध सफल कार्यवाही, साम्प्रदायिक, क्षेत्रीय एव भाषा सम्बधी तनावो का अभाव, आर्थिक व्यवस्था तथा प्रशासन मे सुधार आदि अनेक विगत कुछ महीनो में प्राप्त हुई रचनात्मक उपलब्धियो की सम्मेलन ने सराहना की। साथ ही सम्मेलन ने यह भी महसूस किया कि अहिंसा और सर्व-धर्म-समभाव में पूर्ण आशा रखने वाले तमाम सामाजिक एव राजनैतिक कार्यकर्ताओ की नजरबन्दी, नागरिक स्वतन्त्रताओ की काट-छाट, ससदीय कार्रवाइयो सहित प्रेस सेंसर व्यवस्था, राष्ट्र के स्वास्थ्य की दृष्टि से अनिश्चित काल तक जारी रखना वाछनीय नही है।

३ सम्मेलन इस मत का है कि सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में हाल की कुछ प्रवृत्तियों को पलटने का समय आ गया है। आपात् स्थिति की समाप्ति के लिये तथा उससे प्राप्त फायदो को सगठित करने के लिये एक नवीन शुरुआत की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ तस्करी, काला-बाजारी एव कर-वचना जैसी समाज-विरोधी क्रियाओ को रोकने के लिये प्रभावपूर्ण प्रयत्न चालू रहने चाहिये। यथाशीघ्र सामान्य चुनाव कराने क लिये उचित परिस्थितियो के निर्माण हेतु एव सामान्य स्थिति की स्थापना के लिये क्रमबद्ध कदम उठाना जरुरी है। निर्वाचन प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधारों के लिये सर्व-सामान्य एव व्यापक इच्छा को नजर में रखते हुए सम्मेलन आशा करता है कि चुनावो को हर स्तर पर निष्पक्ष, भ्रष्टाचार रहित एव कम खर्चीले बनाने के लिये सभी सम्बन्धित लोगो से आपसी विचार-विनिमय द्वारा आवश्यक सुधारो के लिये निश्चित प्रस्ताव प्रस्तुत किये जायेंगे।

४. सम्मेलन का निश्चित मत है कि हिंसा एव प्रजातात्रिक समाजवाद साथ-साथ नही चल सकते। महात्मा गाधी के प्रेरक मार्गदर्शन में भारतवर्ष ने अपनी स्वतत्रता भी अहिंसात्मक आन्दोलन के जरिये पाई थी। अत हमारे देशवासियो को आत्मानुशासन के रूपमें हिंसा को त्यागने और विध्वसात्मक वृत्तिया को रोकने का फिर से व्रत लेना होगा। राजनैतिक दल, प्रेस, व्यापारी-वर्ग एव अन्य

लोगों को आत्मानुशासन पर आधारित सर्वमान्य आचार-संहिताएं बनाने का प्रामाणिक प्रयत्न करना चाहिये। वस्तुत राष्ट्र-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे उच्च साध्यो की प्राप्ति के लिये केवल नैतिक साधनों को ही इस्तेमाल में लाना चाहिये।

५ समय समय पर सविधान मे सुधार करने के लिये प्रस्ताव सामने आये हैं। यह सभी मानते हैं कि सविधान तेजी से सामाजिक एव आर्थिक विकास के लिये सुविधा प्रदान करे, खासकर हमारे समाज के कमजोर वर्गों के लिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पहले ही कई सशोधन किये जा चुके हैं। अन्य सशोधनो के साथ 'मूलभूत कर्तव्यो' के प्रावधान पर भी विचार किया जा सकता है। जैसे कि प्रधान मंत्री ने हाल ही में घोषणा की है कि सविधान में बुनियादी परिवर्तन देशव्यापी विभिन्न स्तरो पर पूर्ण विचार-विनिमय एव चर्चा के बाद ही किये जाने चाहिये। सम्मेलन आशा करता है कि केन्द्रीय सरकार इस विषय का गहराई से अध्ययन करने के लिये एक व्यापक स्वरुप वाली समिति के गठन पर विचार करेगी और इसकी सिफारिशो को, रचनात्मक रूप की राष्ट्रव्यापी चर्चाओं को प्रोत्साहन देनेकी दृष्टि से, जनता के सम्मुख प्रस्तुत करेगी। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह होना चाहिये कि सत्ता और जिम्मेदारी को निम्नतम स्तर तक दिकेन्द्रित करने के लिए प्रभावशाली साधनों को विकसित किया जाय।

६. यह बडी चिन्ता का विषय है कि स्वतन्त्रता के २८ साल बाद भी हमारे देश के करोडो लोग गरीबी की सीमा-रेखा के नीचे रहते हैं और आवश्यक जीवनोपयोगी चीजें भी नहीं पा रहे हैं। अत. सरकारी एव सार्वजनिक सस्थानो को सम्मिलित रूपसे सभी लोगो को निश्चित काम दिलाने और गरीबो के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने का तुरन्त प्रयत्न करना चाहिये।

'अन्त्योदय'—निम्नतम व्यक्तियों के विकास—की विचारधारा, जिस पर गाधीजी सदैव महत्व देते थे, हमारे राष्ट्रीय नियोजन का मूल आधार बनना चाहिये।

सम्मेलन महात्मा गाधी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप के आदर्श के अभ्युदय एव धनी-वर्ग के उपभोग्य स्तर को नियन्त्रित करने की आवश्यकता पर बल देता है।

७ इसमें दो राय नहीं है कि भारत में जनसंख्या-वृद्धि की तेजी से बढ़ती हुई गति को तीव्रता से रोका जाय। अन्य उपायों के अतिरिक्त देश में सर्वव्यापी जन शिक्षण के द्वारा आत्म नियंत्रण का वातावरण निर्माण करने पर आचार्य विनोबाजी ने कई बार जोर दिया है।

८ आचार्य विनोबा प्रायः कहते है "विज्ञान में शक्ति है, गति है और क्रियाशीलता है, लेकिन दिशा नहीं है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि विज्ञान को अध्यात्म ही दिशा दर्शन प्रदान कर सकता है।" देश को, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, संतुलित विकास की ओर ले जाने के लिये वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का समुचित समन्वय अति आवश्यक है।

९ राष्ट्र को उचित मार्ग से विकसित करने के लिये शिक्षा की वर्तमान पद्धति को जीवन-केन्द्रित बनाना चाहिये, जिससे कि युवा-पीढ़ी को महात्मा गांधी के विचारों के अनुसार उत्पादक और विकासशील कार्यों में प्रवृत्त किया जा सके।

व्यापक गरीबी से सम्बधित व्यापक निरक्षरता को आगामी दशक में एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य के रूप में खत्म करना है। हमारी शिक्षा संस्थाओं को चाहिये कि वे नैतिक-मूल्यों तथा भारत की समृद्ध एवं सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा को आवश्यक महत्वपूर्ण स्थान दें।

राष्ट्र के सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार-उन्मूलन के लिये भी प्रयत्न किये जाना जरुरी है। सम्मेलन आचार्य विनोबा की इस जोरदार दलील का समर्थन करता है कि शिक्षा सरकार के कड़े नियंत्रण एवं राजनैतिक दलों के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त होनी चाहिए।

१० यह सम्मेलन राष्ट्रीय सामंजस्य एवं रचनात्मक सहयोग की प्रक्रिया को गति देने के लिये किसी भी प्रकार से उपयोगी होने में अपने को गौरवान्वित समझेगा।

सम्मेलन आचार्य विनोबाजी से अनुरोध करता है कि इस निवेदन में दिये गये सुझावों को आगे बढ़ाने के लिये, जैसा वे उचित समझें, पथ-दर्शन करें।

❀

अखिल भारत नागरी लिपि सम्मेलन
पवनार आश्रम : २१. २२ फरवरी, १९७६
निवेदन

'नागरी लिपि परिषद्' द्वारा आयोजित अखिल भारत नागरी लिपि सम्मेलन पवनार, वर्धा में दिनांक २१, २२ फरवरी, १९७६ को सम्पन्न हुआ। इसमें देश के सभी भागों से ऐसे विचारकों ने भाग लिया, जो नागरी लिपि को भारत की सभी भाषाओं की एक सह-लिपि, के रूप में विकसित करने में विश्वास रखते हैं। इस दिशा में आगे प्रगति की दृष्टि से विचार-विमर्श हेतु आचार्य विनोबाजी के मार्गदर्शन में दो दिन की बैठकें श्री श्रीमन्नारायणजी की अध्यक्षता में हुईं। इस सम्मेलन में जिन विषयों पर सहमति हुई वे इस प्रकार हैं.

१ संस्कृत की लिपि देवनागरी का स्वीकार :

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से देश में नागरी लिपि को एक अतिरिक्त सहलिपि के रूप में सभी भाषाएं प्रेमपूर्वक स्वीकार करें– यह वांछनीय है। इसके लिये लिपि-सुधार विवाद में अभी न पड़ा जाय, उस ओर प्रयोग जारी रहे, पर जो सर्वमान्य देवनागरी संस्कृत भाषा की लिपि है उसे ही आधार मान कर उसके स्वीकार, प्रचार और प्रसार का काम एक राष्ट्रीय संकल्प की वृत्ति से किया जाय।

२. हर भाषा की नागरी लिपि में पत्रिका :

आचार्य विनोबाजी का यह सुझाव सर्वसम्मति से मान्य है कि भारत की सभी भाषाओं में नागरी लिपि के माध्यम से एक एक पत्रिका चलायी जाय, तथा जहाँ यह प्रयास पहले ही हुआ है, उसको मजबूत बनाया जाय। इस कार्य में जनता के साथ-साथ केन्द्र तथा राज्य सरकारों को पूरा योगदान देना चाहिये। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से ऐसी पत्रिका को राज्य की सभी शालाओं और ग्राम-पंचायतों में पहुँचाने की व्यवस्था राज्य-शासनों द्वारा होना जरूरी है। केन्द्रीय शासन को भी इस प्रकार की पत्रिकाओं को योग्य अनुदान देकर इस महत्वपूर्ण विचार को फैलाने में सहायक होना चाहिये।

३ हर भाषा का चुना साहित्य नागरी लिपि में :

भारत की हर भाषा केवल अपने ही प्रदेश में सीमित न रह कर बाहर भी समझी जा सके और उसके साहित्य का प्रभाव देश की अन्य भाषाओं को भी समृद्ध कर सके, इसके लिये हर राज्य को चाहिये कि वह अपने अच्छे ग्रन्थों तथा रचनाओं को मूल भाषा, पर नागरी लिपि में प्रकाशित कर उसे प्रचारित करने में सहायक हो, जैसा कि पंजाब में गुरुओं की रचनाओं को प्रसारित करने के लिये किया गया है। इस प्रकार सभी राज्य अपनी भाषा के प्रभाव-क्षेत्र को बढाने में सह-लिपि देवनागरी को प्रोत्साहित करके देश की अखण्डता के साथ प्रदेश की भाषा को समृद्ध करने में सहायक हो सकते हैं।

इस कार्य को गतिशील बनाने की दृष्टि से शासन गैरसरकारी प्रकाशन संस्थाओं को आवश्यक आर्थिक सहायता देगा—ऐसी अपेक्षा है।

४ भारतीय भाषाओं को सीखने में नागरी का उपयोग :

भारत में एक-दूसरे की भाषा सीखने में सह लिपि देवनागरी उत्तम माध्यम है और इसका सभी क्षेत्रों में उपयोग होना चाहिये। इसके लिये नागरी लिपि सीखने के सरल उपाय, जैसे सेन्ट्रल इन्स्टिटयूट लेंग्वेजस में विकसित किये गये है, उपयोग मे लाये जा सकते हैं। जो शालायें बहुभाषा भाषी बालकों की हैं उनमें लिपि व भाषा सीखने-सिखाने मे नागरी लिपि का माध्यम उपयोग में लाया जा सकता है। और भी जो भाषा सीखने के केन्द्र है, वहाँ नागरी का उपयोग हो।

५, नई भाषाओं व बोलियों के लिये लिपि नागरी :

देश में जिन बोलियों या भाषाओं के लिये अभी लिपि प्राप्त नहीं हुई है उनको नागरी का ही आधार दिया जाना उचित होगा। ऐसा करने से वे भाषायें भी फलेगी फूलेंगी और उनका माधुर्य दूसरी भाषाओं को प्राप्त होने में सुविधा होगी।

६ अविरोधी भावना से प्रसार :

अतिरिक्त या सहयोगी लिपि के रुप में नागरी के प्रचार में किसी भी प्रकार का जोर-दबाव न वांछनीय है और न आवश्यक। यह कार्य अविरोधी भावना से योग्य प्रोत्साहन देने के लिये किया

जाय । इस कार्य में केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्रालय का भाषा-विभाग, शिक्षा-मंत्रालय, सूचना प्रसारण-मंत्रालय और अन्य सभी विभाग योगदान दे सकते हैं । भाषाओं की एकता और उनकी लिपियों के नैकट्य के बारे में अधिकाधिक जानकारी दी जानी चाहिये । इसके लिये बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से पाठ रखे जाना आवश्यक है । किसी भी बात के स्वीकार के लिये लोकमत बनाना आवश्यक है । ऐसा ही नागरी के सम्बध में भी योग्य है ।

७. विदेशी भाषाओं के सीखने का माध्यम नागरी

संसार के अन्य देशों की भाषाओं को सीखने-सिखाने के जो शिक्षा-केन्द्र हैं, उनमें ध्वनि-परक लिपि के रूप में जो वैज्ञानिकता देवनागरी में है, उसका उपयोग करना चाहिए । इस काम के लिये नागरी लिपि में भाषा-शिक्षा की पुस्तकें तैयार करना जरूरी है ।

८. विश्व-नागरी :

अपनी वैज्ञानिकता के कारण नागरी लिपि ही जोडलिपि का स्थान ले सकती है । अतएव देश में सांस्कृतिक एकता लाने के साथ-साथ एशिया की भाषाओं के बीच सह-लिपि का स्थान नागरी ले सकती है । यह ध्यान में रखकर पूरी शक्ति से इस काम को आगे बढ़ाना चाहिये । इस कार्य के लिये देश के अन्दर की भाषाओं के लिये योजना-बद्ध कार्य हो, और वैसा ही योजनापूर्वक कार्य पडोसी देशों के साहित्य तथा भाषा को नागरी में प्रकाशित करने के लिये किया जाय ।

९. बहुलिपि भाषाओं में नागरी को महत्व दें :

देश की ऐसी भाषायें, जिनके बोलनेवाले एक से अधिक प्रान्तों में फैले हुए हैं, अपनी भाषा के लिये एक से अधिक लिपियों का उपयोग करें, तो उचित ही माना जायगा । पर उन लिपियों में देवनागरी को विशेष महत्व देने पर ध्यान देना चाहिये । उदाहरणार्थ, सिंधी भाषा के लिये यह सुविधा दी जानी चाहिये कि वह देवनागरी में व्यवहारित हो सके । उसकी शिक्षा तथा प्रकाशन संस्थाओं को इसके कारण यदि कोई कठिनाई अनुभव हो, तो वह अविलम्ब दूर की जाय ।

१० परभाषी को नागरी की सुविधा दें :

किसी प्रदेश मे जो दूसरे प्रदेश के भाषा-भाषी लोग आकर रहते हैं, उनको प्रदेश की भाषा सीखने-समझने में तथा व्यवहार करने मे देवनागरी के माध्यम के उपयोग की छूट दी जानी चाहिये । सरकारी व्यापारी और सामाजिक व्यवहार मे यह सोहार्द दिलो को जोडने वाला साबित होगा ।

११ समाचारपत्रो में नागरी का उपयोग :

समाचारपत्रो का कर्तव्य है कि राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से नागरी सहलिपि-विचार को बढावा दे । हर भाषा के पत्र अपनी कुछ सामग्री नागरी लिपि में छापकर नमूने के तौर पर पाठको के सामने रखेंगे, तो यह विचार पनपेगा ।

१२. टेलिप्रिंटरों में नागरी का उपयोग :

भारतीय भाषाओ के लिये नागरी लिपि की उपयोगिता तथा सचार-व्यवस्था मे उपलब्ध आधुनिकतम सुविधाओ को ध्यान में रखते हुए नागरी लिपि परिषद के प्रथम अधिवेशन का यह सुनिश्चित मत है कि देश के विभिन्न केन्द्रो में समाचारो के प्रेषण के लिये नागरी टेलिप्रिंटर का उपयोग आवश्यक एव लाभकर है । परिषद् भारत सरकार के सूचना-मत्रालय से आग्रह करती है कि नवगठित सस्था 'समाचार' को इस बात के लिये राजी करे कि वह प्रारम्भ से ही भारतीय भाषाओं के लिये नागरी टेलिप्रिंटर का उपयोग करे ।

१३ प्रदेश सहयोगी मडल स्थापित हों :

सभी प्रदेशों मे नागरी-प्रसार के लिये नागरी परिषद् के 'सहयोगी मण्डल' स्थापित किये जांय और उन्हें सक्रिय बनाने में पूरी शक्ति लगाई जाय ।

१४ नागरी निधि :

नागरी लिपि कार्य हेतु दस लाख का एक फाउडेशन या ट्रस्ट गठित किया जाय । उसके लिये नागरी लिपि परिषद्, सरकारी और गैरसरकारी सभी स्रोतो मे सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करे ।

रजि० सं० WDA/1 लाइसेंस नं० ४

मुद्रक शंकरराव लोंढे राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा

नयी तालीम

नयी तालीम के शिक्षकों की तैयारी

आचार्यों का अनुशासन

'आप भले, जग भला'

१०+२+३ कहीं हम फिर धोखा न दें?

सयानों की तालीम

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २४] अप्रैल–मई, १९७६ [अंक : ५

व्यावसायिक पाठ्यक्रम तैयार किये जाय जिन्हे पूरा कर कम से कम पचास फीसदी विद्यार्थी उपयोगी रोजगारो मे लग सके और कालिजो में भर्ती होने की कोशिश न करे। ऐसे ही नवयुवक कालिजो व विश्व-विद्यालयो में तीन वर्ष कीउच्च शिक्षा प्राप्त करें जो उसके लिये आवश्यक योग्यता रखते हो।

किन्तु यह चिन्ता का विषय है कि इन दो वर्षों के तकनीकी शिक्षण की ओर राज्य सरकारें आवश्यक ध्यान नही दे रही है। फलत १० वर्ष की माध्यमिक शिक्षा के बाद इन दो वर्षों मे पुराने ढग की ही आर्टस्, कामर्स, विज्ञान आदि की शिक्षा दी जा रही है। महाराष्ट्र जैसे कई राज्यो मे चौदह वर्ष की शिक्षा की जगह पन्द्रह वर्ष का शिक्षा क्रम तो लागू कर दिया गया है किन्तु उससे विद्यार्थियो को लाभ होने के बजाय उनका एक वर्ष का अधिक समय लगेगा और उनके पालको को ज्यादा खर्च उठाना होगा।

दस वर्ष की माध्यमिक शिक्षा में भी कार्य-अनुभव या उत्पादक-श्रम के लिये थोडा ही समय रखा गया है, किन्तु वह भी परीक्षा का विषय नही बनाया गया है। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो को कागज पर स्वीकार तो किया जा रहा है, किन्तु उसका कार्यान्वयन बिलकुल असन्तोषजनक है। हाल ही में केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री प्रो नूरुल हसन ने भी ससद में एलान किया था कि भारत सरकार बुनियादी शिक्षा के उसूलो को मान्य करती रही है। लेकिन उन्होने खेद व्यक्त किया कि राज्य सरकारे इस ओर जरूरी कदम नही उठाती है। हमारी समझ में नही आता कि इस तरह के वक्तव्य देते रहने से क्या लाभ है? जैसे एक बार आचार्य विनोबाजी ने कहा था, शिक्षा सुधार हमारे देश में फुटबाल जैसा एक खेल बन गया है। केन्द्रीय शासन कहता है कि शिक्षा में सुधार की जिम्मेवारी राज्य सरकारो की है, और राज्यो के शासन इस फुटबाल को भारत सरकार के पास वापिस यह कहकर फेंक देते हैं कि इस क्षेत्र में असली पहल तो केन्द्र को ही करनी चाहिये।

हम आशा करते हैं कि प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी अब इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य की ओर स्वयं विशेष ध्यान देनेका समय निकालेंगी

ताकि फुटबाल का यह महगा खेल समाप्त हो और देश म पुरानी और 'निकम्मी शिक्षा का नया रूप शीघ्र ही क्रियान्वित किया जाय। जब खुद प्रधान-मंत्रीजी तीव्रता से महसूस कर रही है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली रोजगार मूलक हो तो फिर अब इस दिशा मे तेज कदम उठाने में देरी क्यो ?

युनिवर्सिटी-डिग्रियाँ और नौकरी :

हाल ही मे दिल्ली मे आयोजित शिक्षा-शास्त्रियोके एक सम्मेलन में भाषण देते हुए प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा -- "यह तो सभी कह रहे है कि यूनिवर्सिटियो की डिग्री का सबध नौकरियो से तोड देना चाहिये, लेकिन किसी ने अभी तक यह नही बताया है कि दूसरा मार्ग कौन-सा हो।" यह पढकर हमे काफीआश्चर्य हुआ, क्योंकि इस बारे में १६७२ के सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन म काफी विस्तार से चर्चा की गई थी और कुछ ठोस सुझाव भी दिये गय थे। इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् दो वर्ष के ऐसे व्यावहारिक पाठ्यक्रम दाखिल किये जाय जिनको पूरा करके हमारे विद्यार्थी तुरन्त काम पर लग जाय और विश्वविद्यालयो की उपाधियो को प्राप्त करने की अनावश्यक कोशिश न कर। युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ वे ही कमायें जिनम उच्च शिक्षा प्राप्त करने की खास काबलियत है, और जिनकी राष्ट्र के विशिष्ट क्षेत्रो में कार्य करने के लिये निश्चित माँग ह।

सेवाग्राम सम्मेलन में यह सुझाया गया था कि १० वर्ष की सामान्य शिक्षा के बाद राज्य सरकार भी दो वर्ष के ऐसे पाठ्यक्रम तैयार कर लें जो उनकी विभागीय नौकरियो में प्रवेश के लिये उपयोगी हो। निजी क्षेत्र की नौकरियो के लिये भी इसी तरह के दो वर्ष वाले पाठ्यक्रम बनाये जा सकते हैं ताकि उन्हें पूरा करने के बाद बहुत से रोजगारो के लिए विश्वविद्यालयो की उपाधियो की आवश्यकता ही न रहे।

इस योजना को सफल बनाने के लिये यह भी सुझाया गया था कि बहुत-सी सरकारी व गैर-सरकारी नौकरियो में प्रवेश करने के हेतु उम्र की एक निश्चित सीमा निर्धारित कर दी जाय जिसके पश्चात यह नौकरियाँ उपलब्ध ही न हो सकें। उदाहरण के लिये यदि यह उम्र

सम्पादक–मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री वजूभाई पटेल

वर्ष २४
अंक ५

अनुक्रम

अप्रैल–मई, '७६

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक मूल्य बारह रुपये है और एक अंक का मूल्य २ रु है
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित औ राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

रोजगार-मूलक शिक्षा

वर्ष : २४
अंक : ५

अप्रैल मास के अन्त में शिलांग की एक विशाल शिक्षक रैली में भाषण देते हुए प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा कि हमारी शिक्षा रोजगार मूलक होनी चाहिये ताकि पढाई समाप्त होते ही नवयुवक राष्ट्रोपयोगी रोजगारो में लगकर देश की प्रगति में सक्रिय भाग ले सकें।

सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने भी लगभग चार वर्ष पहले इसी बात पर जोर दिया था कि भारतीय शिक्षा पद्धति ऐसी हो जिसमें उत्पादक और समाज उपयोगी क्रिया-कलापो द्वारा विद्यार्थियों को हर स्तर पर प्रशिक्षण देने की व्यवस्था हो।

भारत सरकार ने भी सिफारिश की है कि सभी राज्य सरकारें १०+२+३ की नई शिक्षा-पद्धति को अपनावें। कोठारी शिक्षा कमीशन की भी यही राय थी। विभिन्न राज्यों के शासन इस दिशा में कदम भी उठा रहे हैं। किन्तु हमें इसका गहरा खेद है कि इस नये शिक्षा-क्रम का मुख्य उद्देश्य नजर के सामने नही रखा जा रहा है। कोठारी कमीशन ने यह सिफारिश की थी कि १० वर्ष की माध्यमिक शिक्षा के बाद दो वर्ष के ऐसे बहुत-से तकनीकी व

१६ या २० रख दी जाय तो फिर इस प्रकार के रोजगारों को प्राप्त करने के लिये हमारे विद्यार्थी ही युनिवर्सिटी-डिग्री हासिल करने की कोशिश न करेंगे। इस समय तो अधिकांश नवयुवक कालिजों में उच्च शिक्षा इसलिये प्राप्त करते रहते हैं कि उनके सम्मुख कोई निश्चित ध्येय नही है और वे ऊँची कक्षाओ में पढते रहकर अपनी बेकारी की कठोर समस्या को आगे ढकलते रहने का प्रयास करते रहते हैं। लेकिन अगर बहुत तरह की सरकारी व अन्य नौकरियों के लिये १० वर्ष का माध्यमिक शिक्षा के पश्चात दो वर्ष के उपयोगी डिप्लोमा कोर्स तैयार कर दिये जायं और उम्र की सीमा भी बांध दी जाय तो फिर डिग्रियों का मोह अपने आप कम हो जायगा और वर्तमान गोरखधंधा भी काफी हद तक खत्म किया जा सकेगा। विशिष्ट रोजगारों या नौकरियों के लिये विश्वविद्यालय की डिग्रियों की मान्यता कायम रहे इसमें किसी को खास एतराज नही हो सकता है। इस दिशा में भी अगर केवल डिग्री के स्थान पर उम्मीदवारों की वास्तविक योग्यता की प्रत्यक्ष जाँच करने की व्यवस्था की जाय तो कई दृष्टि से लाभदायक रहेगा। इस वक्त विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ जिन गलत तरीकों से हासिल की जा रही हैं उनसे तो खुदा ही बचाये। परीक्षा संबंधी कई तरह के सुधार सुझाये जाते रहे हैं। किन्तु जब तक विद्यार्थियों के दिन-प्रति-दिन के उपयोगी कार्य व शिक्षा का आन्तरिक मूल्यांकन व्यवस्थित ढंग से नहीं किया जायगा और वार्षिक परीक्षा की पुरानी प्रणाली को ही कायम रखा जायगा तब तक विश्वविद्यालयों की डिग्रियों का लगभग यही मजाक जारी रहेगा।

परिवार नियोजन का आन्दोलन :

इन दिनों परिवार नियोजन का आन्दोलन हमारे देश में बड़े जोरों से संचालित किया जा रहा है। हम भी इसे राष्ट्र के विकास व उत्थान के लिये आवश्यक मानते हैं, क्योंकि तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करना निहायत जरूरी है। पूज्य विनोबाजी ने भी कई बार कहा है कि अगर हमारी आबादी इसी रफ्तार से बढती गई तो भूदान और जमीन बाँटने के सभी कार्यक्रम निष्फल हो जायेंगे। किन्तु उनका बल आत्म-संयम पर है, न कि कृत्रिम साधनों पर। वे चाहते हैं कि राष्ट्र

में ब्रह्मचर्य और संयम का ऐसा वातावरण खड़ा किया जाय जिससे देश की जनसंख्या सहज ढंग से काबू में आ जाय।

कुछ राज्यों ने ऐसी योजना बनाई है कि दो या तीन बच्चों के बाद नसबन्दी अनिवार्य कर दी जाय। जहाँ तक हमारी जानकारी है इस प्रकार का लाजमी कानून साम्यवादी देशों में भी लागू नहीं किया गया है। हाँ, यह तो स्वाभाविक है कि शासन की ओर से कई तरह की सुविधायें उन्हीं परिवारों को दी जाय जो कुटुम्ब नियोजन के कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग दें। किन्तु नसबन्दी को कानून द्वारा अनिवार्य बनाना हमारी दृष्टि से उचित नहीं होगा। भारत सरकार ने राज्य सरकारों को सलाह दी है कि वे इस प्रकार का कदम बहुत सोच विचार कर व पूर्व तैयारी के पश्चात ही उठाने का निर्णय करें।

जो हो, यह बिलकुल जरूरी है कि परिवार नियोजन संबंधी जो भी कानून बनाया जाय वह सभी जातियों व धर्मों के लिये हो। उसमें किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय के नागरिकों को छूट देने का प्रयत्न न किया जाय। इस प्रकार के भेद भाव से आम जनता में बड़ी गलतफहमी पैदा होगी जो जनसंख्या को नियंत्रित करने में कई तरह से बाधक सिद्ध होगी।

स्वर्गीय कृष्णदास गांधी :

हमें श्री कृष्णदास गांधी के देहावसान की खबर पाकर बहुत दुःख हुआ है। बुनियादी तालीम के कताई-बुनाई पाठ्यक्रम व पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने में उन्होंने शुरू से ही बहुत परिश्रम किया था। उनका सारा जीवन खादी के विकास के महत्वपूर्ण कार्य में ही लगा रहा। उनकी एकाग्रता अद्भुत थी। खादी के अलावा भाई कृष्णदासजी ने और किसी विषय की ओर कभी देखा ही नहीं। उन्होंने जिस लगन व समर्पण भावना से यह रचनात्मक काम किया वह हम सभी के लिये सदा प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

हम श्रीमती मनोज्ञाबेन व चि. शरद गांधी के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

गांधीजी :

नयी तालीम के शिक्षकों की तैयारी

सेवाग्राम में नयी तालीम के शिक्षकों की तैयारी का काम अगस्त १९४२ से शुरू हुआ। इस सिलसिले में गांधीजीने १ अगस्त को सेवाग्राम में "नयी तालीम—भवन" का उद्घाटन करते हुए कहा था —

"तालीम देनेवालों को तैयार करने के वास्ते एक भवन खोलने के लिये मुझे कहा गया है। इसका नाम 'नयी तालीम भवन' रखा है, उसे ट्रेनिंग स्कूल या ट्रेनिंग कालेज या कोई हिन्दुस्तानी प्रतिशब्द नहीं रखा, यह ठीक भी है। इसको कोई लंबा-चौड़ा नाम नहीं दिया। "भवन" शब्द में सब कुछ आ जाता है और इसमें नम्रता भी भरी पड़ी है।

'बुनियादी तालीम क्या चीज है वह समझाने के लिये यहाँ कुछ तैयारी की गयी है। वह सबने देखी तो होगी, लेकिन सब के कंठ में वह चीज नहीं है। अगर मैं आपको पूछूं कि बुनियादी तालीम की व्याख्या क्या है, तो मुझे शंका है कि आप सब इसमें नापास हो जायेंगे। आप जब इतने लोग आ गये हैं तो मैं आपको कुछ कहूँ कि बुनियादी तालीम किसे कहते हैं— "कोई भी धंधा और दस्तकारी के मार्फत जो तालीम दी जाय वह बुनियादी तालीम है।" यह एक दिन में समझने की वस्तु

नही है। सत्य की शोध (खोज) करते-करते ही बुनियादी तालीम का सच्चा अर्थ निकल आयेगा। हम देखते है कि ईश्वर ने भाषा तो सबको दी है, लेकिन दूसरो को हाथ नही दिये, सिर्फ मनुष्य को ही हाथ दिये है। बच्चा जब जन्म लेता है तभी हाथ-पैर हिलाता है। जन्म से जिस क्रिया का आरम्भ करता है, उसकी मार्फत दी गयी तालीम ही बुनियादी तालीम है।

"जो सत्यस्वरूप ईश्वर है वह क्या देता है ?— भक्तिरूप से अवलंबन देता है। आप लोग जो इस बात को समझ रहे है वे इसको आशीर्वाद करे और इसको मदद करे। मदद माने यहाँ पैसे की मदद नही, आपके पास जो खयालात और शक्तियाँ है वे इस संस्था को पहुँचाते रहें।"

फिरसे १९४४ में "नयी तालीम भवन" मे शिक्षकों की दुसरी टोली भर्ती हुयी। उसका उद्घाटन करते हुए गाँधीजी ने कहा था—

"हिन्दुस्तानी तालीमी संघ मे जो काम चलता है उसका सही नाम है 'नयी तालीम'। और नयी तालीम किस तरह से है वह मै थोडे शब्दो में बता देता हूँ। मै अपने को अनपढ आदमी समझता हूँ और यह जान-बूझकर कहता हूँ कि मै एक अनपढ आदमी हूँ। यह अतिशयोक्ति भी नही है, अल्पोक्ति भी नही।

"आप पूछेंगे कि मै अनपढ कैसे हूँ। मै तो अंग्रेजी ठीक-ठीक बोल लेता हूँ, पढ़ लेता हूँ। मेरी जो मातृभाषा गुजराती है उसे भी मै ठीक-ठीक बोल लेता हूँ, लिख लेता हूँ। मै अखबार चलाता था। जिस राष्ट्रभाषा में मै अभी बोल रहा हूँ, उसमें मै बोलता भी हूँ, लिखता भी हूँ। यह बात सच है कि उसमें व्याकरण का कोई ढंग नही है, लेकिन जिनके सामने बोलता हूँ, उन्हें मै अपना भाव समझा सकता हूँ। फिर मै कैसे कह सकता हूँ कि मै एक अनपढ आदमी हूँ ? मेरा मतलब है कि नयी तालीम के बारे में मै अनपढ हूँ। मैंने नयी तालीम के रूप में पढा नही है!

"मैंने सोचा कि तालीम के बारे में कुछ होना चाहिये। जो तालीम दी जाती थी उससे मेरी नफरत थी। मैं तो कताई-बुनायी का धंदा करता ही था। सही तालीम वह है जो धन्दे के मार्फत दी जाती है— वह भी देहातों में देहाती लोग जो धंदे करते हैं उनकी मार्फत। खेती मैं नही जानता था। कताई का धंदा मैंने वर्षोंसे अपनाया था। यह बात कैसे फैली यह इतिहास में छोड देता हूँ।

' नयी तालीम की संस्था खुली। सातवां साल अभी चल रहा है।

' लेकिन सात से चौदह तक—सात साल में— नयी तालीम का काम पूरा नही होता है। जबसे बच्चा मां के पेट में जन्म लेता है तब से मरने के समय तक जो सिखा सकता है वही नयी तालीमका शिक्षक है। जो सत्य का आग्रह रखता है वह कहता है तो आपको कबूल कर लेना चाहिये कि इसमे मैं एक अनपढ आदमी हूँ।

' अब यह सात साल की बात नही रही। अब तो सारे जीवन-भर में इसका काम है। ऐसी तालीम देना कोई छोटी बात नही है। इसका तजुर्बा किसी को नही है। जो कालेज की पढाई है वह तो दूसरी चीज है। उसमे तो सरकारी डिग्री मिलती है, पैसे मिलते है। अभी तो इसमें पैसे नही मिलने वाले हैं। मुल्क का सारा काम हाथ में आने पर देखा जायगा। तब भी अगर मेरा ख्वाब (सपना) सही हुआ तो आज के जैसा पैसा नही मिलनेवाला है। यह मुल्क उसको बर्दास्त नहीं कर सकता। आज तो एक विदेशी सरकार आकर अपने काम के लिये तालीम दे रही है। उस काम के लिये तो स्कूल कालेज है।

"इस तालीम को लेकर देहातो के काममें पडना है तो ही यह तालीम काम की हो सकती है। इससे भी सादे मकान में बैठकर, पेडो के नीचे बैठकर, मैं आपके साथ बहस कर सकूँ, तो मुझे अच्छा लगेगा। सादगी में भी एक कला है एक ताकत है, वह महलों में नहीं है।

"ये जो चटाईयाँ हैं, जिनपर आप बैठे हैं, ये तो सेवाग्राम में जो गोंड कुटुम्ब हैं उनकी बनाई हुई हैं। इनसे उनको पैसे भी मिल जाते हैं और हमारा ताल्लुक भी उन लोगों से शुरू होता है। मुझे यह अच्छा लगता है। यह जो मिट्टीका बर्तन है, जिसमें फूल रक्खे हैं, यह भी एक गाँवका बर्तन है।

"आप सब, मैं मानता हूँ शहरो से आये हैं बहुत-सी डिग्रियाँ भी हैं। लेकिन यह चीज अनोखी है। यहाँ से यह चीज अपनाकर अपने सूबो में ले जाओगे तो बड़ा काम होगा, नहीं तो, मेरा खयाल है कि, यह चीज यहीं रह जायगी।

"यहाँ जो पढाई है वह सफाई से शुरू होती है। दिलोंकी सफाई प्रार्थना से होती है। हृदय को झाडूसे साफ करना है। वह प्रार्थना चाहे कलमा हो चाहे मन्त्र हो या पारसी मन्त्र हो, कोई भी प्रार्थना हो—वही इबादत है। खुदा के अनेक नाम हैं। जितने आदमी हैं उतनेखुदा के नाम हैं। सबसे बुलंद नाम है सत्य हक। उस नाम से अगर अपने दिल का झाडू निकालो तो भंगी का काम आपने अच्छा किया ऐसा मैं मानूँगा।

"खाना और उसे निकालना दोनों पाक चीज हैं। जो खुदा का नाम लेकर खाते हैं शौक से नहीं खाते, सत्य के नाम लेकर हरेक ग्रास खाते हैं, (डाक्टर जो चाहे कहे) उनका सबका सब हजम हो जायगा। उसकी पखाने में सफाई ही सफाई होगी। यह मुझे मदरसे में किसी ने नहीं सिखाया, किताब में मैंने नहीं पढा। यह मैंने अनुभव से सीखा है।

"जितना काम शरीर में चलता है उतना ही काम देहात में चलता है। हिन्दुस्तान एक बुलद देहात है। सारी दुनिया एक शरीर एक देहात—है। यह कुदरत की रचना है। उसमें हम एक छोटा-सा जन्तु है, उसमें घमंड क्या है? अगर सब जन्तु अकल से काम करते हैं, तो उनकी सच्ची सेवा होती है।"

"आज लाखों का खून बहता है, उससे मुक्त रहना भी इस तालीम का एक काम है। लड़ाई, झूट-फरेब से बरी रहना भी सीखना है। यह भी हमारी जंग है। सत्य की सेना है और असत्य की सेना है। उसके लिये गोला-बारुद नहीं। सबसे बड़ी दौलत उनके पास ईश्वर का नाम है। सारे जगत में वे किसी से डरते नहीं। यदि इतना कमा लें तो बहुत हासिल कर सकते हैं।

अगस्त १९४६ में 'नयी तालीम भवन' में फिरसे शिक्षकों के ट्रेनिंग का काम शुरू किया गया। इस बार गाँधीजी ने फिर आधा घंटा दिया। शिक्षकों की पहचान कराने के बाद गाँधीजी के प्रार्थना की गयी कि वे उन्हें दो शब्द कहें। गाँधी जी ने उनसे कहा —

"आपमें से एक भाई ने मुझे खत लिखा था। उसमें यह शिकायत की गयी थी कि यहाँ हाथ-पैर की मेहनत पर बहुत ही जोर दिया जाता है। मैं मानता हूँ कि ऐसी मेहनत बुद्धि के विकास का अच्छे से-अच्छा जरिया है। हमारे मौजूदा स्कूल और कालेज ब्रिटिश सल्तनतकी ताकत को मजबूत बनाने के लिये हैं। आप में से जिन्होंने उनमें तालीम पायी है, उन्हें वे जरूर अच्छे लगेंगे। उनमें पढनेवाले विद्यार्थियों को कोई यह थोड़े ही पूछता है कि वे रास्तों और पाखानों की सफाई करना जानते हैं या नहीं? लेकिन यहाँ तो सफाई और स्वच्छता आपको एक बुनियादी चीज की तरह सिखाई जाती है। भंगी के काम में भी कला तो है ही। "तद् विद्धि प्राणपातेन परिप्रश्नेन सेवया।" यानी बार-बार पूछकर और विनय या अदब के साथ आपको यह कला सीख लेनी चाहिये। बार-बार पूछने में उजड्डता भी हो सकती है। इसीलिये ज्ञान या इल्म हासिल करने की चाह के साथ अदब यानी नम्रता की भी जरूरत रहती है। तभी बुद्धि के दरवाजे खुलते हैं।

"उपयोगी शरीर-श्रम के जरिये-हमारी बुद्धिका विकास होता है। बुद्धि तो इसके बिना भी बढ सकती है, लेकिन यह बुद्धि का विकास नहीं, बिगाड होगा। उससे हम गुंडे भी बन सकते हैं। बुद्धि के साथ आत्मा और शरीर का भी विकास होना चाहिये। इसीलिये

यहाँ की तालीम में हाथ-पैर की मेहनत को खास जगह दी गयी है। बुद्धि के साथ आत्मा का विकास होने पर बुद्धि का सदुपयोग होता है, वर्ना बुद्धि हम को बुरे रास्ते ले जाती है, और वह ईश्वरी देन के बदले शाप बन जाती है। अगर आप इस चीज को समझ लेंगे तो आपको भेजनेवाली संस्थायें आप पर जो खर्च कर रही हैं, वह बेकार न जायगा और आप अपने काम की शान बढ़ा सकेंगे।"

मेरा सपना

"मेरा सपना तो यह है कि थोड़े अर्से में हमारे गाँवों में धन होगा— लोग सुखी शांत और शरीर में हृष्ट-पुष्ट होंगे। अगर ऐसा न होवे तो नयी तालीम में कुछ दोष होगा।"

— बापू

सच्ची शिक्षा

"सच्ची शिक्षा वही है जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के उत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास कर सके, और उन्हें प्रकाश में ला सके।"

— बापू

'विनोबा :

आचार्यों का अनुशासन

[केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सम्मुख पूज्य विनोबाजी का प्रवचन परंधाम आश्रम, पवनार में १४ अप्रैल, १९७६ को हुआ। नयी तालीम के पाठकों को प्रेरणादायी साबित होगा, ऐसा विश्वास है।]

प्रारम्भ मे केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के अध्यक्ष श्री श्रीमन् नारायण जी ने पूज्य विनोबाजी को लिखकर दिया "केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की विषय-सूची संबंधी सामान्य कामकाजी चर्चा तो हो गई। अब हम आपसे यही निवेदन करना चाहते है कि 'आचार्यकुल' के कार्यकर्ताओं व सदस्यों को किस 'आचार-संहिता' का कडाई से पालन करना चाहिये। इसका स्पष्ट मार्गदर्शन आपकी ओर से प्राप्त हो। 'निर्भय, निर्वैर, व निष्पक्ष' का विस्तृत अर्थ समझाइये।

"आपने बार-बार कहा है कि आप देश व दुनिया में 'आचार्यों का अनुशासन' खड़ा करना चाहते हैं। हम इसका ठीक अर्थ समझना चाहते हैं।"

पूज्य विनोबाजी ने यह नोट पढकर धीरे धीरे, किन्तु पूरे एक घण्टे तक, नीचे लिखा प्रवचन देने की कृपा की :

"निष्पक्ष का अर्थ तो स्पष्ट ही है। देश में एक सरकारी पक्ष है और अनेक विरोधी पक्ष हैं। निष्पक्ष का अर्थ है जिसका इन पक्षों में से किसी पक्ष के साथ मानसिक अनुसंधान नहीं है।

निर्भय का अर्थ भी समझने की जरूरत है। ज्ञानदेव महाराज ने 'निर्भरता' की व्याख्या की है, निर्भय वह है जो किसी से डरता नहीं और जिसे कोई डरता नहीं। गाय को डरता नहीं, इतने भर से शेर निर्भय हो गया, ऐसा नहीं। कोई ऐसा शेर हो जो गाय से डरता नहीं और गाय भी जिसे डरती नहीं तो वह निर्भर शेर है। वैसे प्राणीमात्र भय-ग्रस्त है। मानव को छोड करके दुनिया में एक भी प्राणी नहीं जो

निर्भय है। सब प्राणी एक दूसरे से डरते है। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें कुछ होंगे जो किसी से डरते नही होंगे। लेकिन मानवों के पीछे भी कई प्रकार का डर है। कुटुम्ब का पोषण उन्हें करना होता है, उसमें कई अडचने आती है, पैसा प्राप्त करना होता है, उसमे भी कई अडचनें आती है। फिर भी हमने 'निर्भय' शब्द इस्तेमाल किया है, जो कम्पेअरटिवली किया है, ऐसा ही समझना चाहिये। और यह जो हमने कहा था आचार्यो का अनुशासन, वह हमे कुल दुनिया म खडा करना है। अभी भारत में उसका आरम्भ हुआ है। भारत बहुत बडा देश है। अनेक भाषाएँ, अनेक धर्म इत्यादि के कारण भा त म भी अगर आचार्यों का अनुशासन यानी मार्गदर्शन प्रजा को मिले, उनकी युनानिमस राय प्रजा को प्राप्त हो तो भी बहुत बडा प्रारम्भ होगा। इसलिये कहा कि दुनिया में भी हमको आचार्यों का अनुशासन खडा करना है वास्तव म। क्योंकि दुनिया छोटी हो गई है। बहुत दफा यह दीखता है कि किसी एक देश की समस्या हम हल करगे, दुनिया से अलग रहकरके यह लगभग सम्भव नही होगा। लकिन दुनिया में एक मानव ही ऐसा है जिसकी हजारो भाषाएँ है और सैकडो राज्य है। मेरा ख्याल है, राज्य अलग-अलग राष्ट्र ३०० से कम नहीं होगे। मेरे पास सभी राष्ट्रो की यादी थी, अफगानिस्तान से झाँबिया तक। 'ए' अफगानिस्तान, 'झेड' झाँबिया। इतने सारे राष्ट्रों के राष्ट्र-गीत भी बाबा के पास आए थे। बाबा का राष्ट्र-गीत पर ज्यादा ध्यान रहता है। ३०० देशों के ३०० राष्ट्र-गीत —

'हे मेरे झाँबिया, धन्य है तू।
क्या तेरी हवा, क्या तेरा पानी।'

हवा को पूछा जाय तू झाँबिया की है या कहाँ की? तो हवा कहेगी मैं तो दुनिया में घूमती हूँ। तो हवा दुनियों मे घूमती है। इसका अर्थ राष्ट्रो को अभिमान है, अपनी भाषा, अपना धर्म, अपनी सस्कृति इत्यादि का अभिमान है। उन सारे राष्ट्रो को बडी शक्तियाँ खिला रही है, दो अर्थ में खिलाना चला है। खाना देकर खिला रही है और खेल भी खिलाती है, उनके। इसलिये उन राष्ट्रो में भी आचार्यों का अनुशासन हो सके तो बहुत लाभ होगा।

ऐसा ही एक अनुशासन यू एन ओ है। लेकिन वह आचार्यो का नही है, वह नेताओ का है। भिन्न भिन्न देश के नेता इकट्ठा होकर यू एन ओ बनाया। और यू एन ओ ने क्या किया है ? सब देशों में जहाँ जहाँ लडाइयाँ चलती है वहाँ-वहाँ लड़ाइयाँ न चलें इसलिये यू एन ओ भी अपनी सेना रखता है। रशिया की इतनी सेना है, अमरीका की इतनी सेना है यू एन ओ की भी सेना है। अब मुझे आश्चर्य होता है इतनी सादी अकल उन नेताओ को कैसे नही होती ? यू एन ओ को अगर सेना रखनी ही है तो अमरीका और रशिया से दुगनी सेना रखनी चाहिये थी। लेकिन थोडी सेना रखी है। थोडी सेना रखनी है तो शाँति-सेना रखनी चाहिये थी। मान लीजिये यू एन ओ ७ लाख की सेना रखता है तो बाबा ने ऑफर किया था, भारत दुनिया का सातवाँ हिस्सा है तो १।७ शाँति-सेना (एक लाख शाँति सेना) बाबा भारत की तरफ से देगा। बाबा की यह बात उनके कानो तक पहुँच गई है, बुद्धि तक पहुँची नही है। जगह जगह अगर शाँति-सेना भेजते तो शाँति-सेना के आधार पर झगडा करने वाले राष्ट्र अपना झगडा मिटा सकते हैं। इसलिये मैंने कहा यू एन ओ नेताओं का समूह है आचार्यों का समूह नही है। इसलिये मैंने कहा था फिलहाल दुनिया की बात छोड दीजिये, फिलहाल भारत तक सीमित रख।

बाबा के पास पत्र आते है। वे पत्र बाबा ध्यानपूर्वक पढता है। अगर १०० पत्र होगे तो दक्षिण की चार भाषा के ५-६ पत्र होते है। इतने वे अलग पड गये है, भाषा के कारण, और अभी यूरोप में कॉमन मार्केट की बात चली है। उनको एक लिपि रोमन लिपि मिल जाती है, आधार के लिये। ने कहा था, सारे भारत को हार्दिक रीत से जोडने के लिये उत्तम साधन नागरी हो सकती है। आचार्यों को भी नागरी लिपि का प्रचार करना चाहिये। मैंने तो यहाँ तक भी कहा था कि नागरी आगे जाकर सारे एशिया को भी जोडेगी। तो आपके चिन्तन में यह भी विषय (नागरी का) होना चाहिये।

कुछ लोग मुझे कहते है, आचार्यों के अनुशासन की कल्पना अच्छी है, लेकिन जितना जल्दी हो जाय उतना अच्छा। मैं कहता हूँ जितना अच्छा हो जाय उतना अच्छा कि जल्दी हो जाय तो अच्छा ?

आज जो इमरजन्सी है उसके कारण लोग बहुत तंग आ गए हैं। इंदिर जी कहती थकती नहीं कि हम डेमोक्रेसी कायम रखना चाहते हैं। लेकिन देश के अस्तित्व पर ही प्रहार हो रहा था इसलिये इमरजन्सी आई है। उसके अच्छे भी परिणाम हो सकते हैं बुरे भी परिणाम हो सकते हैं। प्रजा का स्वतन्त्र्य हम कायम रखना चाहते हैं। ऐसा वह बार-बार बोलती है।

आजकल तो आपने पढा होगा पेपर में हर जगह पद-यात्राएँ हो रही हैं भूमि बाटने के लिये। सरकारी जमीन बाँटना और भूदान में जो बची हैं (बाटने की) वह जमीन भी बाटना। हर कोई पदयात्रा आरम्भ कर रहा है। यह भी भारत की महिमा है। एक ही कार्यक्रम भारत में १५–२० भाषाओं के प्रदेशों में चलाने के लिये प्रधान मंत्री से लेकर सामान्य मंत्री तक पदयात्रा में लगे हैं। यह जो दृश्य दीख रहा है पदयात्रा का ऐसा दृश्य कुल दुनिया में कहीं देखने को नहीं मिलेगा। यह अहिंसा की महिमा है। ऐसे तो कई देशों में जमीन बाँटी गई है। लेकिन प्रेमपूर्वक नहीं बाँटी गई है, छीनी गई है। यहाँ प्रेमपूर्वक जमीन बाँटने का जो कार्यक्रम चला उसका असर कुल भारत पर पडा है। आचार्यों को मैंने कई दफा कहा है कि आपको अनेक गाँवों के साथ सम्पर्क करना चाहिये। इन दिनों बहुत सारे लोगों को किसी न किसी कारण से शहर में रहना पडता है और गाँव से अनुसंधान छूट जाता है। जब ये लोग बात करते हैं कुल भारत की समस्या हल करनी है, तब बाबा घबडा जाता है। एक भारत—

७० लाख कलकत्ता
६० लाख बम्बई
३६ लाख दिल्ली
२४ लाख मद्रास

१५–१६ लाख है, हैदराबाद, बगलोर। बारह लाख वाले पूना, नागपुर, कानपुर। इतने बडे बडे शहर और शहरों की अपनी-अपनी समस्याएँ। इसलिये गाँव की तरफ कौन देखे और कौन जाय? गाँवों में पहुँचना ही मुश्किल होता है। अगर हमारे आचार्य और उनके

साथी जो भी होंगे वे ध्यान देंगे तो उनका देहातों में कान्टेक्ट हो जायगा। उनको भी सीखने को बहुत मिलेगा। अभी कुछ लोग मेरे पास आए थे चर्चा करने। भारत में इतनी अव्यवस्था है, परस्पर कटु भावना बढ़ी है। मैंने कहा— 'आप कभी कुंभ मेले में गये हैं क्या?' बोले 'नहीं गये'। कुंभ मेला कभी हरिद्वार में होता है, कभी इलाहाबाद में। और भी कई स्थान हैं जहाँ होता है। एक दफा इलाहाबाद में कुंभ मेला था। ७० लाख लोग वहाँ इकट्ठा थे। पंडित नेहरू ने वह देखा। उनकी आँखों में पानी आ गया। पंडित नेहरू पुरानी पद्धति के धार्मिक नहीं थे। उन्होंने कहा, '७० लाख यानी यूरोप का एक राष्ट्र हो गया। इतने लोग ढोंगी नहीं हो सकते।' आखिर उनकी मृत्यु हुई तब उन्होंने मृत्यु-पत्र में लिख रखा था, शरीर की राख हो जायगी तब उसका थोड़ा हिस्सा गंगा में डाला जाय। कुंभ में किसी का इन्तजाम नहीं होता। दर्शन के लिये क्यू में खड़े रहते हैं। १५-१५ घंटे खड़े रहना पड़ता है, पर शांति से खड़े रहते हैं। यह कुंभ मेला कम से कम २०० साल से चल रहा है। यह है भारत! तो भारत की जनता का दर्शन वहाँ होता है। पंढरपुर में दक्षिण के चार प्रान्त के लोग इकट्ठा होते हैं। पंढरपुर की देवता ऐसी है कि उत्तर भारत के दो-तीन प्रान्त और दक्षिण भारत के चार प्रान्तों को जोड़ती है। इसलिये मैंने आपको कहा कि आपका देहातों के साथ संबंध होना चाहिये।

बहुत लोगों को लगता है हिन्दुस्तान में निरक्षर, अनपढ़ लोग बहुत हैं। उन्हें जितना साक्षर कर सकें उतना करना चाहिये। ऐसा अनेकों को लगता है। और उसके प्रोग्राम भी बनाते हैं। मैंने एक दफा एक लेख लिखा कि साक्षर बनाने के बजाय सार्थक बनाओ। साक्षर बनाने का मतलब इतना ही होगा कि वे पेपर पढ़ सकें। इतने लोग निरक्षर हैं इसीलिये हिन्दुस्तान बिगड़ा हुआ नहीं है। एक दफा हमारा पवनार वाला मनुष्य आया था। कहने लगा, 'कल का रद्दी दीजिये। आज का रद्दी तो आप रख लीजिये। कल का हमें दीजिये।' (हँसी) इसीलिये कबीर ने कहा था, इतने अक्षर पढ़ लो— ढाई अक्षर प्रेम का— प, रे, म। बिहार में मैं घूमता था। वहाँ ऐसी बहनें हैं जो श्री अरविन्द

स भी बढकर है। अपनी कोठडी से (घर से) बाहर निकलती ही नही हैं। उनको मरने पर बाहर निकाला जाता है, क्योकि हिन्दुओ में शरीर को जलाने की विधि है। दफनाने की विधि नही है। दफनाने का विधि होता तो वही अन्दर ही दफनाते। (हसी) लेकिन जलाने का विधि है इसलिये बाहर लाते है। उनको मैंने पूछा—'तुम क्या पढती हो ?' तो कहा—'तुलसी रामायण'! आश्चर्य हुआ कि तुलसी रामायण अनपढ बहनों के हाथ में भी पहुँची। कितना पराक्रम तुलसीदासजी ने किया! और कैसे उत्तर भारत को बचाया। एक दफा पडित नेहरू से बातचीत हो रही थी। उन्होने इतिहास की एक पुस्तक लिखी है। मैंने वह पढी। उसमें लिखा है अकबर नाम का बडा बादशाह हो गया। उसके जमाने में तुलसीदास नाम के एक सत्पुरुष हो गये। उनकी रामायण घर-घर पढी जाती है। मैंने पडित नेहरू से कहा, 'आपकी किताब पढी। तो एक सवाल मेरे सामने खडा हो गया।' बोले, 'पूछिये'। मैंने कहा, 'अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गया कि तुलसीदास के जमाने में अकबर हो गया ?' तो वे हसने लगे और कहने लगे, 'इतिहास लिखने का ऐसा ही ढग आजकल पडा है तो ऐसा ही लिखा गया।'

गाँधीजी की मृत्यु के बाद मेवात-मुसलमानो को बसाने का काम करना था। उनके इदगाह में मैं सभा करता था। दिल्ली से २५ मील दूर पर नूह नाम का गाँव है। वह मोटर-रोड पर है। वहाँ गया। शुक्रवार का दिन था। मस्जिद में मुसलमान नमाज पढने आये थे। वही सभा की। मैंने उनसे पूछा, आपने अकबर बादशाह का नाम सुना है कि नही ? बोले 'नही'। इतना बडा अकबर बादशाह। पर उसका नाम दिल्ली के नजदीक नूह वाले लोगोंने अकबर बादशाह का नाम सुना ही नही था। मैंने पूछा, क्या 'अकबर' लब्ज ही नही सुना ? बोले 'सुना है'। क्या सुना ? बोले 'अल्लाह हो अकबर! अल्लाह हो अकबर!' फिर मुझे उनको एक दोहा सुनाना था कबीर का —

पानी बाढो नाव में
घर में बाढो दाम
दोनो हाथ उलीचिये
यही सयानो काम।

यह कबीर का दोहा सुनाया था। तो कबीर का नाम उन लोगो ने सुना था। यह भारत की जनता है। अनेक बादशाह आये और अनेक बादशाह गये। किसी की कोई सुनी नही भारत ने। सतों की सुनी।

हमारे आचार्य शकर, रामानुज, मध्व, वल्लभ सत थे। ज्ञानी थे। आचार्यवान थे। निरन्तर घूमने वाले थे। शंकराचार्य ने सोलह साल पदयात्रा की, सारे भारत की। कबीर कहाँ नही गया यही सवाल है। कुल भारत मे कबीर अनेक स्थान में गया था, उसकी स्मृति है। तमिलनाडु में कबीर गये थे। गुजरात मे, बडौदा में कबीर वट है। वह निरक्षर था। पढा लिखा नही था। नामदेव घूमे हैं, नानक घूमे हैं, इस प्रकार हिन्दुस्तान के आचार्य और सन्त निरन्तर घूमते ही रहे हैं।

और एक बात। हम महाराष्ट्र में थे। लेकिन बाबा की तालीम बडौदा में हुई। उन दिनो बगाल के पाँच नाम— राजाराम मोहन राय, श्री अरविन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द और रविन्द्रनाथ टैगोर यह पचायतन था। हम मराठी बोलने वाले थे। लेकिन इन पाँचों का उपकार निरन्तर स्मरण करते थे। बाबा पदयात्रा करते-करते बगाल गया। वहाँ देखा गाँव-गाँव में इन पाँचो में से एक का भी नाम मालूम नही था। न रविन्द्रनाथ का, न श्री अरविन्द का, न रामकृष्ण का। बस एक ही चलता था— हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल! चैतन्य महाप्रभु जिस किसी गाँव में गये वहाँ 'हरि बोल'। इसका कारण क्या था? ये लोग शहरो में सीमित थे। और चैतन्य महाप्रभु पदयात्रा करते-करते घूमे। बगाल में तो पैदल घूमे ही थे। पढरपुर भी गए थे। यहाँ से थोडी दूर यवतमाल है। यवतमाल होकर वे पढरपुर गये थे। मथुरा, वृन्दावन, उधर मणिपुर वगैरह, वहाँ भी गए थे। मैंने पूर्व बंगाल की १५–२० दिन पदयात्रा की। तब बंगला देश नही बना था, पाकिस्तान का ही एक हिस्सा था वह, उसे पूर्व पाकिस्तान कहते थे। उन लोगों को भी एक ही नाम मालूम था, केवल चैतन्य महाप्रभु का। यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। एक चैतन्य महाप्रभु, दो महम्मद पैगम्बर और तीन बुद्ध भगवान। ये तीन ही नाम मालूम थे। यह पदयात्रा की महिमा है।

आप कहेंगे कि वह तो पुरानी बात हो गई है। अब तो मोटर है। ठीक है। थोडी हद तक मोटर में जायेंगे और फिर पदयात्रा करेंगे। तो मैं कहता यह था कि भारत की समस्या हम हल करेंगे ऐसा कहते हैं तो बाबा को भय मालूम होता है। यह कहगे कि वर्धा जिले की समस्या हल करेंगे तो ठीक है। इसलिये कहा कि आपका जो रचनात्मक प्रोग्राम है वह एक जिले में करके दिखाइये। इन लोगों ने दो जिले में प्रोग्राम करने का सोचा है— सिर्फ भूदान नही, भूदान के साथ-साथ अन्य रचनात्मक काम, शराबबन्दी आदि। ये आप करके दिखायेंगे तो धीरेनदा ने नाम दिया है, मार्ग खोजन। मार्ग मिलता नही, तो मार्ग मिलेगा।

आप और हम टॉलस्टाय के बारे मे सुनते हैं। आज वह होता तो या तो जेल म होता या देश के बाहर होता। वह आचार्य था। ऐसे थोडे आचार्य दुनिया में मौजूद है। उसके कारण दुनिया का ठीक चित्र आँख के सामने खडा होता है

तुलसीदास ने रामायण म राम के राज्य का थोडे में वर्णन किया है एक कविता म। कहा है —

वैर न कर काहू सन कोई
राम प्रताप विषमता खोई

यह रामायण है। कितने थोडे में सब कुछ आ गया है। 'निर्वैर' का अर्थ आपने पूछा है। (श्रीमनजी की तरफ देखते हुए) आपने किताब लिखी है— हम भले तो जग भला।

सिख लोग सार्वजनिक भजन करते है। आखिर में बडा प्रसाद खिलाते है और बोलते है —

काम क्रोध अरु लोभ मोह
विनसि जाय अहमेव
नानक प्रभु–शरणागति
कर प्रसाद गुरुदेव

काम, क्रोध, लोभ, मोह चित्त से हट जाये इसका अर्थ है निर्वैर। वास्तव में कठिन मामला है। लेकिन तुकाराम ने थोडी सहूलियत कर दी है —

नसे तरी मनी नसो
परि वाचे तरी वसो।

वाणी के द्वारा प्रकाशन न हो। भले मन में आता हो। अब मन में भी किसी का वैर न हो यह तो मामला मुश्किल है। यह भी तुलसी-दासजी ने लिखा है —

रामनाम मणी दीप धरु
जीह दहली द्वार
तुलसी भीतर बाहर
ज्यो चाहसी उजियार

अन्दर और बाहर दोनों जगह प्रकाश चाहते हो तो वणी पर दीपक रखो। दोनो कोठडियों में प्रकाश पडगा। बाहर दुनिया है अन्दर चित्त है। तो वाणी पर तो रखो अपना दीपक!"

ॐ

श्रीमन्नारायण :

'आप भले, जग भला'

[मेरी पुस्तक "आप भले, जग भला" अभी हाल ही में सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का अंतिम निबन्ध 'आप भले, जग भला' यहाँ नीचे दिया जा रहा है।]

एक विशाल काँच के महल में न जाने किधर से एक भटका हुआ कुत्ता घुस गया। हजारों काँचों के टुकडों में अपनी शक्ल देखकर वह चौंका। उसने जिधर नजर डाली, उधर ही हजारों कुत्ते दिखाई दिये। वह समझा कि ये सब उस पर टूट पडेंगे और उसे मार डालेंगे। अपनी भी शान दिखाने के लिये वह भूंकने लगा। उसे सभी कुत्ते भूंकते हुए दिखाई पडे। उसकी ही आवाज की प्रतिध्वनि उसके कानों में जोर-जोर से आती। उसका दिल धडकने लगा। वह और जोर से भूंका। सब कुत्ते भी अधिक जोर से भूंकते दिखाई दिये। आखिर वह उन कुत्तों पर झपटा, वे भी उस पर झपटे। बेचारा जोर-जोर से उछला-कूदा, भूंका और चिल्लाया। अन्त में गश खाकर गिर पडा।

कुछ देर बाद उसी महल मे एक दूसरा कुत्ता आया। उसको भी हजारों कुत्ते दिखाई दिये। वह डरा नहीं, प्यार से उसने अपनी दुम हिलाई। सभी कुत्तों की दुम हिलती दिखाई दी। वह खूब खुश हुआ और कुत्तों की ओर अपनी पूंछ हिलाता बढा। सभी कुत्ते उसकी ओर दुम हिलाते आगे बढे। वह प्रसन्नता से उछला-कूदा, अपनी ही छाया से खेला, खुश हुआ और फिर पूंछ हिलाता बाहर चला गया।

जब मै अपने मित्र को हमेशा परेशान, नाराज और चिडचिडाते देखता हूँ तब इसी किस्से का स्मरण हो जाता है। मैं उनकी मिसाल भूंकनेवाले कुत्ते से नहीं देना चाहता। यह तो हद दर्जे की बदतमीजी होगी। पर इस कहानी से वे चाहें तो कुछ सबक जरूर सीख सकते हैं।

यह दुनिया एक काँच के महल जैसी है। अपने स्वभाव की छाया ही उस पर पडती है। 'आप भले तो जग भला', 'आप बुरे तो जग बुरा।' अगर आप प्रसन्नचित्त रहते है, दूसरो के दोषो को न देखकर उनके गुणो की ही ओर ध्यान देते है तो दुनिया भी आपसे नम्रता और प्रेम का वर्ताव करेगी। अगर आप हमेशा लोगो के ऐबो की ओर देखते है उन्हे अपना शत्रु समझते है और उनकी ओर भूँका करते है तो फिर वे क्यो न आपकी ओर गुस्से से दौडगे ? अंग्रेजी मे भी एक कहावत है कि अगर आप हसग तो दुनिया भी आपके साथ हसेगी, पर अगर आपको गुस्सा होना और रोना ही है तो दुनिया से दूर किसी जगल म चले जाना हितकर होगा।

× × ×

अमरीका के मशहूर नेता अब्राहम लिंकन से किसी ने एक बार पूछा, 'आपकी सरलता का सबसे बडा रहस्य क्या है ?"

उन्होने जरा दर सोचकर उत्तर दिया, "मै दूसरो की अनावश्यक नुक्ताचीनी कर उनका दिल नही दुखाता।"

इसी तरह के प्रश्न का उत्तर देते हुए हेनरी फोर्ड ने कहा था- "मै हमेशा दूसरो के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करता हूँ।"

मेरे मित्र की यही खास गलती है। वे दूसरो का दृष्टिकोण समझने की कोशिश नही करते। दूसरो के विचारो की, कामो की, भावनाओ की आलोचना करना ही अपना परम धर्म समझते है। उनका शायद यह ख्याल है कि ईश्वर ने उन्हें लोगो को सुधारने के लिये ही भेजा है। पर वह यह भूल जाते है कि शहद की एक बूंद ज्यादा मक्खियो- को आकर्षित करती है, बजाय एक सेर जहर के।

दुनिया में पूर्ण कौन है ? हरेक में कुछ न-कुछ त्रुटियाँ रहती है, प्रत्येक व्यक्तिसे गलतियाँ होती है। फिर एक-दूसरे को सुधारने की कोशिश करना अनुचित ही समझना चाहिये। जैसा ईसा ने कहा था, लोग दूसरों की आँखो का तिनका तो देखते है, पर अपनी आँख के शहतीर को नहीं देखते। दूसरो को सीख देना तो बहुत आसान काम है, अपने ही आदर्शों पर स्वयं अमल करना कठिन है।

अगर हम अपने को ही सुधारने का प्रयत्न करें और दूसरो के अवगुणो पर टीका टिप्पणी करना बन्द कर दे तो हमारे मित्र जैसा हमारा हाल कभी नही होगा। अगर हमारा जीवन एक चमकती रोशनी की तरह आकर्षक होगा तो सैकडो-हजारो परवाने बरबस एकत्र होंगे और हमारे जरा-से इशारे पर बडी-से बडी कुरबानी करने के लिये तैयार रहेंगे। पर अधेरे की ओर कौन खिचता है ? वहाँ तो ठोकर खाकर गिर जाने की ही अधिक सम्भावना रहेगी।

× × ×

हाँ, इसी सिलसिले मे एक बात और। आप तो दूसरो की नुक्ताचीनी नही करेंगे, ऐसी उम्मीद है, पर दूसरे ही अगर आपकी नुक्ताचीनी करना न छोडें तो ? मेरे मित्र अपनी बुराई या आलोचना सुनकर आगबूला हो जाते है, भले ही वह दुनिया की दिनभर बुराई करते रहे। पर आपके लिये तो ऐसे मौके पर दादू की पक्तियाँ गुनगुना लेना बडा कारगर होगा —

निंदक बाबा वीर हमारा
बिनही कौडी बहै विचारा
आपन डूबै और को तारे
ऐसा प्रीतम पार उतारे।

और अगर सचमुच कुछ त्रुटियाँ है, जिनकी ओर 'निंदक' हमारा ध्यान खीचता है तो उन अवगुणो को दूर करना हम सभी का कर्तव्य हो जाता है। जिसने उनकी ओर ध्यान दिलाया, उसका उपकार भी मानना चाहिये न ? एक दिन एक सज्जन से कुछ गलती हो गई। हमारे मित्र तुरन्त बिगडकर बोले —

"देखिए महाशय, यह आपकी सरासर गलती है। आइन्दा ऐसा करेंगे तो ठीक नही होगा।" बेचारे महाशयजी बडे दु खी हुए। उनका पूरा अपमान हो गया। मन में क्रोध जाग्रत हुआ और वे बिना कुछ उत्तर दिये ही उठकर चले गए। दूसरे दिन मैंने उनसे एकान्त में कहा, "देखिए, गलती तो सभी से होती है, ऐसी गलती मे भी कर चुका हूँ। दु खी होने का कोई कारण नहीं। आप तो बडे समझदार है। कोशिश

करे तो यह क्या, बडी-से बडी गलतियाँ सुधारी जा सकती हैं। ठीक है न?"

उनकी आँखोंमें आँसू छलछला आए। बडे प्रेम से बोले, "जी हाँ, मैं अपनी गलती मानता हूँ। आगे भला मैं वही गलती क्यों करने लगा! पर कोई मुहब्बत से पेश आवे तब न! आदमी प्रेम का भूखा रहता है, केवल रोटी का नही।"

थोडे से मीठे शब्दो ने अपना काम तुरन्त कर दिया, और अपने व्यवहार में मिठास लाने के लिये एक कौडी भी तो खर्च नही होती, पर पर करोडो दिलो को जीता जा सकता है। सभी के दिल हमारे जैसे ही है। किन्तु दूसरे व्यक्ति का दिल दुखाना, उससे कड़ुवा बोलना एक सज्जन को शोभा नही देता।

× × ×

जब सरदार पृथ्वीसिंह ने हिंसा का मार्ग त्यागकर अपने को बापू के सामने अर्पण कर दिया तब बापू को बहुत खुशी और सन्तोष हुआ। पर बापू जहाँ प्रेम और सहानुभूति की मूर्ति थे, वहाँ बडे परीक्षक भी थे। कुछ दिनो बाद उन्होने पृथ्वीसिंह से कहा, "सरदार साहब, अगर आप सेवाग्राम में आकर मेरे आश्रम मे कामयाबी से रह सकें तभी मैं समझूँगा कि आपने अहिंसा का पाठ सचमुच सीख लिया है।"

पृथ्वीसिंह जरा चौंककर बोले, "आपका क्या मतलब, बापूजी?"

"भाई, मेरा आश्रम तो एक प्रयोगशाला जैसा ही है। जिन लोगो की कही नही बनती, अक्सर वे मेरे पास आ जाते है। उन सबको एक साथ रखने में मैं सीमेंट का काम करता हूँ, और वह सीमेंट मेरी अहिंसा ही है।

"मैं समझ गया, बापूजी! पृथ्वीसिंह ने मुस्कराकर कहा। आगे की कहानी यहाँ कहने की जरूरत नही, पर इसमें बापू के प्रेममय व्यवहार की एक झलक मिल जाती है। उन्होने अपने प्रेम और सहानुभूति से कितने ही व्यक्तियो को अपनी ओर खींचा था। बापू कड़ी-से-कड़ी आलोचना कर सकते थे और करते भी थे, पर हँसकर, मीठी चुटकियाँ लेकर, अपना प्रेम दरसाकर।

अमरीका के मशहूर लेखक इमर्सन की एक घटना याद आती है। उन्हें गाय पालने का शौक था। इसलिये गाय और नन्हें बछडे उनके मकान के पास एक कुटी में रहते थे। एक बार जोर की बारिश आनेवाली थी। सारी गायें तो झोपडी के अन्दर चली गई, पर एक बछडा बाहर ही रह गया। इमर्सन और उनका लडका दोनो मिलकर उस बछडे को पकडकर खीचने लगे कि वह कुटी मे चला आवे, पर ज्यो-ज्यो उन्होने जोर से खींचना शुरू किया त्यों-त्यो वह बछडा भी सारी ताकत लगाकर पीछे हटने लगा। बेचारे इमर्सन बडे परेशान हुए। इतने मे उनकी बुड्ढी नौकरानी उधर से निकली। जैसे ही उसने यह तमाशा देखा, वह दौडी आई और अपना अगूठा बछडे के मुंह में प्यार से डालकर उसे झोपडी की तरफ ले जाने लगी। बछडा चुपचाप कुटी के अन्दर चला गया।

वह अनपढ नौकरानी किताबें और कविताएँ लिखना नही जानती थी, पर व्यवहार कुशल अवश्य थी और जब जानवर भी प्रेम की भाषा समझते है तो फिर मनुष्य क्योकर न समझेंगे ?

× × ×

कल हमारे मित्र का रसोइया भी बिना खबर दिये ही चलता बना। बेचारा करता भी क्या ! सुबह से शाम तक उसको महाशय की डाट ही खानी पडती थी। "तूने आज दाल बिलकुल बिगाड दी। उसमें नमक बहुत डाल दिया।" "अरे बेवकूफ, तूने, साग मे नमक ही नही डाला।" "यह जली रोटी कौन खायेगा, रे ! इत्यादि की झडी लगी रहती थी। जब कोई चीज जरा भी बिगड जाती तब तो उसे दिल खोलकर डाटा जाता। पर अच्छा भोजन बनने पर कभी भी तारीफ के दो शब्द न बोले जाते। "वाह ! तारीफ कर देने से उसका दिमाग चढ जायगा।" मेरे मित्र कह देते। ठीक है ! तो वह भी आदमी है। उसके भी दिल है। बेचारा कुछ रुपये का नौकर यत्र नही बन सकता। तग आकर भाग जाने के सिवा और क्या चारा था ?

क्या आपने कभी खुद खाना पकाना सीखा है ? अगर हाँ, तो क्या आपको याद नही कि रोटी, दाल, साग बनाने पर आपको यह

जानने की कितनी उत्कंठा थी कि भोजन कैसा बना ? और जब आपकी पत्नी ने तारीफ की कि खाना सचमुच बहुत स्वादिष्ट बना है नमक आदि सब ठीक है, तब आपको कितनी खुशी हुई होगी ! अगर कोई कह देता, 'अरे, कुछ जायकेदार नहीं बना,' तो आपके दिल को कितनी चोट पहुँचती !

मित्र महाशय अपनी स्त्री पर भी बिगडते रहते हैं। कभी प्रेम और प्रशंसा के दो शब्द बोलने की वे जरूरत ही नहीं समझते, मानो उनकी स्त्री उनका घर संभालने के लिये एक प्रतिष्ठित नौकरानी हो। उनकी स्त्री का स्वभाव बहुत अच्छा है। बेचारी सब कडी बातें सुन लेती है और सदा अपने पति की भरसक सेवा करते रहना ही अपना धर्म समझती है। पर हमारे दोस्त भी अपने आपको पतिदेव मानने में कभी नहीं चूकते। वह सचमुच स्वयं को अपनी पत्नी का जीवन-साथी समझने के बजाय उसका देव ही मानते हैं और उनका विचार है कि स्त्रियों को हमेशा दबाकर रखना चाहिये, नहीं तो वे फिर सिर पर ही चढने लगती हैं।

कहने का मतलब यह कि किसीसे नहीं बनती— न मित्रों से, न आफिस के कर्मचारियों से, न पत्नी से और न घर के नौकरों से। भगवान् की दया से उनके कोई बच्चा नहीं है, नहीं तो उस बेचारे की भी पूरी शामत ही थी। उनका कहना है कि बच्चों को प्रारम्भ से ही डाट-डपटकर रखना चाहिये, प्यार करने से वे बिगड जाते हैं, पर ईश्वर गंजो को नाखून नहीं देता, यही कुशल है।

उस पर भी मजा यह है कि वे अपनी जिन्दगी और विचारों से पूरी तरह सन्तुष्ट हैं। वे मानते हैं कि उनका जीवन, आचार और विचार आदर्श हैं। दूसरे लोग, जो उनकी प्रतिष्ठा नहीं करते, मूर्ख हैं।

ग्रीस के महान् सन्त सुकरात ने एक बात बडे मार्के की कही थी, "जो मनुष्य मूर्ख है और जानता है कि वह मूर्ख है, वह ज्ञानी है, पर जो मूर्ख है और नहीं जानता कि वह मूर्ख है वह सबसे बडा मूर्ख है।"

अच्छा हो, मेरे मित्र सुकरात के इस विचार को अपने कमरे में लिखकर टाँग लें! पर उनसे यह कहने का साहस कौन करे ?

श्री वंशीधर श्रीवास्तव :

१०+२+३ कहीं हम फिर धोखा न दें?

६ मार्च, १९७६ को, लगभग तीन सौ शिक्षा शास्त्रियों को सम्बोधित करते हुए श्रीमती इन्दिरा गाँधीने अपने भाषणमें "हाथ से काम करके रोजी-रोटी कमा कर अपने कुटुम्बवालों व बालकोंकी हिमायत में जितनी सफाई से बात कही है—उतनी सफाई से आज तक तो किसी शिक्षा-शास्त्री ने कही नही, सिवाय बापू के, जिन्हें आज के शिक्षा-शास्त्री शिक्षा-शास्त्री मानते ही नहीं। उन्होंने कहा कि "मुझे इस बात का दुःख नहीं है कि यह बालक अपने कुटुम्बका उत्पादक सदस्य है और केवल स्कूल में भरती हो जानेसे उसकी स्थिति बेहतर हो जायगी। यह ठीक है कि उसे यह भी बताना चाहिए उसे अपने कुटुबवालों के साथ दूसरों की सहायता करने योग्य भी बनना चाहिए, और इसके लिए उनको लिखना-पढना भी सीखना चाहिए। १०+२+३ की नयी शिक्षा-व्यवस्था के विषय में उन्होंने कहा कि अभी इस पर सबकी सहमति नहीं हुई है, परन्तु व्यापक स्वीकृति इस योजनाके लिए है।" उन्होंने एक बात और भी कही कि ये शैक्षिक सुधार उसी समय किये गये होते, जब देश स्वतन्त्र हुआ था तो अधिक अच्छा होता। अब किससे कौन कहे कि 'बापू' ने तो स्वराज्य-प्राप्ति के १० वर्ष पहले ही शिक्षा में जिस मौलिक सुधार की बात कही थी वह 'इसी उत्पादक बालक' के हिमायत की ही बात कही थी। यही तो कहा कि जो गाँव का या नगर का बच्चा है, उसे एक समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग सिखाया जाय और उसके इर्द-गिर्द ही पढ़ाई का प्रबन्ध किया जाय जिससे बच्चा अपने-माँ-बाप के उद्योग-धन्धे के वातावरण से अलग

न पड जाय। परन्तु हमने—हम शिक्षा-शास्त्रियो ने—बेसिक शिक्षा के वसूलो के साथ खिलवाड किया— "धोखा दिया" और 'बेसिक' एक वदनाम शब्द हो कर रह गया—वह बेसिक जिसके स्वय जान डिवी न प्रोजेक्ट पद्धति से आगे की पद्धति कही थी।

और आज केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री नुरुलहसन, (जो प्रधान मन्त्री के वाद वोले) ने एक वहुत चुभती हुई बात कही। उन्होने कहा कि १०+२+३ की जो यह नई शिक्षा-योजना आ रही है और उसमें कार्य-अनुभव अथवा कार्य शिक्षा को जिस तरह बुना गया है और २० वर्ष के वाद आगे की दो वर्ष की शिक्षा का व्यावसायिक और सामान्य शिक्षा के साथ जिस तरह समन्वय किया गया है, इससे निश्चित ही एक समन्वित व्यक्तित्व का विकास होगा लेकिन रक्षित स्वार्थ इस योजना के साथ भी धोखाघडी न करे तो (टेम्पर न करें)।

कौन है यह रक्षित स्वार्थ? निश्चय वे देश के पूंजीपति और उद्योगपति नही हैं और न देहात के बडे बडे जमीदार। ये हम और आपके वीच के वही तत्व हैं, जिन्होने बेसिक शिक्षा को धोखा दिया और हाथ मे काम करने के दर्शन को दास-श्रम (स्लेव लेवर) कह कर शिक्षा के क्षेत्र से उसके वहिष्कार के लिए आंदोलन चलाया। मैं नही मानता कि आज का यह रक्षित स्वार्थ मर गया है और पुन वह इस व्यवसाय परक शिक्षा माध्यमिक के साथ खिलवाड नही कर रहा है। अभी अभी शिक्षा-अन्वेषण और प्रशिक्षा की राष्ट्रीय परीषद ने १० वर्ष का जो करिन्यूलम नमूने के तौर पर तैयार किया है उससे यह स्पष्ट है कि यह रक्षित स्वार्थ फिर सक्रिय है और अगर शिक्षा मन्त्री और प्रधान मन्त्री ने कुछ नही किया और यह करीक्यूलम देश में चल गया तो न तो बच्चोंको १० वर्ष तक न तो कार्य अनुभव की शिक्षा प्राप्त होगी और न अगले २ वर्षों में किसी को व्यवसायपरक शिक्षा प्राप्त हो सकेगी—ऐसी शिक्षा जिसमे किसी व्यवसाय में दक्षता मिल जाय एन सी ई आर टी द्वारा प्रस्तुत इस करीक्यूलम में कार्य अनुभव अथवा हाथमे काम की शिक्षा और कला के लिए कक्षा १ और दो में १०० पीरिएड में से २५ पीरीएड, कक्षा ३ और ४ में १०० पीरिएड में २० पीरिएड, कक्षा ६ मे ८

तक में कार्य अनुभव के लिए एक सप्ताह के ४८ पीरिएडो में से कुल ५ पीरिएड और कक्षा ९ और १० में हाथ के काम के लिए ४८ घटो में से ५ पीरिएड दिये हैं। इसका मतलब यह हुआ कि कार्य अनुभव को कक्षा ६ से १० तक प्रति सप्ताह कुल ५ पीरिएड दिये गये है। यह कार्य अनुभव के किसी भी सार्थक अध्यापन के लिए अत्यन्त भयावह स्थिति है।

मैंने जीवन भर बेसिक शिक्षण सस्थाओ में काम किया है और मेरा अनुभव है कि जब तक लडके निरन्तर दो पीरिएड किसी काम को नहीं कर पाते तो न तो उन्हें उसका वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है और न उनके द्वारा किसी प्रकार का उत्पादन होता है। लडका हाथ का उत्पादक काम करे और उसे उत्पादन देखने को मिले, तो उसमे एक ऐसी विसम ग्रन्थि (इन फिरियरिटी काम्प्लेक्स) का सृजन होता है, जो जीवन भर के लिए उसके मन मे हाथ के काम के लिए हताशा और घृणा पैदा कर देती है।

अत मेरा सुझाव है कि कार्य-अनुभव को कम से कम प्रति दिन दो पीरिएड दिये जाय।

१०–२–३ की योजना का प्रमुख लक्ष्य आज की माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाना है, जिससे दस वर्ष के बाद लडके अपनी अपनी रुचि के अनुसार दो वर्ष तक में किसी व्यवसाय का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर देश के उत्पादक काम में लगें— तो— खलिहानो— उद्योगों कारखानो में काम करे। इससे विश्वविद्यालय का बोझ हल्का होगा और उसमें भी जो पढेगा उसमें प्रतिभा होगी और वह अध्ययन के लिये रुचिपूर्वक पढेगा।

इसी बात से जुडी हुई एक दूसरे सम्मेलन के सुझावो पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। अभी हाल मे भुवनेश्वर (उडीसा) में बोर्ड आफ सेक्रेटरीज की मीटिंग हुई थी। उनका सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह है कि १०+२+३ की योजना के लिए पर्याप्त धन और साधन तथा प्रशिक्षित अध्यापक का प्रबन्ध किया जाय जिससे यह योजना सफल हो सके। यदि ऐसा नही हुआ तो कार्य-अनुभव १०

वर्ष की सामान्य शिक्षा में ताने वाने की तरह बुना नही जा सकेगा और दूसरी वात जो प्रस्ताव की शकल मे ही कही गया है वह यह है कि अगर कार्य-अनुभव या हाथ क काम को नए पैटर्न का आधार हो। इस कार्य अनुभव शब्द को शायद अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होने अपने आज के प्रस्ताव में स फ साफ कहा है कि यह काम जो करीक्यूलम का अतरग अग होगा, उत्पादक काम होगा। इसके साथ काम की शिक्षा समाज सवा कुछ अन्य रचनात्मक और कलात्मक काम भी शामिल हो और इसको परीक्षा का विषय बनाया जाय।

अब अगर इस काम को इतनी गम्भीरतापूर्वक लिया गया जैसा लेना चाहिए और अगर दसकी नयी शिक्षा योजना को समाजवाद को धोखा नही दना है तो इन काम के लिए कोई भी राज्य (केन्द्र को शामिल करके भी) पर्याप्त साधन नहीं दे सकता। इसके लिए वस एक ही उपाय है— सामुदायिक साधनों का उपयोग। समुदाय के भौतिक साधनो का ही नही बौद्धिक साधना का भी ? आपको विद्यार्थियो को खेतो-खलिहानो— कारखानो और दूकानो म ले जाना होगा। और वहाँ के किसानो— मजदूरा से मदद लेनी होगी। अगर हम को हाथ के काम की शिक्षा— अर्थात उत्पादक-समाजोपयोगी काम की शिक्षा अपन सभी बच्चो को देनी है तो हम सामुदायिक साधनों का उपयोग करना ही पडेगा। और जितनी जल्दी स्कूल को समुदाय का अभिन्न अग बना दिया जाय उतना ही शुभ है। इसको तात्कालिक कार्यक्रम बनाना चाहिए। शैक्षिक अन्वेषण और प्रशिक्षण क राष्ट्रीय परिषद ने जो करीक्यूलम तैयार किया उसमें इसका विस्तार पूर्वक टाइमटेबुल बनाना चाहिए। जब हम समाजवादी बनने का दावा कर रहे है तो देश के प्रत्येक बच्चे को हाथ से उत्पादक काम करना होगा। और स्कूल को देश क सारे रचनात्मक और विकासात्मक कामो से जोडना होगा। प्रगति का कोई दूसरा मार्ग नहा है।

श्रीमती शांता नारुलकर :

सयानों की तालीम

[देशविदेशो में उच्च शिक्षा प्राप्त करके और कई डिग्रीयोसे सम्मानित होनेपर श्रीमती शांता नारुलकर ने अपनी सवायें पूज्य बापू के आदेशानुसार नयी तालीम क्षत्र में जीवन के अन्ततक समर्पित की। स्व शांताबाई नारुलकर ने प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी अपने अनुभवपूर्ण विचार प्रस्तुत लेख मे व्यक्त किये है। —सम्पादक]

प्रौढ-शिक्षा या सयानो की तालीम यह तालीमी दुनियाका एक परिचित शब्द है। इसकी स्पष्ट कल्पना किसी के सामने नही है। इस कामको करने वाले अलग अलग ढग से यह काम कर रहे है। लेकिन एक बात पर सब एक राय है कि प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ हैं साक्षरता, दूसरे शब्दोंमें वही सयाने स्त्री-पुरुष शिक्षित हैं जो लिख-पढ सकते हैं।

लेकिन तालीमि संघ के सामने प्रौढ-शिक्षा की दूसरी कल्पना है। उसने प्रौढ-शिक्षा के क्षेत्र में अपने इस मकसद को सामने रखा है —

"प्रौढ-शिक्षा का मकसद यह है कि खास करके जिन्हें बाकायदा तालीम का फायदा नही है, वे अपनी जाति तथा समाज के एक अंग के तौर पर शुद्ध, सम्पूर्ण और समृद्ध जिन्दगी कैसे बसर करें यह उन्हें सिखाना। यह शिक्षा कोई न कोई उपयोगी देहाती दस्तकारी के जरिये या दूसरी कोई सृजनात्मक, रजनात्मक प्रवृत्ति के जरिये देनी चाहिये। यह शिक्षा जीवन के लिये है और जीवन भर के लिये है। यह शिक्षा देहाती स्त्री-पुरुष के जीवन के हरेक पहलू

स सम्बध रखेगी और उनकी व्यक्तिगत और सामूहिक जिन्दगी के हर वाक़ए का शिक्षा के लिये उपयोग करेगी।"

इस व्याख्या के मुताबिक प्रौढ़-शिक्षा का काम करना आसान नही है। प्रौढ़ माने है एक तैयार व्यक्ति। उसकी आदतें उसके जीवन के साथ गढ़ गई है, उन्हें बदलना आसान नही। इर्द-गिर्द के वातावरण को एकाएक बदला देना असम्भव-सा है। और देहात में तो और भी मुश्किल इसलिये है कि देहाती लोग आमतौर पर रुढि के गुलाम है। क़ानूनी जबरदस्ती से भी काम चलने वाला नहीं है। राष्ट्रीय सत्ता के जरिये अगर कानून भी किया और किसी प्रौढ़ से कहा कि तुम रोजाना एक घंटा पढ़ने आओ नही तो तुम्हें पकड़कर जेल में ले जायेंगे तो वह पहले कानून तोडने की कोशिश करेगा। अगर जबरदस्ती से आ भी गया तो उसका बहुत कुछ फायदा होने-वाला नहीं। इसलिये प्रौढ इन्सान को अगर शिक्षित बनाना है तो उसका एक ही रास्ता है कि उसमें इसकी खुद की इच्छा और लगन पैदा हो। यदि वह खुद चाहे तो अपने जीवन को पलट सकता है—गढ सकता है—नर का नारायण बन सकता है। प्रौढ शिक्षा का काम करने वालों का सब से पहला और बडा काम यही रहेगा कि उसकी सच्ची इन्सानियत को जगा देना है—उसकी मौजूदा हालत रहन-सहन में सुधार करने और उसे शुद्ध और समृद्ध जीवन बिताने की भूख पैदा करती है। जब ऐसे सयाने पुरुष या स्त्री के अन्दर यह भावना होगी जब वह जानेगी कि उसके अन्दर कितनी कुदरती शक्तियाँ सोई पडी है, जब उसमें अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बनने की इच्छा पैदा होगी, तो वह खुद अपने को प्रौढ़-शिक्षा का विषय बना लेगा।

अब यह प्रश्न उठता है कि यह बात कैसे होगी? इसका तरीका क्या रहेगा? प्रौढ़-शिक्षा का काम करने वाले जानते है कि हमें व्यक्ति से ही काम शुरु करना है। व्यक्ति ही समाज की इकाई है। व्यक्ति से कुटुम्ब बनता है और कुटुम्ब से देहात। इसलिये अगर पहले हमारे हाथ में देहात के दो-चार व्यक्ति आ जाते है तो काम बनने में

आसानी होगी। इसको शिक्षा देने के साधन रहेंगे—विधायक प्रवृत्तियाँ जैसे—आरोग्य, सहकारी संस्था, दस्तकारी, साक्षरता, बाल-संगोपन आदि। इन प्रवृत्तियों के द्वारा हम व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे, उनकी शक्तियों का पता हमें लगेगा और तभी हमारे काम की नींव पड़ेगी।

हमें तो हमारे काम के लिये वातावरण पैदा करना है। एक-एक व्यक्ति भी अगर अपने अपने लिये ही सोचना शुरू करे तो कितना काम हो जायेगा। मुझे क्या करना चाहिये ? अपने लिये, कुटुम्ब के लिये, और समाजके लिय मेरी जिम्मेदारी कहाँ तक है ? मेरा स्वास्थ्य, मेरे कुटुम्ब का स्वास्थ्य और गाँव का स्वास्थ्य, इनका परस्पर संबंध क्या है ? इन सब प्रश्नो पर अगर वह सोचना शुरु करे तो इसीके आधार पर हम अपने काम को आगे बढ़ा सकते है। हरेक सयान स्त्री-पुरुष को कुछ हद तक अपना और अपने कुटुम्ब का ख्याल तो रहता ही है। हम इसी से प्रौढ़ शिक्षा का काम शुरू कर सकते है। जिन लोगों के मन मे ऐसे प्रश्न उठते हैं उन्ही से शिक्षा की पहली माँग आना सम्भव है, और यदि एक-एक वह माँग न आए तो उसके लिये हमें कोशिश करनी चाहिये। हम उनसे जाकर वातचीत करें, उन्हे बताये कि क्या स्थिति है और क्या होनी चाहिये। सम्भव है कि वे सोचना शुरू करेंगे, आपसमे चर्चा करेंगे कि यह बात ठीक है या गलत हैं, समझने की कोशिश करेंगे, और फिर इन प्रश्नो को सुलझाने के लिये खुद ही हमारे पास आ जायेंगे। इस तरह वातावरण बनना शुरू हो जायगा। अक्सर ऐसे लोग काम के जानकार रहते है, लेकिन वह अपने ढगसे। हमें तो यह ढग, यह तरीका बदलना है। उन्हे नया ढग—शास्त्रीय ढग—बताकर उनके जीवन में परिवर्तन लाना है—यही हमारी प्रौढ शिक्षा है।

हमारी प्रौढ़-शिक्षा व्यक्ति से शुरू होती है, लेकिन उससे खत्म नही हो जाती। व्यक्ति का जीवन समाजके जीवन का एक कण है और जब छोटे-से-छोटा कण परिपूर्ण होने की कोशिश करेगा तभी उससे शुद्ध और शक्तिमान समाज बन सकेगा। इसलिए हमारी प्रौढ़-

शिक्षा की नींव सहयोग और संगठन पर ही हो सकती है। आजकल सहयोग और सगठन, मजदूर और किसान, इन शब्दों का बहुत उपयोग होता है, लेकिन हमारे आदर्श को प्रौढ़ शिक्षा के काम करनेवालों को समझ लेना चाहिए कि जिन अर्थो मे इन शब्दो का उपयोग होता है वही शुद्ध नही हैं। सहकार और सगठन में तो लड़ाई की बू भी नही आनी चाहिए। अपनी सम्मिलित शक्ति बढ़ाने का यह अर्थ नही होता कि दूसरे के ऊपर धावा करना। जैसे कि एक मनुष्य के लिये यह जरूरी है कि वह खुद इतना शुद्ध और सबल रहे कि कोई उसकी शक्ति का दुरुपयोग न कर सके, उसी तरह एक समाज का भी यह कर्तव्य होता है कि उसकी संघटित शक्ति का कोई दुरुपयोग न करे। यह उस शक्ति का अपमान है। यह शक्ति विधायक काम से बढ़ती है, लेकिन विध्वसक प्रवृत्तियो से उसका नाश होता है। सहयोग का मतलब तो यह है कि सामुदायिक जिम्मेदारी, काम या अधिकार में हरेक व्यक्ति का क्या हिस्सा है, उसे वह समझ ले। इसी की शिक्षा सच्ची प्रौढ़-शिक्षा है। हमारी प्रौढ़-शिक्षा में यही पहला कदम होना चाहिये कि गाँववाले सयाने स्त्री या पुरुष समझ ले कि एक साथ रहने से काम की ताकत बढ़ती है, हरेक का बोझ कम होता है, और समय और धन का खर्च कम होता है। अगर इन्सान को ' शुद्ध सपूर्ण और समृद्ध जिन्दगी " बसर करना है तो उसे सामुदायिक जीवन में कुछ न कुछ हिस्सा लेना जरूरी है। और अच्छे समाज को बनाने में उसे और उसके कुटुम्ब को कुछ न कुछ हाथ बँटाना है। जब हम यह समझाने में सफल होंगे तभी हम व्यक्ति और समाज के विकास के लिए कुछ कर पायेंगे।

हमने ऊपर बताया ही है कि प्रौढ़-शिक्षा का काम हमें व्यक्ति से शुरू करके समाज तक पहुँचाना है और यह भी कोई न कोई विधायक प्रवृत्ति के जरिये ही हो सकता है। यह सहयोग के सिद्धान्त पर ही होना चाहिये, क्योंकि ऐसे सहयोगी काम के आधार पर ही भावी सहयोगी समाज की इमारत खड़ी होगी। ऐसी ही कुछ सहयोगी प्रवृत्तियाँ ये हैं—सहकारी दुकान, धान्य कोठी, ग्राम-उद्योग, गाव-सफ़ाई, गांव का आरोग्य और सहयोगी मकान बनाने की सस्था।

हरेक देहात में दो-चार बुजुर्ग लोग रहते है, जो देहात की देख-भाल और मदत करते है। लेकिन मौजूदा हालत मे ऐसे बुजुर्ग भी अपने-अपने स्वार्थ को आगे बढाने में ही अपनी बुजुर्गी का उपयोग करते है।| गरीब और लाचार इनके पास सलाह के लिये जाते है, उनको य कुछ मदद भी देते है और साथ ही उसका उपयोग अपने स्वार्थ-साधन में कर लेते हैं, जिससे देहात के जीवन में हरदम झगडे और दल-बन्दी चलती रहती है और आपस का मन-मुटाव व नासमझी समाज में बढती जाती है। यदि ऐसे बुजुर्गो में से एक-दो को हम अपनी तरफ खीच सक, वे हमारे काम में सहानुभूति रखे और अपना कदम हमारी तरफ उठाना शुरू करें, तो पूरा देहात हाथ में आने में कोई मुश्किल न होगी।

मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है पिछले दो सालो के काम के अनुभव की बुनियाद पर ही लिखा है। ऊपर लिखे हुए ध्येय के मुताबिक ही सेवाग्राम में प्रौढ शिक्षा के काम का प्रयोग चल रहा है। अब तक जो कुछ काम हुआ है और उसमें गाँववालों ने जो कुछ हिस्सा लिया है, वह कोई मुनाफे की आशा से नही, क्योकि किसी को इस काम के लिये कोई वेतन नही मिलता

—क्रमश:

*

Shri Vajubhai Patel

IDEAS AND PRACTICES THAT SHOULD GOVERN NEW EDUCATIONAL SET-UP IN OUR COUNTRY.

(The Vinay Bhavan – Vishwa Bharati University, Santiniketan had called a U. G. C. sponsored seminar on 23–24–25 of March 1976 at Santiniketan to discuss 'Education of the underpriviledged.' A highly motivated group consisting of heads of departments and professors associated with different disciplines like philosophy, sociology, psychology, economics, education in Vishwa Bharati University, Calcutta university, Jamia Milia Islamia, NCERT and Gandhi Shikshan Bhavan, Bombay discussed the present educational set-up against our needs and aspirations and prepared a document that may form a basis to spell further programme and activities to regenerate our educational set-up. The document is given below)

1. As far as educational facilities go, the distiction between "Privileged and under-privileged" should go; because this classification helps perpetuate the already existing imbalance of opportunities between these groups; under the present circumstances it is undoubtedly necessary that some special considerations, measures and reliefs be offered to the "Economically backward group" whatever the caste, tribe or sector they come from.

2. As a corollary to this, a school system like the one recommended by the Kothari Education Commi-

ssion called 'neighbourhood school has to be implemented througout the country There cannot be a parallel system of education – one for the "privileged" and the other for the non/under privileged section'

3 In such a system of education the functional curriculum i e a curriculum based on work, urges, needs and aspirations of the proximal community should be developed and such curriculum should be followed for every child whether he/she belongs to the economically advanced or backward group This implies freedom to School This also implies that the mixed school system or the distinction between so called 'English medium schools or Public Schools or 'Central Schools should be immediately abolished and only one type of school based on socially useful productive work and community need should be established on the state patronag It is the availability of such diverse schooling privileges that are creating an unforunnate elitism and hierarchy in our educational system and 'education for the people which is India s crying need at the moment is being utterly ignored

4 To elevate and enrich the life of the underprivileged and to bring them into the national stream of life there should be simultaneous, co ordnated two pronged attack. School education and adult education should go together For this purpose the school and the community should continuously interact for mutual benefit Moreever, the schools should have the direct responsibility not only for educating the child for integral development but educating the child for developing efficiency for services to the community with a view to ensuring better life in co operative scocial order

5. Education should be less "investment-oriented" and more 'man-oriented that is less money should be spent on infra-structural paraphernalia and more on the direct and primary needs of the partioular sample of the student population.

STRATEGIES:

(a) All grading and examination systems should be abolished and 'collective credit system' should be introduced instead. In all cases children of the age group 6–14 years should not be declared to have failed, because this method is invariably helping the more privileged sector and undutly increasing the system of meritocracy which is directly against India's present policy of democratization of education.

(b) The emphasis should be immediately shifted from 'Class-room orientation' to the 'learners commune system.' This implies that learning will be a collective project of both teachers and the students, and unimaginative dependence on conventional text-books should be discouraged The particular commune will develop their information resources according to its needs.

(c) In all sectors, i. e. primary, secondary and higher or tertiary sector of education both students and teachers must participate in community services like literacy programme, Health and sanitation, cultural and recreational activities and participate in the specific productive system of the particular community. Institutions of higher learning specialy have to justify their existence in terms of their usefulness to the community living around. These institutions have to accept certain responsibliities in regard to the community services like sanitation and cleanliness and participate

in the developmental and service programme both at the planning and execution stages This will be part of curriculum and must not be treated as extracurricular activity

(d) Gandhiji and Tagore's philosophy of education should construct our major principles or guidelines for developing our aducational ideas

In such a system of education the productive common man has to be accepted as a unit for curricualr construction The curriculum would be worked out around the following six areas

(a) Socially useful production work

(b) Community living inside the school promoting heathy and esthetic corporate living

(c) Natural environmret of the place,

(d) Home and neighbourhood,

(e) Community services leading to developmental programmes

(f) Communication skills

It is hoped that the educator and learner should then be able to plan and organise activities on the their urges, capabilities, interests and atitudes

As an outcome it would interlink living, working and learning and will stimulate self directed learning in the learner The curriculum will provide for a built-in-system of evaluation

The behavioral outcomes will be reflected in the following aspects'

1 Inculcation of moral values

2 Health and Hygiene,

3. Communication skills, viz language and number abilities,

4 General knowledge about social and physical environmeent,

5 Domestic skills,

6 Development of producitive skills and attitude to manual labour

7 Improvement in the standard of living,

8 Community consciousness,

9 Grasroot democracy and needed social skills for group living

10 Eradication of social negetive values, capacity to organise and resist exploitation

Akhil Bharat Nai Talim Samiti, Sevagram.

[The minutes of the annual meeting of the Samiti held at Sevagram on 13–4–1976 *are enclosed for publication in Nai Talim Patrika*

The annual meeting of the Akhil Bharat Nai Talim Samiti was called on Tuesday 13th April 1976 at 10–30 A. M at Sevagram but as there was no quorum the meeting was adjourned and was held after half an hour at 11 A M Shri Shriman Narayan presided

The following members were present –

1 Shri Shriman Narayan
2 Shri Pooranchandra Jain
3 Shri Radhakrishna Menon
4 Shri Vajubhai Patel

Miss Marjorie Syke Shri K S Acharlu, Shri Dwarika Singh, Shri K M Manand, Shri V R Mehta, Dr Salamatullah and Shri Banawarilalji had expressed their inability to attend the meeting due to unavoidable reasons

Shri Jugatrambhai Dave had sent a letter dated 10–3–1976 requesting the Samiti to allow him to retire as he had been unable to attend its meetings from time to time His request was accepted

1 The minutes of the Samiti's meeting held at Sevagram on 22–10–75 and 24–10–75 were read and confirmed

2 As matter arising out of the minutes Shri Vajubhai informed the Samiti that he had circulated a copy of the Samitis Resolution of 22–10–75 in regard to 10+2+3 to the Union Ministry of Education and to all State Governments on which further correspondence with the Union Ministry of Education ensued Later on by their letter No 17–27/75–schools 3 of 19th January 1976 they have informed

us that they have recorded our opinion in regard to it.

3 Shri Vajubhai then read his report of the programmes and activities carried out by the Samiti from December 1974 to March 1976. After discussion the report was approved.

4 The Samiti then decided to call the annual Sammelan of Nai Talim workers on 26-28 November 1976 at Sevapuri or any other place that may be decided by Shri Karan Bhai and his colleagues in U. P.

5 Shri Vajubhai then presented the statement of accounts for the year 1975-76 which was approved. The Samiti appointed M/S Kapadia & Co to audit the accounts.

6 The Samiti then took up the budjet estimates for the year 1976-77. After examining the relevant items of expenditure the Samiti approved the following estimates of expenditure for the year 1976-77.

Receipts from endowments from the Ashram Pratisthan :	Rs. 15,000/-
The opening balance on 1-4-1976:	Rs. 158
Expenses on the following items	
Nai Talim Patrika :	Rs. 2,000/-
Sevagram Office :	Rs. 3,000/-
Bombay Office :	Rs. 2,000/-
Library :	Rs. 1,000/-
Discussions including conveyance of participants and the Samiti's members to attend meetings :	Rs. 4,000/-
Annual Sammelan :	Rs. 3,000/-
	Rs 15,000/

7 The Samiti then took up the next item on the agenda namely retirement of $\frac{1}{3}$ of the members and election of members in their place The following seven members were declared retiring when lots were drawn —

1 Shri Narayan Desai
2 Shri Jugatram Dave
3 Shri Manmohan Chaudhari
4 Shri K S Radhakrishna
5 K Muniandi
6 Shri Poornachandra Jain
7 Shri Vajubhai Patel

The following seven members were then elected

1 Shri K Muniandi
2 Shri Pooranchandra Jain
3 Shri Vajubhai Patel
4 Shri D J Hatekar
5 Shri K S Radhakrishna
6 Smt Ramaben Ruia
7 Shri Dattoba Dastane

8 With the permission of the chairman, Shri Vajubhai then raised discussion on the recent speech of the Prime Minister Smt Indiraji While inaugurating the Academicians Forum in New Delhi on 11th April she is reported to have referred to the proposal of delinking degrees from jobs and asked for an alternative suggestion The Samiti after discussion decided to constitute a sub committee of the Chairman, the Secretary and Shri V R Mehta to prepare a suitable draft giving the alternative suggestion

The meeting then terminated with a vote of thanks to the chairman

Vajubhai Patel
Secretary

REPORT :

[Secretary, All India Nai Talim Samiti, Sevagram presented the report of activities and programmes carried out by the Samiti from December 1974 *to March 1976 in the annual meeting of the Samiti held on* 13 4 1976 *as follows—editor]*

The all India Sammelan of Basic Education Workers had been held at Sevagram on 29,30 November and 1st December 1974 It was resolved by the Sammelan (i) to strengthen Nai Talim institutions in all the States and simultaneously (ii) to arrange to revise the Nai Talim curriculum in the light of the existing conditions of life in the country. It was also suggested to make the curriculum functional for all the stages of education

During the course of this period of roughly one and a half years contact was made with all the Nai Talim institutions in the country and an effort made to establish Mandals in different States. So far only the following States have their Nai Talim Mandals.

Gujart Nai Talim Sangha
Bihar Nai Talim Samiti
Tamil Nadu Basic Education Society
Rajasthan Nai Talim Samiti.

Conferences with a view to promote Nai Talim were organised in Tamil Nadu, Andhra, Madhya Pradesh, Haryana, Maharashtra ect. However, Mandals have not been formed in these States. so far.

The Nai Talim Samiti constituted a curriculum committee under the chairmanship of Shri Dwarika Babu to work out the details The committee after several sittings and with the cooperation of Regional Colleges of Education and the NCERT developed general guidelines of a functional curriculum for school classes I to X The Nai Talim Samiti has approved these guidelines and has sent the draft to all the Nai Talim institutions in the country requesting them to send their criticism and comments Schools have also been advised to formulate their own curriculum on the basis of the suggested guideline Since Gujarat is the only State where Basic and Post Basic schools function today though under the general curriculum of the State Board of Secondary Education an effort has been made to enlist the cooperation of Gujarat Nai Talim Sangha in this regard So far the Sangha has not met to consider the proposal

Rajasthan has two autonomous institutions, Banasthali Vidyapith and Vidya Bhavan, Udaipur A proposal has been placed before them to take up the functional curriculum as proposed by the Nai Talim Samiti and both the institutions have agreed to consider the proposal very seriously The Banasthali Vidyapith provides education to girls from pre-primary to post-graduate including teacher education whereas the Vidya Bhavan at Udaipur provides co education upto higher secondary, a Rural Institute and a college of education and also conducts community centres

An effort has also been made to discuss this proposal with several intellectuals in different parts of the country Recently the proposal has been placed before the Vice Chancellor, Vishwa Bharati University, Santi-

niketan who has agreed to consider it not only for its school but also for undergraduate classes of the University. Perhaps it may take quite some time for us to create suitable or favourable climate for an acceptance of this concept.

As regards the financial side of the Nai Talim Samti the prospect is not at all bright. We are short of funds and hence we cannot undertake any programme of research or training or even organise discussions on a wider scale. We manage to conduct our Nai Talim Patrika with difficulty.

April 6, 1976 Vajubhai Patel
Secretary

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान–वृत्त

भारत में यात्रिओ के लिये अनेक दर्शन स्थानोकी तरह सेवाग्राम भी एक प्रेरणादायी दर्शन स्थान हो इसके लिये आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ श्रीमनजी तथा मत्री श्री प्रभाकरजी ने प्रयत्न किये । फलस्वरुप बापू कुटी दर्शनार्थ करीब इस साल ४०,००० दर्शनार्थी आये हैं ।

दो प्रकारके दर्शनार्थी यहाँ आये हैं वह निम्न प्रकार —

१–अपने दूर जगह से खास दर्शन करने के लिये आये हुये ।

२–अन्य कामके लिये वर्धा जात-जाते दर्शन करने हेतु आये हुये ।

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के कार्यको सुसगठित करने के लिये निम्न प्रकार विचार हुआ ।

१–कार्यकर्ताओ के लिये सेवा विधि तैयार की गयी ।

२–जमीन जायदाद को कानूनी सुरक्षित करने हेतु विशेष प्रयास हुआ ।

३–सामाजिक और सास्कृतिक जीवन सुव्यवस्थित करनेका यथा संभव प्रयत्न किया गया । इस साल भिन्न-भिन्न रचनात्मक कार्यकर्ताओ के कुल पाँच शिविर आयोजित किये गये । दो बार अखिल भारत नयी तालीम सगोष्ठी आयोजित की गयी ।

इस साल गाधी तत्वज्ञान अध्ययन हेतु विदेशो से ४६ दर्शनार्थी यहाँ आये । आश्रम की कार्य व्यवस्था समझने के दृष्टि से आदरणीय पुरुषोमें से पू० शिवाजी भावे, पू० काकासाहेब और श्री देवदेजी यहाँ आये ।

बापू के समय से आजतक चलनेवाली प्रार्थना में कुछ दर्शनार्थी उपस्थित रहे और प्रभाविन हुये ।

सेवाग्राम आश्रम—अन्न, सब्जी फल, दूध इत्यादि में करीब-करीब पूर्णत स्वावलबी है । वस्त्र के लिये ४० प्रतिशत कपडा यहाँसे ही उत्पादन होता है । आगे समयानुकूल एक खादी विद्यालय और दूसरी गाखा सस्कार विद्यालय शुरु करने का मानस है । अनेको संस्थाओमें से विद्यार्थी और कार्यकर्ता को यहाँ प्रवेश देने का विचार चल रहा है ।

रजि० सं० WDA/1 लाइसेंस नं० ५

मुद्रक : श्रीधरराव सोवे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

गोपालन सहकारी हो

भारतीय संस्कृति का आदेश

भविष्य के दर्शन की झांकी

प्राणि-मात्र का संरक्षण

'दुर्लभं भारते जन्म'

पुस्तक-समीक्षा

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २४] जून-जुलाई, १९७६ [अंक : ६

वर्ष २४
अंक ६

अनुक्रम

जून-जुलाई, '७६

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अंक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

सर्व सेवा सघ का भविष्य

३० जून और १ जुलाई को लगभग सवा वर्ष बाद सर्व सेवा सघ का अधिवेशन पवनार मे हुआ। अपने उद्घाटन भाषण मे पूज्य विनोबाजी न सुझाया कि सारी परिस्थिति को देखते हुए यही हितकर होगा कि संघ का विसर्जन किया जाय। इस बारे में चर्चा हो, किन्तु अन्तिम निर्णय तभी लिया जाय, जब सब साथी जेल से रिहा हो जायें और अपनी राय जाहिर कर सकें।

वर्ष : २४
अंक : ६

तदनुसार दो दिन तक सघ के भविष्य के बारे मे गभीर चर्चा हुई। कई प्रकार के सुझाव पेश किये गये। चर्चा के दरम्यान यह स्पष्ट दीख पडा कि सदस्यो में आपसी मतभेद के अलावा हृदय-भेद व मन भेद भी हो गया है। आपसी कटुता की वजह से ही विनोबाजी ने यह सलाह दी कि सघ का विसर्जन कर दिया जाय, ताकि सभी कार्यकर्ता अपनी रुचि व मनोवृत्ति के अनुसार विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्य कर सकें। उदाहरण देते हुए उन्होंने समझाया कि पाश्चात्य सभ्यता फूल के गुच्छे की-सी है, जिसमें कई तरह के पुष्पो को रस्सी से बाँध कर एव गुलदस्ता बनाया जाता है। किन्तु भारतीय परम्परा फूलों की माला की संस्कृति है, जिसम

विविध पुष्पो का व्यक्तित्व कायम रखकर प्रेम के अदृश्य धागे के द्वारा एक माला तैयार की जाती है।

पूज्य विनोबाजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जिलो व प्रान्तो में सर्वोदय मडल अपना रचनात्मक कार्य जारी रख सकते है। केन्द्र म सर्वोदय समाज वर्ष में दो बार देश के विभिन्न भागो में सम्मेलन आयोजित करता रहे। इन प्रेम-सम्मेलनो में विविध विषयो पर खुली चर्चा हो, विचारो व अनुभवो का आदान-प्रदान हो, किन्तु कोई प्रस्ताव पारित न किये जायें।

सर्वोदय समाज का जन्म मार्च १९४८ के सेवाग्राम सम्मेलन में हुआ था। उसका नामकरण विनोबाजी ने ही किया था। उसके सदस्य बनने के लिए केवल एक ही शर्त रखी गयी थी— साधन-शुद्धि में श्रद्धा। इस वक्त भी सर्वोदय सम्मेलनो का आयोजन सर्वोदय समाज द्वारा ही किया जाता है। उसका सिर्फ एक सयोजक है, अध्यक्ष या मत्री नही। इसी सस्था या भाई-चारे को मजबूत व व्यापक बनाना कई दृष्टि से हितकर होगा।

सन् १९४८ के सेवाग्राम सम्मेलन में सर्व सेवा सघ को भी स्थापित किया गया था। उसके जनक ऋषि विनोबा ही थे। धीरे-धीरे करीब सभी रचनात्मक सघ उसमें विलीन होते गये, ताकि कार्यकर्ताओ की शक्ति एकत्र होकर समग्र बन सके। सर्व सेवा सघ ने पिछले अठारह वर्षो में कई प्रकार के ठोस कार्य भी किये, जिनमें भूदान-ग्रामदान आन्दोलनो का विशेष महत्व है। चम्बल घाटी में बागियो के समर्पण की प्रक्रिया भी ऐतिहासिक मानी जानी चाहिए। दो वर्ष पहले ही पूज्य विनोबाजी ने आशा प्रकट की थी कि सर्व सेवा सघ पूज्य गाँधीजी की कल्पना का 'लोक सेवक सघ' बन सकेगा और एक हजार वर्ष तक सर्वोदय का जीवन-दर्शन फैलाता रहेगा। किन्तु पिछले दो वर्षो में जो घटनाएँ हुईं, उनसे संघ के सदस्यो में इतनी गहरी दरार पड गई कि अब उसे पाटना लगभग अशक्य हो गया है। हम इस घटना को आपातकालीन स्थिति से भी ज्यादा दु खद व अमगल कार्य समझते है। हमारा विश्वास है कि

यदि गाधी-परिवार एक बना रहता, तो राष्ट्र की वर्तमान दयनीय व चिन्ताजनक स्थिति पैदा ही न होती।

जो हो, अभी भी हमारा यही प्रयत्न होना चाहिए कि कठिन परिस्थिति होते हुए भी सर्वोदय-परिवार की एकता कायम रहे और सर्व सेवा सघ फिर एक शक्तिशाली सस्था के रूप में भारत की रचनात्मक सेवा करता रहे। 'सब को सन्मति दे भगवान।'

गोवध-बन्दी की भूमिका :

भारतीय सविधान की ४८ वी धारा में राज्यो को यह निश्चित आदेश दिया गया है कि वे कृषि और पशु-पालन को वैज्ञानिक ढग से सगठित करने के लिए गोसवर्धन की ओर विशेष ध्यान दें और गायो, बछडे-बछडियो तथा बैलों के वध को बद करें। १९५८ में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय को जाहिर करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि सविधान की धारा के अनुसार गायो तथा बछडे-बछडियो को पूरा सरक्षण देना चाहिए। साथ-ही-साथ उपयोगी बैलो का भी वध बद हो। यह कानून सिर्फ अनुपयोगी बैलो के लिए लागू नहीं होगा।

पिछले पच्चीस वर्षों मे काफी राज्यो ने गोवध सम्बन्धी कानून बनाये हैं—आसाम, बहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाना, पजाब, जम्मू-काश्मीर, गुजरात, उडीसा और कर्नाटक में गोवध कानूनन बंद किया है। महाराष्ट्र में, विदर्भ को छोडकर अन्य क्षेत्रो में गोवध-बदी कानून अभी तक नहीं बनाया गया है। पश्चिम बंगाल में भी इस प्रकार का कानून नही है, सिर्फ कलकत्ते के म्युनिसिपल क्षेत्र में उपयोगी गाय-बैल का वध करना मना है। किन्तु वहाँ भी हर साल हजारो अच्छी नस्ल की गायें कट रही हैं। केरल में अभी तक गोवध सम्बन्धी कोई विशेष कानून नही बनाया गया है, सिर्फ पचायत एक्ट में उपयोगी जानवरो का वध करना मना है। तामिलनाडु के कानून के अनुसार अनुपयोगी बैलो के साथ गायो का भी वध किया जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश के तिलगाना क्षेत्र में निजाम के जमाने से गोवध-बंदी है, किन्तु शेष भाग में इस प्रकार का कोई कानून नही बना है। हिमाचल प्रदेश में अभी तक तो कोई कानून नही है, किन्तु वहाँ गायो को कत्ल न करने की परम्परा

है। यही हाल पूर्वीय क्षेत्र मणिपूर और त्रिपुरा का है। नागालैण्ड में अभी तक इस सम्बन्ध में कोई कानून बनाया ही नही गया है।

यद्यपि विनोबा वहुत वर्षों से समूचे देश मे गोवध-वदी की मांग करते आये हैं। गत २५ अप्रैल को महाराष्ट्र आचार्यकुल सम्मेलन में भाषण देते हुए उन्होने कहा था —

"गोरक्षा का ख्याल रखना होगा। साइस के कारण आज दुनिया छोटी बनी है। इसलिए इधर का असर उधर होता है और उधर का इधर। आप जानते है, अभी 'तेलास्त्र का प्रक्षेपण' हो गया। तेल भेजना वद किया, तो एकदम अमरीका, ब्रिटेन, फ्रान्स सब पर, यहाँ तक कि भारत पर भी उसका असर हुआ। तो हमने गो-शक्ति से ऊर्जा खडी करने की बात बताई, तो जरा शान्ति हुई। गाय के गोबर का गैस प्लाट हो सकता है। गाय का उपयोग कई प्रकार से हो सकता है। गोबर-गैस से ऊर्जा खडी हो सकती है, खाद मिल सकती है। बैल के द्वारा खेती हो सकती है। गाय की मृत्यु के बाद उसके चमडे के जूते बन सकते हैं। गाय का दूध मिल सकता है। इस तरह उसका पूरा उपयोग हो सकता है। इसलिए गोरक्षा पूरी तरह से करें, यह बात बाबा ने बता दी है। आचार्यो को समझना चाहिये कि वे एकांगी नही बन सकते। जो काम वे करेंगे, वह समग्रता से करना चाहिए। जितने भी पहलू उस काम के होंगे, उन सबका स्पर्श होना चाहिये। तो गोरक्षा की जिम्मेदारी भी आचार्यों की है—यह बात समझनी चाहिये।"

तारीख १३ जून को अखिल भारत कृषि-गोसेवा सघ की कार्य-समिति की बैठक को सम्बोधित करते हुए पूज्य विनोबाजीने कहा —

"गोहत्या भारत में न हो, यह भारतीय संस्कृति का आदेश है। भारतीय सविधान में गोहत्या वदी का निर्देश है।

सत्ता कॉंग्रेस ने गाय बछडा अपना चुनाव चिन्ह रखा है।"

विनोबाजी ने यह भी समझाया — "कुरान में यह स्पष्ट आदेश दिया गया है कि हमें कत्ल नही करना चाहिए। बाइबिल में भी सेन्ट पाल का वचन है— "अगर मेरे साथी को मेरा मांसाहार करना बुरा

लगता है, तो मैं मांसाहार नहीं करूँगा।" सिखों के आखिरी गुरु हैं— गोविन्द सिंह। गोविन्द तो गाय को मारनेवाला हो ही नहीं सकता। तात्पर्य यह है कि हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख गोवध बंद करने के पक्ष में हैं। अत सारे देश में गाय की हत्या तो बंद होनी ही चाहिए।"

भारत में गो-संवर्धन का महत्व स्वाभाविक है। राष्ट्रीय आर्थिक संयोजन की नींव कृषि है, और कृषि की रीढ़ की हड्डी गाय और बैल हैं। कुछ वर्ष पहले जब मैं जापान गया था, तब मैंने पाया कि छोटे-बड़े टैक्टरों के स्थान पर वहाँ के किसान गाय और बैल का व्यापक उपयोग करने लगे हैं। पूछने पर जापानी किसानों ने उत्तर दिया— "पहले हम मशीनों और कृत्रिम खादों का अधिक उपयोग करते थे। अनुभव से हमने देखा कि ऐसा करने में हमारी हजारों एकड़ जमीन बरबाद हो गई। अब हम गाय और बैल से खेती करते हैं। ये एक प्रकार से सर्वोत्तम टैक्टर हैं, क्योंकि न तो इनके कल-पुर्जे बदलने की जरूरत होती है, और न किसी मैकेनिक की। इसके अलावा गाय हमें स्वास्थ्यप्रद दूध देती हैं और हमारे खेतों की जमीन को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए उनसे उपयोगी गोबर भी मिल जाता है।" और फिर वहाँ के किसानों ने मुस्कराकर कहा —"साहब, मशीन न तो दूध देती है, और न खाद के लिए गोबर।" भारत में तो हम केवल गायों की पूजा करते हैं, लेकिन उनके विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देते। जापान में गो-पालन बहुत सावधानी से किया जाता है, क्योंकि गाय वहाँ के ग्रामीण जीवन का अविभाज्य अंग बन गयी है।]

आचार्य विनोबाजी की हार्दिक इच्छा है कि उनके अगले जन्म-दिन, ११ सितम्बर के पहले भारत सरकार की ओर से देश भर में गोवध-बंदी का निर्णय घोषित कर दिया जाय। हम आशा करते हैं कि इस सम्बन्ध में भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी और ऋषि विनोबा के बीच शीघ्र ही सीधी बातचीत शुरू होगी, ताकि कोई ठोस निर्णय निश्चित तिथि के पहले ही लिया जा सके। इस विषय को

राजनीतिक दृष्टिसे न देखा जाय, और विरोधी दल पूज्य विनोबाजी की गोवध-बंदी की माँग का राजनीतिक फायदा उठाने का प्रयत्न न करें। इस माँग पर किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ाने की कोशिश भी न की जाय। ऋषि विनोबा की माँग राष्ट्रीयता, संस्कारिता और वैज्ञानिकता से ओतप्रोत है। हमें पूरी श्रद्धा है कि भारत सरकार, सभी राज्य सरकारें और देश की आम जनता इस माँग को इसी दृष्टि से देखेगी।'

शिक्षा की नयी पद्धति :

कोठारी कमीशन ने यह सिफारिश की थी कि दस वर्ष के प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षण के बाद दो वर्ष का उच्च माध्यमिक शिक्षण दिया जाय, जिसमें विद्यार्थियों को तकनीकी व व्यावहारिक पाठ्यक्रमों को पूरा करने का अवसर मिले। कमीशन की यह धारणा थी कि कम से कम पचास फीसदी विद्यार्थी इस प्रकार के व्यावहारिक पाठ्यक्रमों को पूरा करके काम में लग जायें और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने की इच्छा न रखे। जिन नवयुवकों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष योग्यता हो, वे युनिवर्सिटियों में अवश्य जा सकेंगे। अक्टूबर १९७२ में सेवाग्राम में जो राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन हुआ था, उसमें भी इस शिक्षाक्रम को पसन्द किया गया था। भारत सरकार व सभी राज्य सरकारों ने अब इस नयी शिक्षा-पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

किन्तु हमें खेद है कि १०—२—३ के शिक्षाक्रम में बीच के दो वर्ष की ओर आवश्यक ध्यान नही दिया जा रहा है। राज्य सरकारों ने अधिकतर इन दो वर्षों में पुराने ढग के ही आर्टस, साइन्स, कामर्स आदि के पाठ्यक्रम चालू कर दिये हैं और तकनीकी पाठ्यक्रमों के प्रशिक्षण का कोई विशेष प्रबंध नहीं किया जा रहा है। इसका परीणाम यह होगा कि कई राज्यो में विद्यार्थियो को एक वर्ष अधिक अध्ययन करने का खर्च उठाना होगा, लेकिन शिक्षित बेकारों की समस्या का कोई व्यावहारिक हल न निकल सकेगा। कालेजों में प्रवेश के लिये नवयुवकों की भीड़ लगी रहेगी और इस प्रकार यह नयी शिक्षा-पद्धति एक मँहगी विफलता साबित होगी।

कुछ समय पहले केन्द्रीय शिक्षा और ट्रेनिंग की राष्ट्रीय काउंसिल ने 'प्लस टू' पाठ्य-क्रमों को बनवाने के लिये एक विशेष संगोष्ठी दिल्ली में आयोजित की थी। इस संगोष्ठी में कई राज्य सरकारों ने कई उपयोगी सुझाव भी दिये हैं। दरअसल, इस प्रकार की संगोष्ठी दो वर्ष पहले ही आयोजित करनी चाहिए थी। जो हो, हम आशा करते हैं कि अब सभी राज्य सरकारें इस ओर खास ध्यान देंगी, ताकि नयी शिक्षा-पद्धति का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन किया जा सके और हमारी शिक्षा-प्रणाली को एक नयी और उपयोगी दिशा प्राप्त हो।

गोवध-बंदी कानून

[भारत सरकार द्वारा प्राप्त जानकारी से]

१. धारा ४८ के अंतर्गत पूरी गोवध-बंदी है—

१. राजस्थान, २ जम्मू-काश्मीर, ३. पंजाब, ४ हरियाना, ५ चंडीगढ़, ६. उत्तरप्रदेश, ७ दिल्ली, ८ बिहार, ९ मध्यप्रदेश, १० गुजरात, ११ तेलंगाना (आंध्र), १२, विदर्भ-मराठवाडा (महाराष्ट्र,) १३ कर्नाटक, १४ उड़ीसा

२. कानून नहीं है, लेकिन परम्परा से गोवध बंद है

१ आंध्र, २ मणिपुर, ३ हिमाचल प्रदेश, ४ आंदमान-निकोबार, ५. त्रिपुरा

३. आंशिक बंदी

१. पश्चिम-बंगाल २ तामिलनाडु ३ असम, ४ मिझोरम, मेघालय.

४. गोवध-बंदी कानून नहीं

१ केरल, २. महाराष्ट्र, ३. गोवा, ४. पांडेचेरी, ५ अरुणाचल, ६. लखदीव बेट, ७. नागालैंड ८. दादरा-हवेली.

है कि आज हिन्दुस्तान में लाखों पशु मनुष्यको खा रहे हैं। क्योंकि उनसे कुछ लाभ नही पहुँचने पर भी उन्हें खिलाना तो पडता ही है। इसलिए उन्हें मार डालना चाहिये। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें इन निकम्मे पशुओंको मारने से रोकते हैं।

इस हालतमें क्या किया जाये ? यही कि जितना प्रयत्न पशुओं को जीवित रखने और उन्हे बोझ न बनने देने का हो सकता है, उतना किया जाय। इस प्रयत्न में सहयोग का बडा महत्व है। सहयोग अथवा सामुदायिक पद्धति से पशु-पालन करने से —

१ जगह बचेगी। किसानको अपने घरमे पशु नही रखने पडेंगे। आज तो जिस घर मे किसान रहता है, उसी में उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा बिगडती है और घर मे गदगी रहती है। मनुष्य पशु के साथ एक ही घर मे रहने के लिए पैदा नही किया गया है। ऐसा करने में न दया है, न ज्ञान।

२ पशुओंकी वृद्धि होने पर एक घर में रहना असम्भव हो जाता है। इसलिए किसान बछडेको बेंच डालता है और भैंसे या पाडेको मार डालता है, या मरनेके लिए छोड देता है। यह अधमता है। सहयोग से यह रुकेगा।

३ जब पशु बीमार होता है, तब व्यक्तिगत रूपमें किसान उसका शास्त्रीय उपचार नही करवा सकता। सहयोग से ही चिकित्सा सुलभ होती है।

४ प्रत्येक किसान सांड नही रख सकता। सहयोग के आधार पर बहुत से पशुओं के लिए एक अच्छा सांड रखना सरल है।

५ प्रत्येक किसान गोचर भूमि तो ठीक, पशुओं के लिए व्यायाम की, यानी हिरने-फिरने की भूमि भी नही छोड सकता, किन्तु सहयोग के द्वारा ये दोनो सुविधायें आसानीसे मिल सकती हैं।

६ व्यक्तिगत रूप में किसान को घास इत्यादि पर बहुत खर्च करना पडता है। सहयोग के द्वारा कम खर्च में काम चल जायगा।

७. किसान व्यक्तिगत रूप में अपना दूध आसानीसे नही बेच सकता। सहयोग के द्वारा उसे दाम भी अच्छे मिलेंगे और वह दूध में पानी वगैरा मिलाने के लालच से भी बच सकेगा।

८ व्यक्तिगत रूप में किसान के लिए पशुओं की परीक्षा करना असम्भव है, किन्तु गाँव भर के पशुओं की परीक्षा सुलभ है और उनकी नसल के सुधार का प्रश्न भी आसान हो जाता है।

९. सामुदायिक या सहयोगी पद्धति के पक्ष मे इतने कारण पर्याप्त होने चाहिये। परतु सबसे बडी और सचोट दलील तो यह है कि व्यक्तिगत पद्धति के कारण ही हमारी और पशुओं की दशा आज इतनी दयनीय हो उठी है। उसे बदल दें, तो हम भी बच सकते हैं और पशुओं को भी बचा सकते हैं।

मेरा तो विश्वास है कि जब हम अपनी जमीन को सामुदायिक पद्धति से जोतेंगे, तभी उससे फायदा उठा सकेंगे। गाँव की खेती अलग-अलग सौ टुकड़ो में बँट जाय, इसके बनिस्बत क्या यह बेहतर नही होगा कि सौ कुटुम्ब सारे गाँव की खेती सहयोग से करें और उसकी आमदानी आपस मे बाँट लिया करें? और जो खेती के लिए सच है, वह पशुओ के लिए भी सच है।

यह दूसरी बात है कि आज लोगों को सहयोग की पद्धति पर लाने में कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामो में होती है। गो-सेवा के सभी अंग कठिन है। कठिनाइयाँ दूर करने से ही सेवा का मार्ग सुगम बन सकता है। यहाँ तो मुझे इतना ही बताना था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है और यह कि वैयक्तिक पद्धति गलत है और सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातंत्र्यकी रक्षा भी सहयोग को स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक।

हरिजन : १५-२-१९४२

विनोबा :

भारतीय संस्कृति का आदेश :

भारत मे गोहत्या बद होनी चाहिए, इस विषय में बाबा ने दो पत्रक निकाले हैं। वे पत्रक आप सब लोगो ने पढे होगे। इसलिए उस विषय में खास कहने का रहता नहीं। जो कुछ है, वह करने का बाकी है।

नबर एक—गोहत्या भारत मे न हो, यह भारतीय संस्कृति का आदेश है। नबर दो—भारतीय संविधान में गोहत्या-बदी का निर्देश है। नबर तीन—सत्ता कांग्रेस ने गाय-बछडा अपना चुनाव-चिन्ह माना है। ये तीन बातें पर्याप्त हैं गोहत्या-बदी क्यो होनी चाहिए—यह समझने के लिए।

कुछ लोगो का ख्याल है कि मुसलमान खिलाफ जायेंगे। यहाँ तक कि गाधीजी का नाम हमको बताते हैं। इन सज्जनो को मालूम नही है। गांधीजी ने कहा था कि मेरे दो वचनो में फरक मालूम हो, तो मेरा आखिरी वचन प्रमाण मानें। गाधीजी को समझनेवाले जो कुछ लोग होगे भारत में, उनसे इस सिलसिले में बाबा को कम जानकारी नही है। लेकिन, फिर भी बाबा गाधी जी के नाम से कुछ नहीं कहता। बाबा तो अपने को जो ठीक लगता है, वह कहता है। क्योकि जब गाधीजी भगवान के पास गये होंगे, तब भगवान ने उनसे यह नही पूछा होगा कि बाबा ने क्या-क्या गलतियाँ की। और जब बाबा भगवान के पास जायेगा, तब भगवान बाबा से यह नही पूछेगा कि गांधीजी ने क्या-क्या गलतियाँ कीं। कुरान में एक बहुत सुन्दर कहानी है इस विषय में। बहुतो का

मानना है कि मुसलमान शायद खिलाफ जायेंगे। आपको पता है या नहीं, मालूम नहीं। बाबा ने कुरान का जितना अध्ययन किया है, उससे अधिक अध्ययन किया हुआ मौलाना बाबा ने देखा नहीं। बाबा ने जो कुरान का सार निकाला है, उसमे से बहुत सारा बाबा को कंठस्थ है। उसमें साफ बताया है कि हमें गाय कत्ल नहीं करनी चाहिये। गाय का दूध लेना चाहिये, उसका बडा उपकार मानना चाहिये, इत्यादि। ये सारा कुरान म पढ सकते है।

कुछ लोगो का ख्याल है कि क्रिश्चयन लोग इसका विरोध करेंगे। यह गलत ख्याल है। ख्रिस्त धर्मसार, जो बाबा ने निकाला है, उसमे यह स्पष्ट कह दिया है कि 'अगर मेरे साथी को मेरे मासाशन से बुरा लगता होगा, तो जब तक दुनिया है, तब तक मैं मासाशन नही करूँगा।' सेंट पाल बोल रहे है। ये लोग ग्रंथ पढते नही। कुरान सार है, ख्रिस्त धर्म सार है, जपुजी है, जो सिख्खा का उत्तम-से-उत्तम ग्रन्थ है। गोहत्या बदी के लिए इन सबकी सहानुभूति है। सिख्खो के आखिरी गुरु गोविंदसिंह थे। गोविंद यानी 'गो को मारनेवाला नही हो सकता। मै समझता हूँ कि गोविंद नाम रखा तो गाय के लिए कितना आदर था सिख्खो म। लेकिन ये लोग चिंतन-मनन अध्ययन करते नहीं और गांधीजी के नाम स बात कहते है। बल्कि बाबा तो यह जानता है कि आपको जो निर्देश दिया है भारत के सविधान म, उसे सब मुसलमानो ने सपोर्ट (समर्थन) दिया था। मुसलमानो का पूर्ण सपोर्ट उसको मिला।

तात्पर्य, क्या मुसलमान क्या हिन्दू क्या बौद्ध, क्या क्रिश्चयन, क्या सिख, क्या जैन, क्या पारसी, कोई गाय को खाते नही। जैनो ने पूर्ण मासाहार-त्याग की बात की है। यह बहुत बडी बात है। आगे वह करना होगा। भारत को करना होगा, कुल दुनिया को करना होगा। यह बडी देन है जैन धर्म की कुल दुनिया के लिये। लेकिन वह आगे की बात हुई। आज कम से कम बात बोलनी है, तो गाय की हत्या नहीं करनी चाहिए। इसमें किसी को शक नही होना चाहिए।

साराश, नबर एक—गोहत्या-बदी के लिए भारतीय सस्कृति का आदेश है, नबर दो—भारतीय सविधान का निर्देश है, नबर तीन—गाय और बछडा काग्रेसवालो का चिन्ह है।

*   *   *   *

प्रश्न —वर्तमान स्थिति में अखबारो के सम्बध मे आपने समझाया, पर सर्वसाधारण हम सब लोग गोवध-बदी के कार्य म कैसे-क्या सहयोग दे सकते है, यह स्पस्ट रूप से समझना चाहते है।

उत्तर —जो दो परचे निकाले है, वे गाँव-गाँव जाकर बाँटे और जाहिर करे सब दूर, कि सारे भारत मे गोवध-बदी होनी चाहिए। पद-यात्राओ के जरिये गाँव-गाँव पहुँचें। मोटर से भी जा सकते है रेल से भी जा सकते है, साईकल से भी जा सकते है। जिस किसी तरह से गाँव-गाँव पहुँचें। दो-चार हप्ते की बात है। उतने मे सारे गाँवो में पहुँच सकते है। इतना अपना सगठन व्यापक है।

प्रश्न —शायद सरकार गोवध-बदी जाहिर भी करेगी। परतु जैसे आज भी, जिन प्रातो में गोवध-बदी है, वहाँ के गाय-बछडे, जहाँ गोवध-बदी नही है, ऐसे प्रातो में भेजे जाते है, तो उस गोवध-बदी का कोई अर्थ नही। गायो को विदेश भेजना भी बद होना चाहिए। तभी उस गोवध-बदी का कोई मतलब है।

उत्तर —इसमें जो लिखा है वह ठीक ही है। जैसे एक प्रात से दूसरे प्रात में, भारत से विदेश में गायें भेजना गलत है।

प्रश्न —आपात्कालीन स्थिति हटाने के लिए काम करें, या गोवध-बदी हो—इसलिए काम करें ? पहले कौन-सा काम करें ?

उत्तर —प्रश्न पूछनेवालो को इतना ध्यान में नही आता है कि गोहत्या मूलभूत समस्या है। और आपात्कालीन स्थिति जो है, वह आज नही तो कल, हटनेवाली ही है। वह कायम की रहनेवाली चीज नही है।

प्रश्न —गोवध-बदी या गोवशवध-बदी ?

उत्तर —जो भारत के सविधान में कहा होगा वह। उस सम्बध में सुप्रीम कोर्ट ने न्याय दिया है कि गाय को यानी स्त्रीलिंगी की पूर्ण

रक्षा है और बैल को पूर्ण सरक्षण नही है। निरुपयोगी बैल को काट सकते है, ऐसा सुप्रीम कोर्ट का कहना है। वह बाबा को मजूर नही है, फिर भी बाबा उसके लिए उपवास नहीं करेगा। उपवास तो मिनिमम (कम-से-कम) चीज के लिए करना होता है। तो सुप्रीम कोर्ट का जजमेंट—न्याय—बाबा को मजूर न होने पर भी बाबा उसके लिए उपवास नही करेगा। दुर्बल बैल भी रक्षा के पात्र है, यह बात बाबा के साथी लोगों को समझाते रहेंगे।

प्रश्न —यहां पर मांस न खानेवाले की जमात है, सो आप उन लोगो के भी विचार जाने, जो मांस खाते है।

उत्तर —मासाहार छोडने की बात बाबा नही कर रहा है। सिर्फ गो-मास मत खाओ—कह रहा है। सब प्रकार का मासाहार छोडना चाहिए, यह जैनो का विचार है। वह दुनिया को बडी देन है। लेकिन वह जरा आगे की बात है। फिलहाल, गोमास नही खाना—इतनी ही बात है।

(जून १३, १९७६, अखिल भारत कृषि-गो-सेवा सघ की बैठक में)

❧

गाय से बैल,
बैल से खती;
खेती से प्राणि मात्र का पोषण!
गाय जियें
हम सब जियें।
'सब को सन्मति दे भगवान!'

—जानकीदेवी बजाज

जवाहरलाल नेहरु :

भविष्य के दर्शन की झाँकी :

(पंडित जवाहरलालजी ने पंढरपुर सर्वोदय सम्मेलन के लिए यह संदेश १८ एप्रिल सन् १९५४ को भेजा था।)

जब कि सारे भारत में चारों ओर उद्वेग उत्पन्न हो रहा है, पंचवर्षी योजना के सिलसिले में खेती सुधार करने की, छोटे-बड़े उद्योग खड़े करने की, समाज-सुधार और समाज-कल्याण की प्रवृत्तियों की सरगरमी पैदा हो गई है, राजनैतिक और आर्थिक विवादों की धूम है, भाषा और राज्य-सीमाओं को लेकर विवाद छिड़े हैं, एकता भंग करनेवाली प्रवृत्तियों और एकता का रक्षण करने वाली अपीलों तथा निराशाओं और असहमतियों का जोर-शोर है, जब सारा भारत मानो अपने में प्रबुद्ध है और गतिमान दृश्य में बदल गया है, विनोबाजी की क्षीण काय मूर्ति शक्ति की चट्टान की तरह अडिग, नम्र और विनयशील खड़ी है। उनमें प्राचीन भारत की सामर्थ्य की झलक है और उनकी आँखोंमें भविष्य के दर्शन की झाँकी है। हम तुच्छ व्यक्तियों को यह अधिकार नहीं है कि हम उनके विषय में कोई निर्णय करें, भले ही कई बातों में हमारा उनसे मतैक्य या मतभेद हो, क्योंकि वे ऐसे तुच्छ निर्णयों से परे हैं। गांधीजी और भारत की आत्मा एवं परम्परा का जैसा प्रतिनिधित्व वे करते हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं करता।

हमारे लिये और भारत के लिय यह बडे हित की बात है कि विनोबाजी हमारे बीच है। वे निरन्तर हमको उठाने के लिये सकेत करते है सभी व्यक्तियो— स्त्री पुरुषो क हृदय को स्पर्श करने वाले प्रेम और अनुरोध की भाषा बोलते हैं। सर्वोदय की उनकी कल्पना हम लोगो में से बहुतो को शायद कुछ अटपटी मालूम हो लेकिन मूलत वह शब्द और कल्पना हमार कई शब्दो और कल्पनाओ से कही सुन्दर है। वास्तव में अब तक मैन उस शब्द का प्रयोग करने से अपने आपको इसलिय रोका है कि अपनी समझ म हम उसके योग्य नही है और मै एक उदात्त शब्द तथा कल्पना से अनुचित लाभ नही उठाना चाहता।

विनोबाजी समूचे भारत के है किसी राज्य या प्रान्त को यह अधिकार प्राप्त नही है कि वह भारत के दूसरे हिस्सो को उनसे वचित रखे। फिर भी महाराष्ट्र का यह विशिष्ट गौरवयुक्त अधिकार है कि उसने मानव-जाति के इस सन्त को जन्म दिया।

पढरपुर में होने वाल सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर मै उन्हें अपना अभिनन्दन और अभिवादन भेजता हूँ।

नयी दिल्ली
१५-४-१९५८

अनुशासन और विवेकयुक्त जनतन्त्र
दुनिया की सब से सुदर वस्तु है।

—गाधीजी

प्राणि-मात्र का संरक्षण :

आज तो आणी-वाणी का समय आ गया। कुछ भी करो, गायो को तो बचाना ही है। फिर आगे का आगे जमता जायगा।

आज तो गायें जीयें, विनोवाजी जीय, हम सब जीयें--इसीमे गोवध-बदी की शान है और हम सबका मान है।

हिन्दुस्तान मे हिन्दू-धर्म सनातन काल से चला आ रहा है। गायो से बैल, बैलो से खेती, खेती से *प्राणिमात्र का पोषण।*

जमीन माता अन्न देती है, गाय-बैलो को चारा-पानी देती है। उसी जमीन से कपास मिलता है, कपास से रुई, रुई से कपडा बनता है। तो अन्न और वस्त्र धरती माता ही देती है। पर खेती तो बैलो से ही होती है। उनसे गोबर और गो-मूत्र का खाद जमीन को मिलता है। उसीसे जमीन मे जीवन बना रहता है।

मशीन तो अपने ही तरीके से काम करेगी। यह युग मशीनो का है। तो उनका उपयोग भी ऊसर पडी जमीनो को सुधारने मे ले सकते है, पर छोटी-छोटी जमीनो की खेती तो बैलो से ही सफल हो सकती है। किसानो को धरती माता की तरह गो-माता का भी बडा सहारा रहता है।

गाय को 'कामधेनु' कहते है। काली गाय को कपिला गाय कहते है। कपिला गाय का दूध अधिक गुणकारी माना जाता है, और गाय कामधेनु होने से वह सब की मनोकामना पूरी करती है।

कहते है कि मनुष्य मरता है, तो आगे वैतरणी नदी मिलती है। जिसने गाय की सेवा की होती है और गोदान दिया होता है, वह गाय की पूँछ पकडकर वैतरणी पार कर लेता है। गाय उसे पार करवा देती है। इसलिये मरते वक्त गोदान दिलाते है। उसका बडा पुण्य माना जाता है।

दिलीप राजा ने गाय की बडी लगन से सेवा की, तो उनकी मनो-कामना पूरी हो गई। यह सब तो कथा-पुराणो में सुनते ही हैं।

स्वराज्य मिला, तब से तो अपने नेताओं ने बार-बार गोवध-बन्दी की बात पर बडा जोर दिया है। विशेषज्ञों ने भी यही बात बताई है कि अपने देश के लिये गोवंश की वृद्धि होना जरूरी है। उसीसे खेती सुधरगी और उत्पादन बढ सकेगा।

स्वराज्य मिलने के बाद अब तक हजारों-लाखों दुधारू गायें कत्ल हो गई हैं। इसीसे गाय, बैल मिलना बहुत कठिन हो गया है। उनके दाम भी दिनोदिन बढने जा रहे है, तो किसान खेती कैसे करे? मँहगाई और गरीबी दूर कैसे हो?

अगर अभी गो-वध का सिलसिला, जैसे चला है, वैसे ही चलता रहा, तो अपने देश की हालत गिरती ही जायगी। फिर गरीबी दूर कैसे होगी?

यही सब सोच-समझकर पूज्य विनोबाजी ने ११ सितम्बर तक समूचे देश में गोवध-बदी हो जानी चाहिये—ऐसा संकल्प जाहिर किया है। यह गम्भीर बात है।

गोवंश-वृद्धि होना ही हमारे लिये वरदान सिद्ध होगा। इसलिये विनोबाजी के सकल्प के साथ जनता की भावना और प्रार्थना भी शामिल हो जावे, तो सरकार को भी गोवध-बन्दी की बात सोचने में ज्यादा मदद हो सकेगी।

अपने देश में गोवध बन्द होने का विचार वर्षो से चल ही रहा है। बापूजी ने जमनालालजी को आखिर मे गोसेवा का काम ही सौंपा था। उनके बाद मेरे मन मे दिन-रात गोरक्षा का ही ध्यान तो लगा रहता है, पर यह कैसे हो?

वह काम अब भगवान स्वयं कराना चाहते है—ऐसा लग रहा है। तभी तो राई-रत्ती की तरह से तौलकर सूक्ष्मतम आहार लेने वाले इस युग के ऋषि विनोबाजी को गोरक्षा की ऐसी तीव्र प्रेरणा हुई है। तो अब हम सभी का ध्यान इसी काम में लग जाना चाहिये और गोवंश का सरक्षण जल्दी होना चाहिये।

गोवध तो बन्द अब होना ही चाहिये।

गायें भी जियें और हम सब भी जियें। तभी चारों ओर सद्-भावना फैलेगी। गरीबी दूर होने का रास्ता भी खुलेगा और विनोबाजी की चिन्ता तभी मिट सकेगी।

श्रीमन्नारायण :

'दुर्लभं भारते जन्म' :

विद्यार्थी जीवन में हमें कविवर मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' से राष्ट्रीयता की गहरी प्रेरणा मिली थी। अँग्रेजी कवि लोंगफैलो की भी मशहूर कविता 'दिस इज माई ओन माई नेटिव लैण्ड' हमें कठस्थ थी। इकबाल की ये पक्तियाँ हम सभी गाया करते थे —

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी, वह बोस्ताँ हमारा।।

उन दिनो 'वन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गीत तो अँग्रेजी राज्य के प्रति बगावत का प्रतीक बन गया था। फिर भी वह हरेक की जबान पर रहता था। पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी की 'फूल की चाह' शीर्षक कविता भी बहुत लोकप्रिय बन गई थी —

मुझे तोड लेना वनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जायें वीर अनेक।।

और हमारे देश के सम्बन्ध में तो महाभारत के महाकवि ने हजारो वर्ष पहले ही घोषित किया था— 'दुर्लभं भारते जन्म'। रामायण के कवि-सम्राट वाल्मीकि ने स्वय भगवान राम की वाणी द्वारा मातृभूमि-भक्ति का प्रेरक सन्देश दिया था —

अपि स्वर्णमयी लका, न मे लक्ष्मण रोचते,
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

काठमाण्डू में स्थित नेपाल की राष्ट्रीय रगशाला के सामने ये पक्तियाँ बडे अक्षरो में लिखी हुई थी। हम भी उन्हें बार-बार गुनगुनाते

रहते थे, क्योंकि भारतीय राजदूतकी हैसियत से हमें उस जगह विविध कार्यक्रमो में अक्सर जाने का अवसर मिलता रहता था।

*   *   *   *

राष्ट्र-प्रेम तो सभी देशों के नौजवानो में पाया जाना स्वाभाविक ही है। भारत को स्वराज्य प्राप्त होने के बाद एशिया व अफ्रीका के बहुत-से राष्ट्र जाग उठे और उन्होने परतन्त्रता की जंजीरो को तोड फेंका। आजादी के पिछले इक्कीस वर्ष के बीच दो बार भारत पर चीन व पाकिस्तान की तरफ से आक्रमण हुए। उस समय सारा देश एक मजबूत दीवार की तरह उठ खडा हुआ, किन्तु खतरा टल जाने के बाद हम फिर अपनी छोटी-मोटी समस्याओ व संघर्षों मे फँस जाते हैं और भारत की एकता को गहरी ठेस पहुँचाते हैं। जैसे आचार्य काकासाहब कालेलकर कहा करते हैं, हम एक बडे राष्ट्र के छोटे लोग बन जाते हैं और अशोभनीय व्यवहार करने लगते हैं। हमारे राजनैतिक नेता हमे बार-बार स्मरण दिलाते रहते हैं कि अभी बाहरी आक्रमण का भय दूर नही हुआ है, ताकि हमारी एकता कायम बनी रहे। लेकिन राष्ट्र-प्रेम जगाने के लिए क्या हमे विदेशो के हमलो की राह देखते रहना है? क्या देश की गरीबी व बेकारी की ऐसी जटिल समस्याएँ हमारे सामने नही खडी हैं, जिन्हें परास्त करना हमारा परम कर्तव्य है? और ये मसले तभी हल किये जा सकते हैं, जब हम राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हो।

इसके अलावा प्रत्येक राष्ट्रकी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें हम उस देश की 'आत्मा' या अँग्रेजी में 'जीनियस' कहते हैं। किसी राष्ट्र में कला व साहित्य की विशेष प्रतिभा दिखलाई देती है, कही क्रीडा, खेल-कूद व 'एडवेन्चर' का माद्दा खास तौर पर विकसित होता है। कुछ देशो में उद्योग, परिश्रम व सामाजिक अनुशासन के गुणो का दर्शन होता है, तो कही विनोदप्रियता व उच्छृखलता का वातावरण पाया? जाता है। हमारे पूर्वजो ने भारत को 'कर्म-भूमि' के नाम से पुकारा है। यहाँ 'धर्म भावना' का विशेष महत्व प्राचीन काल से रहा है। इसलिए इसे 'धर्म-भूमि' भी कहा जाता है।

*   *   *   *

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने पाश्चात्य संस्कृति व भारतीय सभ्यता का बुनियादी अन्तर बड़े मार्मिक शब्दों में बयान किया है। वे लिखते हैं--"जब यूरोप का एक मजदूर व किसान दिनभर काम करके थका हुआ शाम को घर आता है, तो अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीता है और अनाचार करता है। किन्तु भारत का किसान अपनी थकान भजन-कीर्तन द्वारा भूल जाता है और भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है।"

दोनों सभ्यताओं में हम एक और विशेष अन्तर देखते हैं। विदेशों में अगर आप पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर किसी रमणीय स्थान पर पहुँचेंगे, तो वहाँ एक 'बार' या शराब की दूकान देखेंगे, लेकिन भारत की यह विशेषता है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थलों पर निश्चित ही एक कलापूर्ण मन्दिर या तीर्थ के दर्शन मिलेंगे। हमारे देश में पर्वतारोहण के साथ-साथ धर्मभावना का समावेश रहा है। इसीलिए आज हम गंगोत्री, बदरीनाथ, अमरनाथ, कैलास व गौरीशंकर के भव्य दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशों में नाम कमाना हो, तो करोड़पति व अब तो अरबपति बनना जरूरी होता है या तो फिर बड़ा राजनैतिक नेता, जिसके हाथ में महान् सत्ता हो। किन्तु भारत में तो एक 'सन्त' व 'महात्मा' के पीछे ही सारी जनता चलती है और उसका जय-जयकार करती है।

भारत की संस्कृति महलों व प्रासादों में नहीं, वनों व मुनियों के आश्रमों में फलती-फूलती रही है। यहाँ के राजा महाराजा अपने गुरु-जनों के आदेशों के अनुसार ही राज्य संचालित करते रहे हैं। वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य व समर्थ रामदास की गुरु परम्परा किसी और देश में खोजे भी नहीं मिल सकेगी। भारत भूमि में वह सहज प्राप्त है।

यदि इन प्राचीन परम्पराओं को दरगुजर कर भारत को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो हम ठोकर खाकर गिरेंगे और संसार के सम्मुख हँसी के पात्र बनेंगे। दुनिया आज भारत की ओर इसलिए नहीं देख रहा है कि यहाँ भी ऊँची इमारतें, विशाल बाँध व बड़ी फैक्टरियाँ स्थापित

हो रही है ! संसार तो हमारे राष्ट्र से कुछ और ही अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह गांधी व टैगोर का देश माना जाता है। जब हम सन् १९४९ में अमरीका की हारवर्ड यूनिवर्सिटी के विख्यात् अर्थशास्त्री प्रो. शुमपीटर से मिले,तो उन्होंने बड़ी नम्रता से किन्तु आग्रहपूर्वक कहा—"मेरी ओरसे अपने देशवासियों को एक सन्देश जरूर दीजिएगा, और वह यह कि वे भूलकर भी हमारी नकल न करें। हमारे पास धन है, किन्तु वह अमूल्य वस्तु नहीं है, जो भारत के पास है। ससार, भारत से अध्यात्म की ज्योति पाने की आशा रखता है।" कुछ इसी प्रकार की भावना डा. आइन्स्टाइनने व्यक्त की थी। गांधीजी के प्रति तो उनकी अगाध श्रद्धा थी ही। उन्होंने कहा था—"आनेवाली पीढियाँ तो वह विश्वास भी नहीं कर सकेंगी कि गाँधी जैसा 'हाड़-माँस का कोई शख्स इस पृथ्वी पर सचमुच कभी चला था।"

* * * *

पूज्य बापू के स्वप्नों के भारत मे नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को प्रमुख स्थान तो था ही, उनकी हार्दिक आकांक्षा थी कि आजाद हिन्दुस्तान, दुनिया को अपनी प्राचीन संस्कृति के अनुरूप एक नई रोशनी दे। किन्तु वह यह नही चाहते थे कि भारत संसार के अन्य राष्ट्रों से अलग-थलग पड़ जाय और एक सकुचित वृत्ति का अनुसरण करे। इसीलिए उन्होंने बहुत साफ शब्दों में लिखा था— "मैं नही चाहूँगा कि स्वतत्र भारतका भवन सभी ओर दीवारोंसे घिरा रहे और उसके खिडकी-दरवाजे बन्द रहें। सभी देशों की संस्कृतियों का प्रवाह हमारे मकान के अन्दर आवश्यक स्वतंत्रता से बहे। लेकिन मै यह कभी बरदास्त नहीं करूँगा कि इन प्रवाहों से मेरे पैर ही उखड जायें। इसका यही भावार्थ है कि हम सभी दिशाओं से अच्छे विचार व गुण अपनाने की दृष्टि रखें, लेकिन हमारे पैर हमारी धरती पर मजबूत रहें। हम विदेशी हवा में उड न जायें, दूसरों के अनुकरण के प्रवाह में बह न जायें।"

* * * *

हम अगर जरा बारीकी से अपने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करें, तो पायेंगे कि वेदों में भी 'विश्व मानुष' के आदर्श का जिक्र है। ऋग्वेद

मे तो यही प्रार्थना की है कि चारो दिशाओं से शुभ विचारो का प्रवाह जारी रहे— "आ नो भद्रा कृतवो यन्तु विश्वत"। अथर्ववेद ने भी यही जाहिर किया है कि सम्पूर्ण पृथ्वी मेरी माता है और मै उसका पुत्र हूँ— "माता भूमि, पुत्रो ह पृथिव्या।" कितना विशाल व व्यापक दर्शन था हमारे प्राचीन विचारको व ऋषियो का! व ग्रामो, आश्रमो व वनो मे रहते थे, किन्तु उनका चिन्तन केवल विश्वव्यापी ही नही, ब्रह्माण्डमय था।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कुछ इसी प्रकार के विचार दूसरे ढग से व्यक्त किये हैं। उन्होने भारतीय परम्परा की उपमा गगाजी के निरन्तर प्रवाह से दी है। उसमे कई दिशाओ से दूसरी नदियो के जल का भी प्रवेश होता है। वे गगा मे मिलकर एकरूप हो जाती है गगा ही बन जाती है। किन्तु यदि मिलनेवाली नदियो द्वारा गगाजी में बाढ आ जाय, तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है और चारो ओर बरबादी फैल जाती है। इसी तरह यदि हम विदेशो के गुणो को अपनाकर उन्हे हजम कर लें और अपना व्यक्तित्व भी कायम रख सकें, तो सब दृष्टि से कल्याण-कारी है। लेकिन अगर बाहरी प्रवाह से हमारा सन्तुलन ही बिगड जाय, तो फिर हम विनाश की ओर तेजी से बह जायेंगे।

हम जरा वृक्षो की ओर भी नजर डाले। ऊँचे पेड खुली हवा में कितनी शान से खडे रहते है। चारो ओर से उन्हें शीतल मन्द सुगन्ध वायु का लाभ मिलता रहता है। वे स्वय कडी धूप सहते है, लेकिन दूसरो को शीतल छाया प्रदान करते हैं। सूरदासजी ने गाया है —

> वृक्षन से मत ले, मन! तू वृक्षन से मत ले।
> धूप सहत अपने सिर ऊपर,
> और को छाँह करेत!

पर उनकी गहरी जडे धरती में रहती है, वही मे उन्हें जीवन शक्ति सदा प्राप्त होती रहती है। यदि जडें कमजोर हो और जमीन के ऊपर निकल आवें, तो फिर वह वृक्ष अधिक दिन गौरव से अपना सिर ऊँचा न रख सकेगा। हवा के झोको से वह गिरकर समाप्त हो जायगा। यही

हाल राष्ट्रों का है। यदि वे अपनी संस्कृति की भूमि पर स्थिर रहकर दुनिया से सीखने का प्रयत्न करते हैं, तो उनका विकास सर्वांगी होता है, लेकिन अगर वे अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही खो बैठते हैं, तो कहीं के नहीं रहते।

गांधीजी हमें अक्सर समझाया करते थे कि राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता में मूलत कोई आपसी विरोध नहीं है। अन्तरराष्ट्रीय बनने के लिए यह जरूरी नहीं है कि हम दुनिया के सभी देशों में हवाई जहाज से उडकर जाते रहे। हाँ, जितना बिल्कुल आवश्यक हो, उतना विदेशों से सम्पर्क रखना अच्छा है। किन्तु बापूजी तो सेवाग्राम में रहकर भी केवल संसार से क्या, ब्रह्माण्ड के जीवन से एक रस रहते थे। असली सवाल है दृष्टि का। अगर हमारे दिल उदार हैं और दिमाग व्यापक हैं, तो फिर हम जहाँ कहीं भी रहे, विश्व-भावना से ओतप्रोत रह सकते हैं।

और अन्त में अन्तरराष्ट्रीयता की भावना का आधार राष्ट्रीयता ही हो सकती है। यदि हम अपने राष्ट्र के एक अच्छे नागरिक व सेवक हैं, तो हमारी खुशबू दुनिया के और देशों में भी सहज फैलती रहेगी। किसी भी देश में किया हुआ अच्छा काम धीरे-धीरे दूसरे राष्ट्रों पर भी असर डालता ही है। आचार्य विनोबा का भूदान व ग्रामदान आन्दोलन अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है, यद्यपि विनोबाजी ने पाकिस्तान के सिवाय और किसी विदेश की धरती पर अब तक पैर नहीं रखा है, किन्तु वह तो गाँव-गाँव में घूमते हुए भी 'जय जगत' का नारा लगाते रहते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श उनकी प्रत्येक साँस में समाया हुआ है। लेकिन उनके पैर अपने देश की धरती पर मजबूती से जमे हुए हैं।

वजूभाई पटेल :

कार्यानुभव की संकल्पना और व्यवहार :

इस सन्दर्भ में NCERT की ओरसे हो रहा कार्य

कोठारी कमीशन ने इ स १९६६ म 'वर्क एक्सपीरियन्स'—कार्यानुभव के नाम से अपने देश के शिक्षा-क्षेत्र म जिस संकल्पना को प्रदान किया, उसका स्वीकार देश म कितने अंश तक तथा किस प्रकार हुआ–यह दस साल के बाद एक विचारणीय मुद्दा है। कोठारी कमीशन की अन्य सिफारिशों का तात्कालिक अमल करने के लिये कोई प्रबन्ध नही हुआ, ठीक वैसा ही कार्यानुभव के बारे म हुआ। कार्यानुभव के बारे म वैचारिक स्तरपर काफी प्रमाण मे चर्चा हुई है, इस बात को स्वीकार करना चाहिए, तथा विविध राज्यों म शाला-शिक्षा के नये अभ्यास क्रम म कार्यानुभव का उपयोग क्राफ्ट के स्थान पर हुआ है–इस बात को भी स्वीकार करना होगा। यद्यपि इस नये अभ्यास-क्रम में उद्योग-क्षेत्र को महत्व देनेके अलावा विशेष कोई काम हुआ हो–ऐसा नही दिखाई देता। कार्यानुभव एक विशेष विषय क रूप में शाला क सामान्य अभ्यास-क्रम की सभी कक्षाओं में स्वीकृत हुआ है–यह हकीकत है। एक से सात कक्षा में उद्योग को स्थान दिया गया है, जब कि आठ से दस कक्षा में नये विषय के रूप मे उसको स्वीकार किया गया है।

आज के शालेय अभ्यास क्रम में श्रमजन्य शिक्षा का स्वीकार नहीं हुआ है। काम द्वारा शिक्षा (W0rk based Education) को नये अभ्यास-क्रम में कोई स्थान प्राप्त नही हुआ, जब कि समग्र अभ्यास-क्रम कार्योन्मुख (functional) बने, तब जो चित्र उठेगा, वह स्वाभाविकता से आज के एकांगी कार्यानुभव से बिलकुल भिन्न होगा। आज कार्यानुभव एक विषय मात्र है। उस विषय की शिक्षा का आयोजन, उसकी शिक्षा-प्रक्रिया तथा उसका मूल्यांकन इस प्रकार हो रहा है कि

इस विषय-शिक्षा के उद्देश्यो को भी वह सिद्ध नही कर सकता। उदाहरणार्थ शालय अभ्यास-क्रम के योजको ने कार्यानुभव के उद्देश्यो के विषय में स्पष्ट लिखा है कि कार्यानुभव के द्वारा विद्यार्थी की उत्पादन-शक्ति विकसित होगी तथा श्रम के प्रति रुचि निर्माण होगी एव किसी भी प्रकार के श्रम के प्रति उसको अनुराग होगा। हमारे समाज में शारीरिक श्रम के प्रति न तो रुचि है न ऐसे कोई काम करने का कौशल। इस परिस्थिति के कारण शालेय अभ्यास-क्रम मे न तो ठीक आयोजन होता है और न ठीक शैक्षणिक प्रक्रिया। फलत अनुभव को विकसित करने का प्रश्न ही कभी उपस्थित नही होता। शाला में न तो कार्य है, न उसका अनुभव। कार्यानुभव को एक विषय के तौर पर स्थान दिया गया है, उसका यह परिणाम है।

इस सन्दर्भ में NCERT की ओर से जो काम देश में हो रहा है, वह जाँचने योग्य है। NCERT सस्था मे Vocationalisation Unit नामक एक विभाग पिछले कुछ वर्षो से चल रहा है। उसके अधिकारी कार्यकर्ता कल्पनाशील हैं तथा कार्यानुभव के विषय में पूरी समझ रखते हैं। किन्तु NCERT की ओर से हाल ही में जो परिषद् हुई, उसमें उस विभाग की ओर से कुछ प्रदान हुआ हो—ऐसा नही दखाई देता। अत अप्रैल १९७५ की परिषद् के बाद NCERT की ओर से 'दस वर्ष का अभ्यासक्रम' (Curricular Form of Ten Years General Education) पुस्तिका का प्रकाशन हुआ—वह परीक्षणीय है। उसकी प्रस्तावना में NCERT के नियामक कार्यानुभव की सकल्पना को स्वीकार करते हैं, परन्तु उस प्रस्तावना में पाँचवी पचवर्षीय योजना के उद्देश्य को दूर रखकर शिक्षा के आयोजन की बात करते हैं—यह विचित्र लगता है। पाँचवी पचवर्षीय योजना के मुख्य दो उद्देश्य है— बेकारी निवारण, तथा गरीबी नाबूदी। ये दोनों उद्देश्य सिद्ध करने हो, तो शिक्षा मे उत्पादक श्रम के कार्य व्यापक फलक पर उठाने पड़ेंगे तथा उसके द्वारा शिक्षा-प्रक्रिया का निर्माण करना होगा। यह तभी शक्य बन सकता है, जब अभ्यास-क्रम कार्योन्मुख बने। इस बात को सोचने के बदले NCERT के

ऊपर की पुस्तक में प्रकरण २, ३, ४ मे कार्यानुभव को एक विषय का स्थान दिया है तथा फिर वही पुरानी बातें लिखी है।

दस वर्ष बीत गए और इन वर्षों मे कार्यानुभव से कोई निष्पत्ति नही मिली—यह अनुभव हो चुका है, फिर भी हम कुछ नया नही सोच सकते या हेतुपूर्वक हमें सोचना ही नही है। फलत देश मे शिक्षा-प्रक्रिया वही पुराने ढग से चलाना है—ऐसा महसूस होता है। हकीकत यह है कि हमारे देशमें नौकरशाही को कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम के प्रति एक प्रकारकी घृणा-नफरत है। अत जब तक उनके हाथो मे नीति निश्चित करने के साधन है, तब तक शिक्षा में मूलभूत परिवर्तन होने की सम्भावना नही।

परिस्थिति यह है, फिर भी शाला और घर व्यक्तिगत स्तर पर बहुत कुछ कर सकते हैं। समाज में मूल्य परिवर्तन लाने के लिये घर और शाला तथा साहित्य और पत्रकारत्व बहुत कुछ कर सकता है, उसम घर तथा शाला महत्व का प्रदान कर सकते हैं।

विद्यार्थी के घर में एव शिक्षक के घर में श्रम की, मूल्य के रूप में स्थापना नही हुई है—यह हकीकत है। शाला तथा घर—दोनो सयुक्त रूप से प्रयास करे, तो विशाल समाज व्यापक तौर से श्रम के विशिष्ट मूल्य को स्वीकार करे। उत्तर बुनियादी विद्यालय श्रम-प्रतिभाव को तोडने में काफी सफल हुए है—ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नही है। उत्तर बुनियादी विद्यालयो का उद्योग के प्रति आज की परिस्थिति में सबसे बडा प्रदान है।

अखिल भारत नयी तालीम समिति ने कुछ माम पहले नयी तालीम अभ्यास-क्रम का पुनर्निर्माण किया है। उसमें कार्योन्मुख अभ्यास क्रमकी सकल्पना की व्यवस्था है। इस प्रकार के अभ्यास-क्रम के निर्देशक बिन्दु (Guidelines) 'नयी तालीम पत्रिका के अक्टूबर-नवम्बर१९७५के अक में पृष्ठ ७६ से९१पर दिए गये हैं। उसके अनुसार कार्योन्मुख अभ्यास क्रम की निम्नलिखित विशेषता दिखाई गई है। कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम में मुद्दोक। माध्यम बनाना होगा—(१) शरीर-श्रम, (२) शाला में सामूहिक जीवन, (३) प्राकृतिक वातावरण, (४) घर तथा समाज, (५) समाज-सेवा तथा विकास-कार्यक्रम।

उपरोक्त मुद्दों को माध्यम बनाना हो, तो प्रत्येक शाला का अलग-अलग अभ्यास-क्रम तैयार करना होगा–यह स्वाभाविक है। समान अभ्यास-क्रम और समान मूल्यांकन–यह रुढिग्रस्त बात है तथा उसके बुरे परिणाम का आज इतने वर्षों के बाद भी अनुभव कर रहे हैं। इसलिये अन्य विकसित देशों के अनुसार हमारे विकसित देश में प्रत्येक शाला में अभ्यास-क्रम की रचना अपनी आसपास की आवश्यकतानुसार निर्धारित निर्देशक बिन्दुओं के आधार पर होनी चाहिये। यह तभी शक्य है, जब शाला को शासन की ओर से स्वायत्तता मिले। आज अपने देश मे अगर कोई महत्व का परिवर्तन समाज-जीवन मे परिवर्तन लाने की दृष्टि से करने योग्य है, तो वह शाला तथा महाविद्यालयों मे कार्योन्मुख अभ्यासक्रम की रचना के लिये उनको स्वायत्तता प्रदान करना ही है।

*　　*　　*

भाषा-शुद्धि

महात्मा कन्फ्यूशियस से किसी ने पूछा कि यदि तुम्हें किसी देश पर शासन करने का अवसर मिले तो सब से पहले आप क्या करें ?

"सबसे पहले वहाँ की भाषा शुद्ध करने का प्रयत्न करूंगा।" कन्फ्युशियस ने जवाब दिया।

"लेकिन महात्मन्! भाषा-शुद्धि का शासन से क्या सम्बन्ध है ?"

"भाषा अशुद्ध हो तो उसके द्वारा मन के भाव बराबर व्यक्त नहीं होते और जब भाव बराबर व्यक्त नही होते, तो न करने जैसे काम हो जाते हैं। और जब अनुचित काम होते हैं तब सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का और नैतिकता का अन्त होता है। और जहाँ नैतिकता अन्त आता है, वहाँ न्याय कैसे टिक सकता है? और न्याय के बिना अराजकता का फैलना स्वाभाविक है। और जहाँ अराजकता फैले, वहाँ शासन किस तरह किया जाय ? इसलिये भाषा शुद्धि की अनिवार्यता सर्वोपरि है।"

मदालसा नारायण :

"जन-जन का सन्मान बढ़े नित" :

समय बदलता है, साल बदलता है और मौसम भी बदलता है। उसीके अनुरूप सृष्टि का सौन्दर्य खिलता है और जन जीवन भी फलता-फूलता है। एक के आगे एक नई पीढ़ियाँ पनपती हैं। मानव समाज प्रगल्भ होता है, तो उत्क्रांति का पथ भी आलोकित होता है। यही विधि-विधान है। तदनुसार विश्वका संचालन सतत हो रहा है।

अखिल विश्व के अन्तराल में अपना भारतवर्ष एक महान गौरवशाली राष्ट्र है। विज्ञान के विकासवान स्वरूप ने आज मानव जीवन के विकास की अनोखी संभावनाएँ जगत में जगाई हैं तो आणविक शक्ति के भयानक प्रयोगों ने सर्वनाश का ताण्डव नर्तन भी दिखाया है और दुनियाँ को प्रलयकारी भय से नितान्त भयभीत कर दिया है। इस विश्वव्यापक भय से मानव मन कैसे मुक्त हो—यह बड़ा विकट सवाल और बड़ी प्रखर समस्या आज सब ओर छाई हुई है। धरातल के सभी राष्ट्र इसे हल करने के लिये जी-जान से उत्सुक नजर आ रहे हैं।

१९४९ में विश्व-परिभ्रमण करते हुए हम लोग अमेरिका पहुँचे। वहाँ प्रिन्स्टन विश्वविद्यालय के सुविशाल प्रांगण में इस युग के महान वैज्ञानिक वयोवृद्ध महर्षि अलबर्ट आइन्स्टाइन से हम मिलने गये। सेवाग्राम की 'बापू-कुटी' से भी सादी-सी कुटिया में वे रह रहे थे। बापू जी के तृतीय पुत्र श्री मणिलाल गांधी भी हमारे साथ थे। खूब फुर्सत से जी भरकर बातचीत होती रही। प्रो आइन्स्टाइन ने हमें गहराई से समझाया —

"विज्ञान एक महान शक्ति है। उसका आविष्कार करने में मन मुग्ध हुआ, आनन्द और सन्तोष मिला, पर उसका दुरुपयोग विनाशकारी

ढग से होने लगा है। यह बडी चिंता की और मेरे लिये बडे दुख की बात है। परन्तु आप भारतवासी बडे भाग्यवान है। आपके राष्ट्रपिता गाधीजी ने आपको सत्य और अहिंसा का ऐसा महान जीवन-पथ दिखा दिया है कि उसपर चलते हुए आप विनाश से बचकर दुनियाँ को भी विकास के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित कर सकते है।"

यह कितना बडा आश्वासन हमने पा लिया। अब हमें बहुत-सी बात अपने आप गहराई से सोचना और समझ लेना है। यह सभी जानते है कि हमने 'स्वराज्य' पा लिया है, पर वह किस रूप में हमें मिला है, यह भी तो हमें भलीभाँति जान लेना चाहिये।

अपने भारतवर्ष मे करीबन अर्ध शताब्दी से भी अधिक समय तक स्वराज्य प्राप्ति की साधना और आराधना चली। अनेकानेक अपूर्व बलिदान और महान कुर्बानिया हुई। फलस्वरूप १५ अगस्त १९४७ के मगल प्रभात में हमने अपनी भारत भूमि पर स्वराज्यका सूर्योदय देखा। लोकमान्य तिलक का 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है'—यह मत्र सिद्ध हो गया। राष्ट्रपिता बापू का सकल्प पूरा हुआ। पर विभाजन के भयानक दुख-दर्द से बापू का हृदय ऐसा विदीर्ण हुआ कि ३० जनवरी १९४८ की सायकालीन प्रार्थना-भूमि पर 'हे राम' का उच्चार करते हुए उनका परिनिर्वाण हो गया।

एक ओर स्वराज्य का सूर्योदय हमने देखा, तो दूसरी ओर अपने सद्भाग्य का सूर्यास्त भी हमे देखना पडा। फिर भी राष्ट्रपिता बापू के समकालीन नेताओ ने अपने देशकी बागडोर भली भाँति अपने सुदृढ हाथो में थाम ली।

स्वतत्र भारत का अत्यन्त स्वतत्र और मौलिक लोकतत्रात्मक भारतीय सविधान २६ नवम्बर १९४९ के दिन रचकर तैयार हो गया। भारतीय जनता की ओर से लोकसभा द्वारा वह स्वीकृत भी हो चुका। तदनुसार भारत में 'भारतीय गणतत्र' की घोषणा २६ जनवरी १९५१ के दिन हो गई। सविधान की धाराओ के अनुसार भारत का राष्ट्रीय कारोबार चलने लग गया। योजना-आयोग, जनसेवा-आयोग, चुनाव-

आयोग आदि अनेक जन-समाज के उपयोगी आयोगो की स्थापना भी भारत में हो गई। सबके सहयोग से १९५२ का राष्ट्रव्यापी प्रथम आम चुनाव अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। दुनियाने आश्चर्य चकित होकर उसकी प्रशसा की, पर उसके बाद अब तक जन-जनके द्वारा जनतत्र सचालन की प्रक्रिया ठीक से कही भी जम नही पाई है। इसीमे चारो ओर असन्तोष और अशान्ति छाई हुई नजर आ रही है। उसके मूलभूत कारणो को ढूँढना, जाँचना, समझना है और अब सुधार ही लेना है।

यह सोचते हुए पहला सवाल मनमे यह उठता है कि हमें स्वराज्य मिला, तो दर असल क्या मिला ? जनसाधारण के हाथ मे आया तो क्या आया ? इसका जवाब बडा सीधा, सादा, सरल और कीमती है —

"राष्ट्रपिता के बलिदान के फलस्वरूप भारत माता के वरदान के रूप में हमें भारत का सविधान मिला है" यह है बडे कीमती सवाल का अनमोल ज्वाब, पर अभी तक वह जन-जन के हाथो में कहाँ पहुँचा है ? न घर-घर में उसकी चर्चा है, न विचार है, न चाहना है। तब भला 'जहाँ चाह वहाँ राह' की तो बात ही कहाँ रही ? इस तरह राष्ट्रपिता के सत्यमय अहिंसात्मक प्रयोगो के सहारे जो स्वराज्य हमे मिला, उसके साथ अभी तो हमारी देखा-देखी या जान-पहचान भी ठीक से कहाँ हो पाई है ?

पर अब समय आ गया है। अब सविधान का बोलबाला हो रहा है। उसमें हेरफेर की बातचीत भी चल रही है। तब जनता-जनार्दन का सामूहिक अभिमत भी जाहिर हो जाना जरूरी है। उसके लिये हमारे भारतीय संविधान का एक सक्षिप्त और नया स्वरूप प्रकाशित हो जाना चाहिए और घर-घर में उसकी चर्चा, विचार और परिपूर्ण जानकारी फैल जानी चाहिए। इस दृष्टि से 'जनतत्रम् विजयते' की भावना बडी सामयिक और महत्वपूर्ण है। वास्तव में वह एक अत्यन्त उपयोगी सयोजना है, जिसका सक्षिप्त और सशोधित रूप बडा रोचक है।

जन जन के द्वारा जनतंत्र का संचालन होने की यह बड़ी लोकप्रिय बात है। जिसका संशोधित और सूचक स्वरूप इस तरह से समझमें लेने लायक है —

"भारत में आज जो 'एडमिनिस्ट्रेशन' चल रहा है, वह शासन-तंत्र नही, बल्कि वास्तव में जन-तंत्र है। उसे व्यवस्था-तंत्र कहा जा सकता है। उसके अंतर्गत संचालन तंत्र विधि तंत्र, न्याय तंत्र, तो चलते ही हैं, पर जनतंत्र मे जन जनको शिक्षित, प्रशिक्षित, प्रमाणित और प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय ही करते हैं। उनका उत्तरदायित्व महान है। इसलिये उनकी ओर से हरेक महाविद्यालय में प्राध्यापको एवं विद्यार्थियो को जनतंत्र संचालन का उत्तम ज्ञान और समुन्नत प्रशिक्षण अवश्य दिया जाना चाहिये।"

समाज में जिनके इक्कीस साल पूर्ण हो जाते है, ऐसे अपने राष्ट्र के नवोदित नवयुवक और युवतियाँ भारतीय संविधान के अनुसार सतत मौलिक अधिकारो से विभूषित होते ही जा रहे हैं। उन्हें हार्दिक रूपसे अभिनंदित करते हुए उनके महान राष्ट्रीय उत्तरदायित्वोंका भलि-भाँति दर्शन भी उन्हें करवाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

आज अपने राष्ट्रीय जनतंत्र का स्वरूप सार्वभौम प्रयुक्त सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य का है। वह जनता जनार्दन के बहुमत पर आधारित है। जनमत प्राप्ति के लिये पाँच सालाना आम चुनाव पद्धति को हमने भी अपनाया है। उस के लिये जन-संख्या के अनुपात में सारा देश निर्वाचन-क्षेत्रों में सीमाबद्ध किया गया है। चुनाव के समय वहीं से जनतंत्र का सुव्यवस्थित संचालन होने के लिये जन प्रतिनिधि चुने जाते है। उन्हें लोकसभा और विधान-सभा में जाकर अपने निर्वाचन क्षेत्र की जनता का उत्तमता से प्रतिनिधित्व करना होता है। उसके लिये हर निर्वाचन-क्षेत्र में एक क्षेत्रीय समाज विकास की सब तरह की जानकारी से भरपूरा एक-एक 'जनभवन' अवश्य होना चाहिये। जहाँ केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारी योजनाओं का अनुबंधन क्षेत्रीय योजनाओं के साथ सतत जोड़ा जा सके। यह एम एल ए तथा एम पी का

स्थानीय कार्यालय ही समझा जाय, जहाँ इन जन-प्रतिनिधियों का वहाँ के जन-सेवकों के साथ सतत मिलाना-जुलना होता रहे, तो जनता के साथ भी उनका सम्पर्क और सहयोग बढ़ता रह सकता है। तब वहाँ के जन-समाज के साथ मिल-जुलकर जन-सेवा के कार्य अधिक अच्छी तरह से होने लग जावेंगे। तभी जन जीवन में सुख, शान्ति, समृद्धि अपने आप बढ़ने लग जावेगी। समाज में नवजीवन जागृत हो उठेगा।

नवयुवकों में नई आशा, नये उत्साह और नई उमंगें तरंगित हो उठेंगी। तभी नित नई तालीम की भाँति जन-जन के मानसरोवर में नित्य नूतनता लहराने लग जावेगी। उसीसे जनतंत्र का सुचारु रूप से सचालन भी होने लग जायेगा।

'अनुशासन और विवेक युक्त जनतंत्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है'--राष्ट्रपिताकी यह भावना और यही मंगलकामना आगामी १५ अगस्त के अपने २९ वें स्वाधीनता दिवस से सब ओर फैलने लग जाय, तो कितना अच्छा होगा।

> 'नया जमाना, नया साल है नया तरीका पाव।
> स्वतंत्रता का सुदिन आज हम नई राह अपनावें।।'
> जन-जन के द्वारा सचालन हो अपने शासन का।
> वरदायक जनतंत्र हमारा गौरव, अनुशासन का।।
> जन-भवनों के द्वारा सयोजन होगा सुखदाई।
> सचालन उत्तम होगा, जनतंत्र बने वरदाई।।

❧

श्रीमती शांता नारुलकर :

सयानों की तालीम

(गत अंक से आगे)

सहयोगी दुकान :

सेवाग्राम मे एक सहयोगी दुकान चल रही है। वह पूरे गाँव की दुकान है, क्योंकि गाँव के हर कुटुम्ब ने उस में कुछ-न-कुछ हिस्सा दिया है। इसलिये वह खरीदने का पूरा हक भी रखता है। जो पैसा पूरे देहात से जमा हुआ है, उसे हिस्सों (Shares) मे बाँट दिया गया है। व्यवस्था-मंडल या हिस्सेदार पैसा निकाल नहीं सकते, और न मुनाफा ही माँग सकते है। लेकिन दुकान पूरे गाँव की सुविधा के लिये है—यह मानकर बारी-बारी से जिम्मेदारी उठाते हैं। मुनाफा उसी काम को बढ़ाने या गाँव के सुधार में लगाने के लिये मुकर्रर है। दुकान संभालना, चीजें बेचना, खरीदना, हिसाब रखना आदि काम सभी सहयोग से करते है। कोई नौकर नहीं रखा गया है।

दूसरे चार देहातों के अनाज की व्यवस्था भी इसी दुकान के मार्फत हुई है। वहाँ के लोग पूँजी में पैसे देने को तैयार थे, लेकिन वे मुनाफे की अपेक्षा रखते थे। यह यहाँ के नियम के विरुद्ध है, इसलिये उनसे कोई पैसा नहीं लिया गया। शुरू में व्यवस्था में थोडी गडबड़ी रही, छ महीने बाद कुछ घाटा भी दिखाई दिया, लेकिन व्यवस्था-मडली ने अपनी तरफ से वह सब हिसाब ठीक करके व्यवस्थित रूप में किया। तबसे अब वह बढ ही रहा है। इसके द्वारा आज सिर्फ सेवाग्राम देहात की ही नहीं, उसके नजदीक के चार देहातों के लिये भी

अनाज, तेल वगैरह की जरूरतें वे अपने आप निभा सकते हैं। इस तरह देहातियों ने आपस के सहयोग से साथ गाँव की जरूरतें पूरी करने की जिम्मेदारी स्वयं ले ली है। इसी आधार पर उनकी अनाज की कोठी भी बनी है। उसमें सबने अपनी-अपनी शक्ति के मुताबिक कम-ज्यादा अनाज डाला है। जिसको जितने अनाज की जरूरत है, उतना लेगा और वापिस करेगा। यहाँ यह प्रश्न आ सकता है कि यदि अनाज न लौटाया तो ? उसका उत्तर है कि जब देहात के सब साथ होकर काम करते हैं, तो एक-दूसरे पर भरोसा रहता है। उसे देहात में रहना है, तो लौटा ही देगा। समाज के विरुद्ध कैसे चलेगा ? बाहरी आदमी नियमों को तोड़ देगा या देहात में झगड़े होंगे, तब यह बन्धन तोड़ देंगे। इसी एकता को समझना है। लड़ें तो भी दो न बनें, एक रहें।

पालकों की जिम्मेदारी :

प्रौढ़-शिक्षा का और एक बड़ा हिस्सा है—पालकों की जिम्मेदारी और बच्चों की देखभाल के बारे में ज्ञान। यह काम यहाँ पूर्व-बुनियादी शाला के जरिए किया जा रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो पूर्व-बुनियादी शाला के शिक्षक प्रौढ़-शिक्षा के भी कार्यकर्ता हैं।

माँ-बाप, पालक और शिक्षक की जिम्मेदारी :

प्रौढ़-शिक्षा में पालक यानी माँ-बाप की जिम्मेदारी और यह जिम्मेदारी समझकर बालकों की देख-रेख, उनका पालन पोषण करना, —यह बहुत महत्व का विषय है। जैसा कि गाधीजी ने कहा है, बच्चों की शिक्षा, जब से बच्चा माँ के पेट में आता है, तभी से शुरू होती है। कई शारीरिक और दिमागी आदतें वह जन्म से ही लेकर आता है। इसलिये आगे आनेवाले अपने बच्चे के शारीरिक व मानसिक आरोग्य को ठीक रखने के लिये माँ को अपना आरोग्य ठीक रखना लाजिमी है। यही माँ की शिक्षा बनती चली जाती है। बच्चा अपने घर के बड़ों की गोद में पलता है, उसकी सफाई और आरोग्य की आदतें,

रहन-सहन, सभ्यता आदि बातें अपने बड़ों के व्यवहार से बनती जाती है। यह बात अगर बड़ों की समझमें आ जाय, तो बच्चों की आगे की तालीम का काम बहुत सरल हो जाय। माँ-बाप या पालकों को यह समझना चाहिये कि वे अपने बच्चे को इस तरह पाले, जिससे वह एक सच्चा आदमी बने।

शाला में पूर्व-बुनियादी वर्ग होना जरूरी है ही, लेकिन साथ ही बच्चोंके घर और उनके माँ-बाप का भी उनकी शिक्षा में बड़ा भारी हाथ है। २ से ७ साल तक के बच्चे अपनी माँ और घर से ज्यादा हिले रहते है। शाला में आते है, फिर भी घर की तरफ उनका खिंचाव ज्यादा रहता है, और यह स्वाभाविक भी है। लेकिन जब घर और शाला का वातावरण एक-सा बनेगा, माँ-बाप-शिक्षक--सब एकता में उसे दिखाई देंगे, तब उसका वह सकोच हट जायगा। उसे आश्वासन और प्रेम मिलेगा, तब बच्चा निर्भयता से शाला क अनोखे वातावरण से हिल-मिल जायगा। इसलिये पूर्व-बुनियादी शिक्षा के साथ माँ-बाप को भी उनकी जिम्मेदारी क्या है--यह सीखने का मौका दिया जाय। इसके लिये बच्चों की तालीम देनेवाले शिक्षक को अपने काम के घंटों में से निश्चित समय बच्चों के घरों पर जाने और उनके माँ-बाप से चर्चा करनेके लिये देना चाहिये। बच्चों के बारे में बातचीत करने से मित्रता बढ़ती है और इसके जरिये माँ-बाप या पालकों को यह निश्चित ख्याल देना है कि जिस तरह दस वर्ष तक बच्चों को खाना-कपड़ा देना उनका धर्म है, उसी तरह उन्हे तालीम देना भी उनका कर्तव्य है। और यही उनकी बच्चों के प्रति प्रेमकी निशानी है, क्योंकि इसीके द्वारा वे बच्चों को इंसानियत की जिन्दगी बिताने का अवसर देंगे। आजकल घरों मे बच्चों से जो काम लिया जाता है, वह काम सिखाना नही है, वह तो बिना पैसे की गुलामी है। वहाँ वह बचपन भूलकर बड़ा-बूढा बन जाता है, खासकर लड़कियाँ। इसलिए अगर आगे आने वाले समाज को शक्तिशाली बनाना है, तो आज के माँ-बाप को समझना चाहिये कि बच्चा जो काम करे, अच्छी तरह सोचकर करे, उसकी बुद्धि उसके काम में बढ़े, और वहएक स्वतंत्र आदमी की हैसियत से बढ़े,

गुलाम की तरह बोझ न ढोए। इस जबरदस्ती की शिक्षा में पैसे का लालच या दंड का भय नहीं होगा, वरन् शिक्षक और माँ बाप का सहयोग होगा और घर और स्कूल का वातावरण एक-सा होगा।

स्त्री-शिक्षा

बच्चों की तालीम में पिता की अपेक्षा माँ का सम्बंध ज्यादा है। इसलिये प्रौढ़-शिक्षा में स्त्री शिक्षा को भी शामिल करना बहुत जरूरी है। इसी के ऊपर कुटुम्ब की सफाई और आरोग्य निर्भर है। अपने बच्चों की ओर कुटुम्बियों को बीमारियों से कैसे बचाना उनका आहार पानी, सफाई आदि की देखभाल शास्त्रीय ढंग से कैसे करना, --ये बातें अगर माताएँ ठीक से समझ लें, तो उनका कुटुम्ब स्वस्थ और सुखी बन सकता है। देहात में आरोग्य सफाई, सभ्यता और सुविचार की बातें समझने से घर का वातावरण आनन्दी और उत्साही बनेगा। देहात की स्त्रियों में पुरानी बीमारियाँ बहुत कम होती है। शरीर की दुर्बलता, अपने प्रति अनुदारता, खाने पीने, सोने के बारे में बेफिक्री और कुछ गरीबी—इन सबके कारण वे आलसी और गन्दी दिखाई देती है। उन्हें यह समझाना है कि कुटुम्ब का सच्चा भार तन्दरुस्त औरत ही सभाल सकेगी। इसलिये उन्हें सफाई, खाना, काम, विश्राम आदि बातें नियमित रखनी चाहिये। अपनी आमदनी के मुताबिक कुटुम्ब का खर्च कैसे निभाना चाहिये—यह भी उन्हें समझाना है। शुरू में वे शायद ध्यान न दें, लेकिन बार बार समझाना हमारा कर्तव्य है।

इसके अलावा स्त्रियों को भी कोई दस्तकारी या धन्धों का ज्ञान होना जरूरी है। स्त्रियों के हाथों में काम की कला है। बुनकर की स्त्री भी बुनाई का आधा काम तो करती ही है, फिर वह पूरा बुनाई का काम क्यों न सीखे? टोकरियाँ बनाना, चटाई बनाना, झाड़ू बनाना आदि काम तो वे जानती है। उसीके जरिये उन्हें तालीम दी जावे। हर देहात में एक दाई तो रहती ही है। यदि वह समझ ले कि सफाई आदि रखने से उसकी आमदनी बढ़ेगी, तो वह अपने काम

का ढंग बदलने को तुरन्त तैयार हो जायगी। कोई-कोई स्त्रियाँ सिलाई का और कताई का काम जानती हैं। उन्हें इन दस्तकारियों में प्रवीण बनाना आसान है। यदि मौका मिले और स्त्रियाँ एक साथ तैयार हों, तो सामुदायिक वर्ग भी लेना ठीक होगा।

सेवाग्राम की दाइयाँ इसी तरह दवाखाने में सीखने और काम करने लगी हैं। पाखाने का उपयोग करना जरूरी है, गर्भवती को डाक्टर से जाँच करवा लेना जरूरी है, जचकी के समय सफाई बहुत जरूरी है—आदि बातें स्त्रियाँ समझ रही हैं। लिखना-पढ़ना, कपड़े सीना वे सीखती हैं। कुछ स्त्रियों ने बुनाई दस्तकारी की पूरी बातें सीख ली हैं और खुद कपड़ा बुन सकती हैं। किसी-किसी समय आरोग्य-केन्द्र में सब मिलकर बच्चों को नहलाती हैं। इस तरह बुनियादी शाला बाल-आरोग्य-केन्द्र, प्रौढ शिक्षा के केन्द्र भी बने हैं।

प्रौढ-शिक्षा की इस तरह की योजना का असर दो-तीन-साल काम करने के बाद दिखाई देगा। वातावरण धीरे-धीरे बनता जाता है। शुरू का वातावरण बनने के बाद सच्चा कार्यक्रम शुरू कर सकते हैं।

———:०:———

"बच्चों का दिमाग जिज्ञासाओं और अधिक जानकारी के लिए लालायित रहता है। यदि इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए बच्चों की रुचि के अनुकूल पुस्तकें तैयार की जांय, तो निश्चय ही बच्चों की रुचि पढ़ने की ओर बढ़ेगी।"

—जवाहरलाल नेहरू

पुस्तक-समीक्षा

Education for today & tomorrow

K. S. Acharlu

वर्तमान मानव-समाज में जीवन-मूल्यों के परिवर्तन के कारण शिक्षा-क्षेत्र में नये दर्शन की खोज हो रही है। भौतिक सुखों से भरपूर संसार में मानसिक अशांति फैल गई है। विज्ञान के जिस ज्ञान ने यह स्थिति उपस्थित की है, उसका रुख मोड़ना होगा। सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचा यदि बदलना है, तो शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन लाना होगा। गांधीजी की यह योजना थी। उनके विचारों में आध्यात्मिक गहराई तो है ही, यथार्थ जीवन में उतरनेकी सामर्थ्य भी है।

श्री आचारलू ने गांधीजी और श्री विनोबा के शिक्षा सम्बंधी विचारों का गहन अध्ययन किया और वर्धा की 'नई तालीम' शिक्षा से निरंतर सम्पर्क में रहने के कारण उन्हें खूब समझा है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं विचारों को स्पष्ट करती है। १९७२ में 'गांधी शिक्षण भवन' में दिये गये भाषणों का ही यह संग्रह है।

बापू तथा विनोबा जी के विचारों में यथार्थता कितनी है, इसका विवेचन इन्होंने किया है। इस वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिकों की सर्जन शक्ति का प्रयोग विनाश के लिये हो रहा है। मानव को प्रकृति ने बहुत

दिया पर आभार मानने की बजाय वह उसका शोषण पर शोषण किये जा रहा है। इसे शीघ्रातिशीघ्र रोकने के लिये नये शिक्षा सिद्धान्तों की आवश्यकता है जिनसे हमारी संस्कृति विकसित हो। हमारी शिक्षा-संस्थाओं में यह नहीं हो रहा है— शिक्षा, जो प्रजातन्त्र की जान है।

श्री आचारलू ने ३ शिक्षा-कमीशनों का ब्यौरा दिया है। तीनों के शिक्षा-उद्देश्यों में भिन्नता है। युनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन ने शिक्षा का उद्देश्य मस्तिष्क और आत्मा को प्रशिक्षित करना बताया। सेकेंडरी एजुकेशन कमीशन ने मानसिक स्वतन्त्रता और सामाजिक मूल्यों पर बल दिया। कोठारी एजुकेशन कमीशन ने आर्थिक उन्नति तथा राष्ट्रीय सुरक्षाको ध्येय माना जो विज्ञान तथा तान्त्रिक शिक्षा द्वारा सम्भव होगा। शिक्षाविदों ने उद्देश्य बनाए--मगर उन्हें शिक्षा प्रणाली में उतारा नहीं गया। शिक्षा के पहलुओं पर तो सब विचार कर रहे हैं मगर जीवन के शाश्वत मूल्यों के बारे में-- स्वयं मानव के बारे में कोई विचार नहीं कर रहा है। शिक्षा केवल नौकरी पाने के लिये दी जा रही है, न कि अधिक सुरक्षित समाज बनाने के लिये। वह न तो आज को सभाल पा रही है, न कल के लिये विचार कर रही है।[1]

श्री विनोबा जी ने शिक्षा के मूल्यों के रूप में ३ सिद्धान्त हमारे समक्ष रखे हैं और उन्हीं का प्रतिपादन श्री आचारल करते हैं।

(१) योग (२) उद्योग और (३) सहयोग।

योग का तात्पर्य आसनादि नहीं, बल्कि चित्त की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण है। समाज में चारों ओर विभिन्न आकर्षण फैले हुए हैं। सर्जनात्मक प्रवृत्तियों के विकास के लिये स्वतन्त्रता बहुत आवश्यक तो है, परन्तु स्वतन्त्रता की राह कठिन है। अपना उत्तरदायित्व आप उठाना-- जरा-सा चूके, कि सम्पूर्ण अव्यवस्था की स्थिति आई। आज्ञाकारिता का सरल मार्ग विद्यालयों म अपनाया जा रहा है।

योग के लिये आवश्यक बात है बौद्धिक आत्मनिर्भरता। बालक की आलोचनात्मक निर्णय लने की शक्ति जीवन मूल्य निर्धारित करने में

आत्मनिर्भरता और संयम। बालक को प्रकाश की ओर उन्मुख करके उसे स्वयं उसका अनुभव लेने दो। वह निरंतर जीवन की कला को सीखे। स्वयं स्वावलम्बी बने और दूसरों के विचारों को भी उचित सम्मान दे सके। सादगी और स्वानुशासन रखे। इसके लिये पाठ्यक्रम के अंतर्गत जीवन के मूल्य निहित किये जाएँ। साहित्य ऐसा हो, जिसमें लेखक और कवि निडर हो कर सत्य का प्रतिपादन कर। तुलसी, मीरा और कबीर की रचनायें इसीलियें प्रभाव शाली हैं कि वह शाश्वत सत्य का प्रतिपादन करती हैं।

विद्यालयों में शाश्वत मूल्यों का जो ह्रास हो रहा है, उसे रोकने के लिये बच्चों को रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथ पढ़ाए जाए। बच्चा माँ से भाषा सीखे। शिक्षा मातृभाषा में दी जाए। अँग्रेजी भाषा का अन्धानुकरण न किया जाए। आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा यह निर्धारित हो कि विज्ञानका प्रयोग मानवके विकासके लिये किस प्रकार किया जाए। विज्ञान की उन्नति की पहली शर्त अहिंसा हो। भारतीय संस्कृति का अध्ययन विद्यालयों में कराया जाए। पूर्वजों के अनुभवों की अवहेलना करना मूर्खता है। प्राचीन संस्कृति होने पर भी नई पीढ़ी को उसका प्रकाश न मिले, तो ये बड़ा दुर्भाग्य होगा। वही हमें जीवन की कला सिखाए गी। सत्य और अहिंसा को सर्वोपरि रख कर सबका मन जीत लेना सिखाए गी। हमारी शिक्षा की सबसे बड़ी कमी ललित कलाओं की शिक्षा का अभाव है। मन और आत्मा पर ये स्थायी प्रभाव छोड़ती है। यही जीवन को, संस्कृति को अर्थ प्रदान करती है। इतिहास की शिक्षा अनेकता मे एकता का ज्ञान देने के लिये दी जाए।

सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का बालकों को ज्ञान दिया जाए। अनासक्ति, अपरिग्रह, सहिष्णुता, शांति और अहिंसा जैसे ऊँचे मूल्यों का शिक्षा में समावेश हो। सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास अधूरा होगा, यदि धार्मिक शिक्षा न दी गई तो। शरीर, मन, आत्मा का संतुलित विकास ही सच्ची शिक्षा है। वर्तमान समाज में अनेक तनाव हैं। गलत व्यक्तित्वों की पूजा हो रही है। कथनी और करनी में भारी

अंतर है। व्यवहार में सगे भाई के गले पर छुरी चलाई जाती है और तीर्थयात्रा करके धार्मिक होने के ढोंग किये जाते हैं। परन्तु बालक बड़ा चतुर है। वह यह सब तुरन्त भाप लेता है। इस दोहरी नैतिकता से वह मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं को असुरक्षित पाता है। एक भ्रम-सा उसे चारों और नजर आता है और विचित्र सूनापन उसे आ घेरता है। रेडियो, टी. वी., सिनेमा, हल्का साहित्य सब इसे बढ़ाने में सहयोग देते हैं।

इस सबसे मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय धार्मिक शिक्षा है। बच्चों को यह बताएँ कि हम सर्व शक्तिमान से जुड़े हुए हैं। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में संसार के सभी धर्मों की प्रमुख परम्पराएँ सिखाई जाएँ। निम्नलिखित बातें बालक जानें।

सदाचारण में आवश्यक शब्दों का नहीं, अच्छे कर्मों का अधिक महत्व है। बालक सहिष्णुता का पाठ पढ़े। धम्मपद, गीता, कुरान, ग्रंथ-साहब–सभी का अध्यापन हो। उन्हें मालूम हो कि सारे सतों के आध्यात्मिक अनुभव एक-से हैं। विद्यालयों में दैनिक प्रार्थना और मौन आराधना हो। प्रबुद्ध विद्यार्थी धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद के अवसर भी पाएँ। देश और समाज की नैतिक-आर्थिक स्थिति पर भी चर्चा करें।

भय और शक्ति-प्रयोग शिक्षा-संस्थाओं में जरा भी न हो। प्रेम और आपस की समझ-बूझ से कार्य चले। स्पर्धा न हो, सहयोग हो, तभी सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास संभव। शारीरिक श्रम, सादगी और स्वानुशासन को महत्व दिया जाए। ललित कलाओं की शिक्षा अनिवार्यत: दी जाए। इनका प्रभाव बालक की सम्पूर्ण प्रकृति पर होगा। शहरी जीवन के प्रभाव से बच्चों को अलग रखा जाए और प्रकृति से निकट। दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों पर अध्यापकों और छात्रों में चर्चाएँ हों। जो उनके विचारों से असहमत हों, उन्हें भी उतना ही आदर दिया जाए जितना उन्हें दिया जाए, जो सहमत हों। सेवा ही शिक्षा का आदर्श हो।

शिक्षक का सबसे बड़ा गुण हो–वात्सल्य। वह चरित्रवान हो, भीतर से धनी हो। साहसी हो, जो झूठ के बाजार में सच के साथ खड़ा हो सके।

हाथा से किया जानेवाला कोई भी कार्य उद्योग है। आधुनिक शिक्षा म उसे तरह तरह के नाम दिय जा रह है मगर निर्धारित समय क अदर भी उसकी शिक्षा विद्यालयो म समुचित रीति स नही दी जा रही है। समाज म शिक्षा का अर्थ एश और आराम स लिया जा रहा है। सब विषय भोगो म लिप्त है। परतु भारत की प्रगति शारीरिक श्रम कर क ही की जा सकती है।

शारीरिक श्रम सतुलित मानव जीवन की मूल आवश्यकता है। श्रम अनुशासन लाता है, सादगी लाता है। आत्मविश्वास और साहस जगाता है। कई मानसिक विकृतिया को भी हटाता है। हाथो का इतना महत्व है कि ससार की हर भव्य वस्तु हाथो का ही कमाल है। नई तालीम म गाधी जी ने किसी उद्योग द्वारा विद्यार्थी का शारीरिक बौद्धिक और नैतिक विकास प्रतिपादित किया है। शरीर और मन—दोनो क्रियाशील हो, जिसस विद्यार्थी बहत्तर व्यक्ति बन जाए। एसी शिक्षा स सामाजिक क्राति होगी। असमानताएँ हट जाएँगी और वह शक्तिशाली बन जायगा।

आत्मा के विकास क लिय बौद्धिक काय और शारीरिक विकास के लिये शारीरिक श्रम अपरिहाय है। मानसिक स्वास्थ्य और सतुलन तभी सभव है। शिक्षा द्वारा उत्पादन भी हो और उसस आर्थिक लाभ भी हो। विद्यार्थी अपनी हर सामाथ्य (faculty) का पूरा-पूरा उपयोग कर सके। सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो। इस प्रकार काम पर आधारित शिक्षा मानसिक शाति भी दगी। व्यक्ति को समाज को और सम्पूर्ण ससार को वह शक्ति और योग्यता दगी और बुद्धि को प्रखर बनाएगी। हिंसा की प्रवृत्ति को हटाएगी। सद्भावनाएँ बढाएगी और दुर्भावनाओ पर विजय दिलाएगी। कातना और बुनना इसके लिये श्रष्ठ काय है।

इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थी को शेष प्रकृति से जोडेगी। अन्य प्राणी, प्रकृति—सभी स मानव का सम्बध जुडा हुआ है। इस प्रकार

ज्ञान और कर्म का समन्वय हो। समाज में असमानता इसीलिये है कि बौद्धिक कार्य करने वालों का एक वर्ग हो गया है और शारीरिक श्रम करने वालों का दूसरा। यह औद्योगीकरण का प्रभाव है। भारत भी इस औद्योगीकरण की चपेट में आ गया है, जब कि यह उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है। समाज से सरलता लुप्त हो गई है, जटिलताएँ बढ़ गई हैं। व्यक्ति पूर्णता पा ही नहीं सकता इस तरह। वह अपने देशवासियों से, अपने साहित्य से इसीलिए तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता। आवश्यकता है कि समाज में वास्तविक और आर्थिक मूल्यों की खाई कम हो। विद्यालयों में शारीरिक श्रम और हस्तकलाओं की शिक्षा से जीवन अर्थपूर्ण होगा और मानव के मानव से सम्बंध सुधरेंगे।

सहयोग :

यह शिक्षा का तीसरा मूल्य हो। सब एक दूसरे को समझ-बूझकर सहयोग से कार्य करें। लेने ही लेनेकी, शोषण की जो प्रवृत्ति है, वह हट जाए। सब एक दूसरे को दें और लें। उपवन में यदि एक ही प्रकार के पुष्प पनपें, तो उसका उतना महत्व न होगा। रकम-रकम के फूल जब एक साथ पनपें, तभी बाग की सार्थकता है। ये सहयोग केवल मानव-मानव में ही न हो, मानव और अन्य प्राणियों में हो और मानव और प्रकृति में भी हो। तभी विश्वबंधुत्व की भावना का विकास होगा।

विद्यालयों में सांस्कृतिक जागृति के द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रसार हो। उत्तम नागरिकता की शिक्षा दी जाए। विभिन्न समुदायों के साथ रहने के अवसर दिये जायें। उन समुदायों में समाज सेवा के लिये विद्यार्थी जाएँ। परिवार के महत्व की पुन स्थापना हो। शिक्षा संस्थाएँ प्रजातांत्रिक आधार पर चलें, जहाँ विद्यार्थियों पर उत्तरदायित्व सौंपे जाएँ और उनकी योग्यता पर पूरा विश्वास रखा जाये। बच्चे बड़ों से अधिक समझदार और कुशल होते हैं और उनकी कार्य कुशलता देखने-वाली चीज होती है। परंतु उनकी स्वतंत्रता पर सीमा नहीं लगाई जाए। किसीको भी उत्तरदायी बनाने के लिये उसे उत्तरदायित्व का अनुभव और उपयोग करने का अवसर देना आवश्यक है। विद्यालयों का

यही काम नहीं है कि वे विद्यार्थी को शिक्षित बनाएँ, बल्कि यह भी कि वे समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हो।

परिवार सबके लिये महत्वपूर्ण इकाई है। वास्तव में वह जीवन भर की शिक्षा का केंद्र है। बुजुर्गों के आदर्श या उदाहरण सामने देख कर बच्चा स्वयं ही आदर्शों की शिक्षा पा लेता है।

प्रौढ़- शिक्षा तथा समाज शिक्षा का भी आयोजन किया जाना चाहिये। यूं तो उन्हें अशिक्षित कहा नहीं जा सकता क्योंकि केवल लिखना-पढ़ना-जानना ही शिक्षा की कसौटी नहीं है। प्रकृति से आस पास के वातावरण से वे सीधे शिक्षा पाते है। समाज-शिक्षा के अंतर्गत हर उम्र के लोगों का, विशेषकर माताओं की शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिये।

राज्य अपनी सत्ता का प्रयोग शिक्षा क्षेत्र में न करे। शिक्षा की योजनाएँ राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से न बनें। विनोबा जी ने नये विद्यालयों की चर्चा करते हुए कहा है कि वहां शिक्षक और विद्यार्थी हर विषय पर स्वतंत्रतापूर्वक आपस में चर्चा करें। डिग्रियों का महत्व शिक्षा से हटा दिया जाए। समाज-शिक्षा के अंतर्गत रामायण और महाभारत की शिक्षा दी जाए।

नये विद्यालयों की कल्पना विनोबा जी ने की है, जो भव्य इमारतों में न होंगे। स्वाध्याय ही शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन माना जायेगा। सत्ता की नीतियों पर न चल कर स्वाध्याय के द्वारा मानसिक विकास होगा। खुली कक्षाओं में प्यारी पुस्तकों और स्नेही शिक्षकों के बीच अध्ययन होगा। इसके लिये हर परिवार शिक्षा-केन्द्र बनें, जहाँ आचार्य और विद्यार्थी में निकटता हो।

भविष्य के विद्यालयों में शिक्षा जीवन से संबंधित होगी। केवल बच्चे ही शिक्षा नहीं लेंगे, वरन संपूर्ण समाज और विशेष कर माताएँ शिक्षा लेंगी। पाठ्य-पुस्तकें ही ज्ञान का स्रोत नहीं मानी जायेंगी। शिक्षा निरंतर होगी—जीवन भर। शिक्षक से बढ़कर कोई मशीन शिक्षा-सामग्री के रूप में काम में नहीं ली जायेगी। पाठ्यक्रम शाश्वत

मानव-मूल्यों पर आधारित होंगे। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी। शिक्षा-योजनाएँ 'आचार्य कुल' के द्वारा बनाई जाएँगी।

गांधीजी का आधुनिक शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा-क्षेत्र में क्रान्ति आवश्यक है। विदेशों ने भी गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों को महत्वपूर्ण माना है। यूं संसार का नियम है कि युगों के बाद संतों के विचारों का महत्व माना जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक एक श्रेष्ठ शिक्षा-प्रणाली की खोज में लगे हुए शिक्षा-शास्त्रियों के लिये रुकने का ठाँव देती है और देती है पुरातन आदर्शों के आधुनिक समाज के साथ समन्वय की शीतल छाया।

इसमें २५२ पृष्ठ हैं तथा मूल्य २५ रु. है।

श्रीमती दया को राव
गांधी शिक्षण भवन, बम्बई

—oo—

सच्ची शिक्षा

उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिलती है, जिसका शरीर इतना साधा हुआ है कि उसके काबू में रह सके और आराम व आसानी के साथ उसका बताया हुआ काम करे। उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शांत है और न्यायदर्शी है। उस आदमी ने सच्ची पाई है, जिसका मन कुदरत के कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध है, और जो नीच आचरण को धिक्कारता है तथा दूसरों को अपने जैसा समझता है। ऐसा आदमी सचमुच शिक्षा पाया हुआ माना जाता है, क्योंकि वह कुदरत के नियमों पर चलता है। *कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।*
—गांधीजी

रजि० सं० VDA/1 लाइसेंस नं० ५

मुद्रक शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा